पिता-पूत

हरिश्चंद्र चड्ढा

‘पिता–पूत’

प्रथम संस्करण: 1970
वर्तमान संस्करण: 2021 (संशोधित)

मुद्रक :

समर्पण

उस करन-कारण प्रभु-सत्ता के नाम,

जो मानव तन में व्यक्त होकर

पिता-पूत के रूप में

आप ही अपनी कहानी

दोहराती चली आई है,

दोहराती रहेगी।

विषय-सूची

3. सावन की घटा ...53

4. पिता–पूत की कहानी ...73

5. अब जिगर थाम के बैठो... **...185**

6. ज़िंदगी अब हो गई बारेगराँ तेरे बग़ैर ...199

7. ऋषिकेश के जंगलों में एकान्तवास ...205

8. अंधेरे में प्रकाश की किरण ...215

इस पुस्तक के सम्बंध में

'पिता-पूत' हमारे समय की दो सत्स्वरूप विभूतियों– श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज और उनके आध्यात्मिक सुपुत्र महाराज कृपाल सिंह जी की जीवनदायिनी जीवनगाथा है, जितनी कि वह लेखन–वर्णन में आ सकी है।

संतों के जीवन की सबसे बड़ी सीख, जिसका जीवंत उदाहरण ये जीवन में प्रस्तुत करते हैं, यह है कि मनुष्य इस संसार में रहते हुए और सारे कर्तव्य पूरे करते हुए भी अपने यथार्थ स्वरूप को जान सकता है और परमात्मा को पा सकता है, जो कि मानव जीवन का परम लक्ष्य और ध्येय है। शायद इसीलिए संसार के मार्गदर्शन हेतु जो भी मार्गदर्शक– गुरु, पीर, वली, पैग़ंबर, अवतार– आज दिन तक प्रकट हुए, उनमें बहुत बड़ी संख्या गृहस्थ महात्माओं की है, त्यागी महात्मा बहुत कम हुए हैं।

संतों ने बताया और अपने जीवन–आचरण में दर्शाया कि मानव का परमात्मा में लीन होना, बिंदु का समुद्र में मिलकर समुद्र हो जाना, कोई अनहोनी बात नहीं, क़िस्सा–कहानी नहीं। यह भाग्य है, मानव का। मानव–जीवन को सर्वश्रेष्ठ इसीलिए कहा गया है, क्योंकि इसमें जीवात्मा जीवन–रहस्य का उद्‌घाटन कर सकती है अर्थात् अपने आपको जान सकता है और प्रभु को पहचान सकता है। उन्होंने बताया ही नहीं, जिज्ञासुजनों को, जो उनके संपर्क में आए, इस चीज़ का व्यक्तिगत अनुभव भी दिया।

इस घोर कलयुग में श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज और उनके गुरुमुख सपूत, महाराज कृपाल सिंह जी ने इसी सीख को, शिक्षा को पुनर्जीवित किया है। समय की प्रचलित भाषा में लोगों की रुचि और मनोवृत्ति के अनुसार उसकी व्याख्या की है और इतने खुले दिल से अध्यात्म की अनमोल निधि लुटाई है अर्थात लोगों को सामने बिठाकर अपनी दयादृष्टि के उभार से मन–इंद्रियों से ऊपर लाकर आत्म–साक्षात्कार और प्रभु दर्शन

की पूंजी पहली बैठक ही में प्रदान की है, जिसकी पूरे इतिहास में इससे पहले कम मिसाल मिलती है। 'पिता–पूत' परमात्मा की उस दयाल–सत्ता की कहानी है, जो हरेक युग में, हरेक ज़माने में, मानव–देह में प्रकट होकर जीवों को अपने साथ जोड़ने और मिलाने का काम करती चली आ रही है, करती रहेगी। दुनिया ऐसे समर्थ दयाल पुरुषों से कभी रिक्त नहीं रही, न रहेगी। जहाँ भूख है वहाँ रोटी है, जहाँ प्यास है वहाँ पानी है। माँग और पूर्ति का यह दैवी–नियम अटल है, इसे कोई बदल नहीं सकता।

यह पुस्तक, जिसकी बड़ी आवश्यकता अनुभव की जा रही थी, कैसे, किन परिस्थितियों में लिखी गई, इसकी चर्चा यहाँ असंगत न होगी। श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के देह–त्याग के बाद उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी, महाराज कृपाल सिंह जी ने अपने सत्गुरु के आदेशानुसार और उनकी दयामेहर के सहारे जीवों के उद्धार का कार्यभार संभाला, तो सबसे पहले "संक्षिप्त जीवन–चरित्र श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज" नाम से श्री हुज़ूर महाराज के जीवन और तालीम पर एक पुस्तक उर्दू, हिंदी, गुरुमुखी और अंग्रेज़ी में छपवाई। इसके अतिरिक्त अपने सत्संग–प्रवचनों में वे सदैव श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के जीवन से या स्वयं अपने जीवन से दृष्टांत प्रस्तुत किया करते। अतः हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज या महाराज कृपाल सिंह जी के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में समय–समय पर यहाँ भारत में या विदेशों में जो कुछ अब तक लिखा गया, वह उस पुस्तिका से लिया गया है या महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–प्रवचनों से।

इस प्रकार, 'पिता–पूत' के जीवन की मुख्य घटनाएँ तो लेखबद्ध हो गईं, परंतु यह वर्णन क्रमबद्ध नहीं था, अधिक से अधिक वह मनोहर दृष्टांतों का एक गुलदस्ता कहा जा सकता था। वर्णित घटनाओं का पूरा ब्यौरा उसमें नहीं था। किसी विषय पर कोई प्रश्न मन में उठे, तो उसका उत्तर उस वृत्तांत में नहीं मिलता था। उदाहरणार्थ, 'सुरत–शब्द योग' का मार्ग मिलने से पहले महाराज कृपाल सिंह जी क्या साधना–अभ्यास करते थे? हुज़ूर महाराज ने उन्हें कब (तिथि नहीं, समय) और कहाँ दीक्षा दी? पूर्णता की मंज़िल पर पहुँचने से पहले किन परिस्थितियों से उन्हें गुज़रना पड़ा, इत्यादि, इत्यादि– ढेर सारे प्रश्न थे, जिनका उत्तर अब तक लिखे

गए जीवन–वृत्तांत में नहीं मिलता। यह समस्या तभी हल हो सकती थी, यदि महाराज कृपाल सिंह जी से लगातार तीन–चार सप्ताह पूछताछ की जाए। उनके व्यस्त जीवन को देखते हुए बहुत कम आशा बंधती थी कि ऐसा अवसर कभी मिल सकेगा। परंतु उन्होंने अपनी अपार दयामेहर से ख़ुद ही अवसर पैदा कर दिया और राजपुर (देहरादून) में इन पंक्तियों के लेखक को हुज़ूर महाराज से लगातार तीन–चार हफ़्ते इन विषयों पर प्रश्न करने का सुअवसर मिल गया, जिसका फल इस पुस्तक के रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। यह वर्णन भी अधूरा है। सच तो यह है कि संतों के जीवन पर कुछ भी लिखा जाए, वह अपूर्ण ही रहेगा। फिर भी इस क्रमबद्ध जीवन–वृत्तांत में आने वाले लेखक और अनुसंधानकर्ता के बहुत कुछ है।

इस पुस्तक को लिखते समय विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि 'पिता–पूत' की कहानी, जहाँ तक हो सके, उनकी अपनी ज़बानी वर्णन की जाए। इसमें वर्णित घटनाओं का स्त्रोत महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–वचन हैं या उनके अपने 'मुख–वाक्य' जिनमें कोई शब्द नहीं बदला गया है। हुज़ूर महाराज जी की शिक्षा के संबंध में 70 पृष्ठों की जो विस्तृत व्याख्या है, उसमें महाराज कृपाल सिंह जी के पूरे सत्संग हैं या उन्हीं के शब्दों में परमार्थ के विभिन्न विषयों का स्पष्टिकरण या व्याख्या है। इन पंक्तियों के लेखक ने कहानी का सिलसिला बनाए रखने के लिए जगह–जगह मखमल में टाट का पैबंद लगाया है, परंतु इससे मखमल की शान में अंतर नहीं पड़ता। इस पुस्तक के एक–एक शब्द में जीवनप्रद उभार है, ऊँचा उठने की प्रेरणा है। जीवन का अनंत सागर इसमें ठाठें मार रहा है। महाराज जी के उपदेश अथवा शिक्षाएँ आज तक लिखे गए धर्मग्रंथों, पीर–महापुरुषों की जीवनियों का सार हैं, मा'नो उनका जीवन–वृत्तांत गागर में सागर है। अनंत जीवनधारा के इस वृत्तांत के हरेक शब्द पर अमर जीवन की छाप लगी हुई है, क्योंकि वह उस हृदय से निकले हैं, जो अनंत जीवन का स्त्रोत है।

इस पुस्तक में महाराज कृपाल सिंह जी की उर्दू, हिंदी और पंजाबी में पद्य रचनाएँ भी दी गई हैं। अंतिम दो कविताएँ देहरादून में लिखी गईं, जिसके बाद कोई कविता उन्होंने नहीं कही।

दम–दम शुक्राना है उस प्रभु का, जिसकी अपार कृपा से इस तुच्छ सेवक को दोनों सत्स्वरूप महापुरुषों से आँखें चार करने और उनके चरणों में बैठने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ और सत्गुरु दयाल की अनंत देन का कि जिसने इन अयोग्य, असमर्थ हाथों को अनंत जीवन की कहानी लिखने की सामर्थ्य प्रदान की है।

– हरिश्चंद्र चड्ढा

⌘⌘⌘

1.
शुभ आगमन

जनम मरण दुहहू महि नाही जन परउपकारी आए।।
जीअ दानु दे भगती लाइनि हरि सिउ लैनि मिलाए।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰749)

अर्थात जन्म–मरण से आज़ाद वे (मुक्त पुरुष) परोपकार के लिए, जीवों के कल्याण के लिए संसार में आते हैं। ज़िंदगी का दान (अनंत जीवन–सागर, जो उनके अंतर में ठाठें मार रहा है, उस अमृत का दान) अर्थात तवज्जोह, दृष्टि का उभार देकर वो मन–इंद्रियों के बंधन में जकड़े हुए जीवों को शरीर एवं शारीरिक व्यापार से ऊपर लाकर, घट–घट व्यापी राम या नाम–सत्ता (करन–कारन प्रभु–सत्ता) से जोड़ देते हैं। यह (जीव) उनकी दयामेहर से अपने अंतर में ज्योति–स्वरूप प्रभु की ज्योति को देखने वाला और उसकी सत्–वाणी, शब्द, नाम, कलमा अथवा Word– कुछ भी उसे कह लीजिए, उसे सुनने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार तवज्जोह या दृष्टि का उभार देकर वे जीवों को प्रभु–प्रेम में, भक्ति में लगाते और प्रभु में लीन कर देते हैं। यही काम है उनका, जिसके लिए वे मानव तन धारण कर दुनिया में आते हैं।

इस परंपरा के विश्व–कल्याणकारी महापुरुष दयासागर, कृपाल ने ज़िला रावलपिंडी के छोटे–से गाँव सैयद कसराँ में, 6 फ़रवरी, 1894 ई. को, एक प्रतिष्ठित खत्री सिक्ख घराने में जन्म लिया। सर्दियों की रात, 9 बजे का वक़्त था, जब अंधकार में प्रकाश करने वाले 'ज्योति–पुत्र' का शुभावतरण इस धरती पर हुआ, रखने वालों ने नाम भी चुनकर रखा, 'कृपाल', जिसने दयामेहर के ख़ज़ाने दोनों हाथों से लुटाए। धन्य वह पिता, सरदार हुकमसिंह साहिब, जिनके घर कुल–मालिक अर्थात संसार के स्वामी का 'हुक्म' देह धारण करके आया। धन्य वह जननी, गुलाब देवी, जिसने वह पुष्प दुनिया को दिया, जिसकी सुगंधि से चार कूट धरती की दसों दिशाएँ महक उठीं।

संत बालक

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' जिन्हें आगे चलकर कोई बड़ा कार्य करना होता है, उनके जौहर बचपन ही में झलकने लगते हैं। इनके बचपन की घटनाओं पर नज़र डालने से यह बात पूर्णतया सिद्ध हो जाती है कि संत धुर से बने बनाए आते हैं, बनाए नहीं जाते। किसी महापुरुष के जीवन–चरित्र को देख लीजिए– इसी बात की पुष्टि होगी। इनका बचपन अद्‌भुत लीलाओं व चमत्कारों से भरा पड़ा है– जिन्हें देखकर पेशावर, जहाँ इनका बचपन बीता और आस–पास के इलाक़ों के लोग, तभी से इन्हें 'संत कृपाल' के नाम से पुकारने लगे थे।

आम बच्चों की तरह इन्हें खेल–कूद में कोई रुचि नहीं थी। सबसे अलग–थलग एकांत में घंटों ध्यान में मग्न बैठे रहते थे। घर से जेब–ख़र्च या खाने के लिए जो चीज़ मिलती, वह अपने साथियों में बाँट देते और आप दूर एकांत में, ध्यान में लीन हो जाते। निजानंद की मस्ती और मग्नता, दैवी वरदान के रूप में जन्म से आपको प्राप्त थी। बचपन के दिनों की घटनाओं के संबंध में किसी ने आपसे कहा कि चार–पाँच साल के बच्चे तो खेल–कूद के सिवाए कोई दूसरी बात जानते ही नहीं, पल भर को वे निठल्ले नहीं बैठ सकते। जवाब में आपने कहा, "बचपन में भी खेलना मुझे नसीब नहीं हुआ। उन दिनों भी मैं प्रायः आँखें बंद किए ध्यान में मग्न बैठा रहता था।" पूछने वाले ने कहा, "अंतर में कुछ दिखाई देता होगा, तभी आप आँखें बंद किए बैठे रहते होंगे।" कहने लगे, "मुझे अंतर में दिव्य–मंडलों के प्रकाश और दृश्य, नूर–नज़ारे दिखाई देते थे– कभी किसी पुरी का, कभी किसी पुरी का दृश्य अंतर्मुख मेरी आँखों के सामने रहता था।" स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज की तरह बचपन ही में दिव्य–मंडलों में आपकी रसाई (पहुँच) थी और ज्यों–ज्यों आप बड़े होते गए, इन दिव्य शक्तियों का विकास और तरक़्क़ी होती चली गई।

अंतःकरण की शुद्धि के कारण अंतर्यामी होने का गुण आपको बचपन ही से प्राप्त था। आप चौथी कक्षा में पढ़ते थे, उन दिनों की घटना है। एक दिन आप अचानक अपनी सीट पर खड़े हो गए और अध्यापक से कहने लगे, "मास्टर जी, मुझे छुट्टी दे दो। मेरी नानी मर रही है।" अध्यापक यह विचित्र बात सुनकर बोला, "भई वाह! यहाँ बैठे–बैठे घर में मरती हुई नानी

भी नज़र आ रही है। बैठकर सबक़ याद कर।" कहने को उसने यह बात कह दी, लेकिन मन में सोचने लगा, यह बच्चा आख़िर ऐसी बात क्यों कहता है? ये कोई ऐसा–वैसा बालक भी नहीं, जो पढ़ाई से जी चुराता हो या खेल–कूद का शौक़ीन हो। यह सोच ही रहा था कि घर से आदमी आया और अध्यापक से कहने लगा, "कृपाल को घर भेज दो, इसकी नानी मर रही है और बच्चे को देखना चाहती है।" अध्यापक यह बात सुनकर हैरान रह गया और दूसरे लोगों की तरह उसे भी विश्वास हो गया कि यह बच्चा कोई असाधारण व्यक्ति है।

इसी प्रकार की एक और घटना है। एक बार गाँव में किसी के यहाँ चोरी हो गई। आपने लोगों से सुना कि गाँव में एक व्यक्ति के घर चोरी हुई है। आपने जाकर पिता से कहा कि अमुक व्यक्ति ने चोरी की है। यह भी बताया कि चोरी का माल उसने कहाँ छिपा रखा है। पिता ने प्यार से समझाया कि ऐसी बातें प्रकट नहीं किया करते। उस दिन से आपने लोगों को बताना बंद कर दिया। बचपन के दिनों का ज़िक्र करते हुए आप बताया करते, "शुरू से ही मुझे एहसास था कि संसार में क्या काम मुझे करना है। छोटी आयु में ही मैं प्रायः यह कहा करता था कि मैं अमरीका जाऊँगा। बचपन के ज़माने की एक–एक बात, एक–एक घटना, एक–एक पुस्तक, जो मैंने उस वक़्त पढ़ी, मुझे याद है।" इस अहसास का नतीजा था कि आप आस–पास के वातावरण से प्रभावित नहीं हुए, वरन् अपने उज्ज्वल व्यक्तित्व से वातावरण को, अपने आस–पास के माहौल को प्रभावित करते रहे।

आपके घर के लोग सरहदी इलाके (उत्तर–पश्चिमी सीमा प्रांत) के रहने वाले थे। घर में माँस पकता था, जो छोटे–बड़े सब खाते थे। घर के लोग इकट्ठे बैठकर भोजन करते थे। आप एकाध चपाती उठा लेते और उस पर कोई सब्ज़ी रख एकांत में बैठकर खाना शुरू कर देते। पिता प्यार से आग्रह करते, "सारी चीज़ें क्यों नहीं लेते, पाल? (बचपन में घर के लोग इसी नाम से इन्हें पुकारते थे)। गोश्त सेहत के लिए अच्छी चीज़ है।" आप बड़े सरल भाव से जवाब देते, "पिता जी यह मुरदा है। मैं पेट को क़ब्रिस्तान नहीं बनाना चाहता।" यह बात सुनकर वो नन्हें कृपाल को गोश्त खाने पर मजबूर न करते। शुरू से ही इन्हें इस बात का पूरा आभास था कि माँसाहार और आध्यात्मिक जीवन का आपस में कोई मेल नहीं। रूहानी ज़िंदगी के लिए भोजन सात्विक ही रहना चाहिए।

पारिवारिक संस्कार

अपने सत्संग–प्रवचनों में आप हमेशा कहा करते कि जो लोग अपनी संतान को नेक–पाक, सदाचारी बनाना चाहते हैं, वो पहले स्वंय नेक और पवित्र बनें, बच्चों के सामने अपने जीवन को उदाहरण बनाकर नमूने के रूप में पेश करें। रूहानियत (आध्यात्मिकता) आपमें जन्मजात थी, घर का वातावरण भी आध्यात्मिक जीवन के लिए उपयुक्त था। आपके पिता, सरदार हुकमसिंह, साधन–संयुक्त, ऋद्धि–सिद्धि वाले पुरुष थे– वो शिव के उपासक थे। उनका जीवन तप और त्याग का जीवन था। आधी रात को तालाब में ठंडे पानी में खड़े होकर सारी रात अभ्यास में बिता देते थे। गरमी हो या सरदी, साधना या अभ्यास में नागा नहीं करते थे। घर के दूसरे लोग भी शिव के उपासक थे (बाद में इनके घर के सब लोंगों ने नाम ले लिया)। अपनी माता के बारे में आप बताते हैं कि स्नान कर गीता का पाठ करतीं और उसे पूरा कर चौके में पाँव रखती थीं। पिता की देखा–देखी आपने भी शिव की अराधना शुरू की। शिव के साक्षात दर्शन भी हुए, आमने–सामने बातें भी हुईं, लेकिन जिस चीज़ की इन्हें तलाश थी– प्रभु दर्शन, वह कुछ और चीज़ थी।

शुरू में आप स्वासासंयम (प्राणायाम) का अभ्यास करते थे। पेशावर में (जहाँ इनका बचपन गुज़रा) पंज तीरथ में और उसके पास एक बड़ा तालाब था, उसमें सारी–सारी रात पानी में खड़े होकर अभ्यास किया करते थे। यह 1912-13 ई. का वृत्तांत है। उस वक़्त आपकी आयु 17-18 वर्ष की थी। अभ्यास में एक दिव्य–स्वरूप अंतर में इन्हें दिखाई दिया। उसके घुंघराले बाल थे, बड़ी–बड़ी आँखें, इतनी बड़ी और तेज वाली कि उनमें देखा नहीं जा सकता था। उसके पेट में सब सृष्टि काम करती मालूम हो रही थी (इस स्वरूप का वर्णन गुरुवाणी में भी आया है और गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को जो विराट रूप दिखाया था, उसका आकार भी वही है)। वह दिव्य–स्वरूप आपको संबोधित कर कहने लगा, "मैं साधारण सुमिरन से जल्दी प्रसन्न होता हूँ।" उस दिन से आपने कुंभक करना छोड़ दिया।

विद्यार्थी जीवन

शुरू से ही अध्ययन में आपकी रुचि थी। किताब पढ़ने की ऐसी लगन थी कि विद्यार्थी जीवन में पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त एक पूरी लायब्रेरी आपने पढ़कर ख़त्म कर दी थी। एक बार किताब हाथ में लेकर उसे ख़त्म किए बिना नहीं छोड़ते थे। घर में रात देर तक पढ़ते रहते। उन दिनों बिजली उपलब्ध नहीं थी, लैम्प की रोशनी में पढ़ाई होती थी। पिता ने इनके स्वास्थ्य का ख़्याल करके दस बजे रात को सो जाने की आज्ञा दी। आप लिहाफ़ के अंदर लेटे–लेटे पढ़ते रहते। इस विस्तृत अध्ययन के कारण अपने साथियों के मुक़ाबले में आपकी सूझ–बूझ और ज्ञान आश्चर्यजनक हद तक बढ़ा–चढ़ा था। परीक्षा में सदैव प्रथम आते। एक बार इतिहास की परीक्षा में अध्यापक ने 55 में से 54 नंबर आपको दिए, जो लड़का दूसरे नंबर पर आया, उसे केवल 37 नंबर मिले। उस लड़के ने अध्यापक से शिकायत की कि मैंने सारे सवाल सही हल किए हैं, फिर भी मुझे 37 नंबर मिले, जबकि कृपाल सिंह को आपने 54 नंबर दिए हैं। अध्यापक मुस्कराया और कहने लगा, "तुमने वही कुछ लिखा है, जो मैंने तुम्हें पढ़ाया, परंतु कृपाल सिंह ने वह कुछ लिखा है, जो विश्व के प्रमुख इतिहासकारों ने लिखा है। इतिहास में शत–प्रतिशत नंबर नहीं दिए जाते, इसलिए मुझे एक नंबर काटना पड़ा, वरना मैं पूरे 55 नंबर उसे देता।"

इस विस्तृत एवं गूढ़ अध्ययन के कारण अध्यापक भी इनकी क़द्र करते थे। एक बार कक्षा का एक अध्ययनशील विद्यार्थी, जो परीक्षा में दूसरे नंबर पर आता था, घर का काम करके नहीं लाया। हॅडमास्टर ने आज्ञा दी थी कि अगले दिन जो पाठ पढ़ाया जाएगा, सब लड़के उसके कठिन शब्द और डिक्शनरी देखकर उनके अर्थ कॉपी में लिखकर लाएँ। वह लड़का कॉपी लिखकर नहीं लाया, जिस पर हैडमास्टर ने उसकी डांट–डपट की। लड़के ने शिकायत की कि मुझसे पहली बार चूक हुई है। कृपाल सिंह तो कभी भी कॉपी में नोट करके नहीं लाता। हॅडमास्टर ने कहा, "कृपाल सिंह को इसकी कोई ज़रूरत नहीं। उसे पाठ्य पुस्तकों के बारे में सब मालूम है, इसके अलावा भी बहुत कुछ जानता है।"

विद्यार्थी जीवन के बारे में आपके सत्संग–प्रवचनों में कई इशारे मिलते हैं। आप अक्सर फ़रमाया करते थे कि अध्यापक मेहनत से पढ़ाए

और बच्चा पूरी तरह सबक़ याद करके आए, तो अध्यापक ज़्यादा शौक़ से उसे पढ़ाता है। अपने विद्यार्थी जीवन का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए आप बताते थे कि उस ज़माने में फ़ीस नहीं हुआ करती थी। शिक्षक बड़े प्यार से बच्चों को पढ़ाता और जिस बच्चे को देखता कि इसे पढ़ने का शौक़ है, उसे कहता कि तुम घर भी आ जाया करो। वहाँ हम उनके घर का कुछ काम करते, पानी भरकर ला देते या कोई अन्य सेवा कार्य करते। शिक्षक भी बड़े प्रेम से हमें पढ़ाता।

बरसों बाद, आप लाहौर में बीमार पड़े। उन दिनों इनके बचपन के एक शिक्षक को यह ख़बर मिली। आपके पुराने शिक्षकों में एक वही बाक़ी रह गया था। वह हालचाल पूछने आया। आप चारपाई से उठ न सकते थे, फिर भी उसके पाँव छुए। बूढ़े अध्यापक की आँखों में गर्व और ख़ुशी के आँसू थे। कहने लगा, "मुझे तुम पर गर्व है कि आज तुम्हारे हाथों सारी दुनिया का कल्याण हो रहा है।"

आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे। खोज कुरेदकर बात की तह तक पहुँचने का गुण आपमें जन्मजात था। एक बार अपने मिशनरी अध्यापक से आपने सवाल किया, "क्या कारण है कि आप क्राइस्ट (ईसा मसीह) को केवल क्राइस्ट कहते हैं। उनके नाम के साथ कोई उपाधि नहीं लगाते?" अध्यापक ने जवाब दिया, "परमात्मा जो सबका कर्ता, प्रतिपालक और जीवनाधार है, क्या उसके नाम के साथ हम कोई उपाधि लगा सकते हैं? क्या कभी किसी को यह कहते सुना है, जनाब ख़ुदा साहिब, हज़रत अल्लाह मियाँ, श्री वाहेगुरु जी महाराज? क्राइस्ट को हम ख़ुदा का बेटा मानते हैं। ख़ुदा की कोई तारीफ़ नहीं हो सकती है, तो उसके बेटे की तारीफ़ क्या की जा सकती है?" यह जवाब आपको बहुत पसंद आया। बरसों बाद अमरीका में एक बहुत बड़े समारोह में जलसे के प्रबंधक ने आपका परिचय कराते हुए आपके लिए प्रशंसात्मक वचन कहे, तो आपने उसे बीच में टोक दिया और श्रोतागणों से कहने लगे, "भई, मैं आप ही की तरह एक इंसान हूँ। मुझे एक चीज़ मिली है, गुरु कृपा से– वह मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ।"

एक बार एक पादरी साहब स्कूल का निरीक्षण करने आए। वो आपकी कक्षा में भी आए और लड़कों से प्रश्न किया, "बच्चों, तुम किसलिए शिक्षा

प्राप्त कर रहे हो, तुम्हारा लक्ष्य क्या है?" इस सवाल के अलग–अलग जवाब लड़कों ने दिए। एक ने कहा, "मैं पढ़–लिखकर डॉक्टर बनना चाहता हूँ।" दूसरे ने कहा, "मैं बड़ा होकर तहसीलदार बनना चाहता हूँ, इसलिए पढ़ रहा हूँ।" तीसरे ने कहा, "मैं इंजीनियर बनूँगा।" आपने कहा, "I read for knowledge's sake," अर्थात "मैं ज्ञान प्राप्त करने के लिए पढ़ रहा हूँ।" पादरी साहब यह जवाब सुनकर बड़े ख़ुश हुए और कहने लगे, "यह लड़का आगे चलकर नाम पैदा करेगा।" इसके बाद पादरी साहब ने इस विषय पर विद्यार्थियों को घंटा भर उपदेश दिया।

आत्म-ज्ञान के ख़ज़ाने लुटाने वाला

आपको महापुरुषों के जीवन–वृत्तांत पढ़ने का बड़ा शौक़ रहा। तीन–सौ के क़रीब महापुरुषों के जीवन–वृत्तांत आपने पढ़े। सातवीं कक्षा में पढ़ते थे, उस समय आपकी आयु 12 वर्ष की थी, तो श्री रामानुज के जीवन की एक घटना का वृत्तांत आपने पढ़ा, जिसका गहरा प्रभाव आपके जीवन पर पड़ा। वह घटना यूँ है : श्री रामानुज, गुरु से दीक्षा पाकर घर लौटे, तो गाँव वालों को इकट्ठा कर गुप्त मंत्र, जो गुरु ने उन्हें दिया था, सबको बताने लगे। एक व्यक्ति ने आपत्ति की कि यह क्या कर रहे हो? गुरुमंत्र को गुप्त रखना चाहिए, दूसरे को बताना महापाप है। गुरु की अवज्ञा के अपराध में तुम नरक में जाओगे। रामानुज ने कहा, "अकेला मैं ही नरक में जाऊँगा ना! यह सारे तो बच जायेंगे। इनके कल्याण के लिए मुझे नरक में जाना स्वीकार है।" आप फ़रमाते हैं कि जब मैंने यह वृत्तांत पढ़ा, तो मेरे मन में ख़्याल आया कि कभी मुझे यह रूहानियत की दौलत प्राप्त हुई, तो मैं भी इसी तरह लुटा दूँगा।

इसी प्रसंग में आप कहते हैं, "सत्गुरु दयाल हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज को शायद मैं एक फ़िज़ूलख़र्च मिल गया था कि बाँटने पर लगा दिया। हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि "रूहानी दौलत बहुत है, मुझे घर में कोई बाँटने वाला नहीं मिलता।' जो रूहानी फ़ैज़ (परमार्थ लाभ) मिल रहा है, दुनिया को, मेरा इसमें कुछ नहीं। यह सब उनका (हुज़ूर महाराज का) वरदान है।"

'आत्मा अमर है'

1908-9 ई. का ज़िक्र है। आप 14 वर्ष के थे और नवीं कक्षा में पढ़ते थे। उन्हीं दिनों देव गुरु भगवान के बेटे से आपकी जान–पहचान हो गई। उसने आपको देव समाज की अंतरंग सभा में शामिल होने का निमंत्रण दिया और इस समाज के प्रबंधक समाज सुधार और लोक–कल्याण के कार्यों में आपकी अनूठी सूझ–बूझ और योग्यता का लाभ उठाते रहे। एक दिन देव गुरु भगवान के बेटे ने आपसे पूछा, "हमारे समाज के बारे में आपकी क्या राय है?" आपने कहा कि "जहाँ तक व्यावहारिक जीवन का संबंध है, मैं आपके काम की क़द्र करता हूँ। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि आत्मा के बारे में तुम्हारा क्या ख़्याल है?" वह बोला, "शरीर छोड़ने के पश्चात कुछ काल तक तो वह (आत्मा) क़ायम रहती है, उसका अस्तित्व रहता है। फिर वह भी नष्ट हो जाती है।" आपने कहा, "आत्मा के बारे में तुम्हारा यह ख़्याल सही नहीं है। शरीर से निकलने के बाद वह अधिक सूक्ष्म रूप धारण कर लेती है, जिसके बारे में अभी तुम कुछ नहीं जानते।" 14-15 वर्ष की आयु में रूहानियत (आत्म–तत्त्व) के बारे में यह ज्ञान और अनुभव सिद्ध करता है कि संत बने–बनाए आते हैं, दुनिया में। उन्हें अपनी ज़िंदगी के काम और मिशन का पूरा अहसास होता है और उसके लिए उपयुक्त योग्यता और सामर्थ्य वे अपने अंदर रखते हैं। आपके विद्यार्थी जीवन में इस बात को सिद्ध करने वाले कई उदाहरण मिलते हैं।

'शाही बाग़–आँखों के पीछे'

बचपन के ज़माने की एक और घटना इस सिलसिले में उल्लेखनीय है। अपने सत्संग–प्रवचनों में आप बहुधा इस घटना का दृष्टांत दिया करते। एक बार आप पेशावर के शाही बाग़ में पढ़ रहे थे कि एक बूढ़ा नास्तिक, दरबारी लाल, आपके पास आया और पूछने लगा, "शाही बाग़ कहाँ है?" आपने कहा, "जहाँ तुम इस वक़्त खड़े हो, यही शाही बाग़ है।" यह बात सुनकर वह बोला, "यहाँ तो कुछ पेड़ हैं, कुछ पौधे और झाड़ियाँ। यह शाही बाग़ कैसा?" आप उसके इशारे को समझ गए और उससे पूछा, "आप क्या साधना करते हैं?" उसने भृकुटियों के मध्य माथे पर हाथ रखा और कहने लगा, "असली शाही बाग़ यहाँ है– दोनों भृकुटियों के मध्य आँखों के पीछे–

यहाँ आनंद ही आनंद है।" उसकी बात का सार यह था कि एक नास्तिक भी दोनों भृकुटियों के मध्य आत्मा के निज स्थान पर, जहाँ शिव–नेत्र है, ध्यान लगाए, तो वह भी निजानंद को प्राप्त कर लेता है।

बाबा कान्ह से भेंट

विद्यार्थी जीवन में आप बाबा कान्ह के पास जाया करते थे, जो पेशावर में एक पहुँचे हुए मस्त फ़क़ीर थे। सत्गुरु दयाल श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज भी बाबा कान्ह से मिलने जाते रहे। यह भी एक विचित्र संयोग है कि इस युग के दो महापुरुष, जिन्होंने दोनों हाथों से दयामेहर के ख़ज़ाने लुटाए, बाबा कान्ह से मिलते रहे, किंतु वक़्त से पहले आपस में न मिले। बाबा कान्ह किसी को पास न फटकने देते थे, लोगों को गालियाँ देते, बल्कि हाथ भी उठा देते। आप आते तो बड़े प्यार से पूछते, "कैसे आना हुआ सरदार?" आप कहते, "बाबा तेरे दर्शनों के लिए आया हूँ।" थोड़ी देर बाद बाबा कान्ह कहते, "अच्छा अब जा।"

आँख, आँख को पहचानती है। उस वक़्त भी आपको बाबा कान्ह के बारे में मालूम था कि आत्म–ज्ञान का भंडार इसके पास है। श्रद्धालु, जो बाबा कान्ह के दर्शन के लिए जाते थे, उनसे आपने एक बार कहा कि माल तो इसके पास है, लेकिन यह बाँटा अखरोट है, इससे गिरी निकालना मुश्किल है। उनमें से एक व्यक्ति के बार–बार आग्रह करने पर आपने कहा कि रात को इसके पास जा बैठना और वहाँ से टलना नहीं, चाहे जो भी हो। उस व्यक्ति ने वैसा ही किया। बाबा कान्ह ने उसे बुरा–भला कहा, गालियाँ दीं। वह उठकर आ गया। दूसरे दिन उसने आपको रात का सारा क़िस्सा सुनाया। आपने कहा, "घबराओ नहीं, आज फिर वहाँ जाओ। मगर वहाँ से उठना नहीं।" दूसरे दिन वह व्यक्ति रात्रि के समय फिर वहाँ गया। बाबा कान्ह ने देखा कि गाली–गलोच सुनकर भी यह टलता नहीं, तो जलती हुई लकड़ी उसके सिर पर दे मारी, जिससे उसे जख़्म हो गया, लेकिन वह वहीं डंटा रहा। फिर अचानक लहज़ा बदलकर बड़े प्यार से बाबा कान्ह ने उस व्यक्ति से पूछा, "आख़िर तू चाहता क्या है?" वह कहने लगा, "कुछ दे बाबा, जो माल तेरे पास है?" बाबा कान्ह बोले, "सुन! कैसी सुहानी आवाज़ आ रही है!" और अंतर में 'शब्द' का ता'ल्लुक (परिचय) उसे दे

दिया। इस सारे किस्से में देखने की चीज़ यह है कि महाराज कृपाल सिंह जी वह आँख लेकर आए थे, जो रूहानियत को देख और परख सकती है।

महान जीवन के लिए तैयारी

महाराज जी के बचपन और विद्यार्थी जीवन में यह चीज़ दिन के उजाले के समान प्रकाशमान है कि उन्हें शुरू से उस महान कार्य का पूरा आभास था, जो आगे चलकर उन्हें करना था और बचपन की उम्र से ही उनका हर क़दम उस महान जीवन की तैयारी के लिए उठता रहा। उस जीवन के लिए वो असाधारण संस्कार एवं योग्यताएँ लेकर आए थे। जैसे बचपन के वृत्तांत में आया है कि चार साल की आयु में ही वे ध्यान–स्थिर होकर अंतर दिव्य–मंडलों में विचरण करने लगे थे। अंतर्यामित्व शुरू से इन्हें प्राप्त था। इससे भी बढ़कर यह कि नींद से निश्चिंतता प्राप्त थी। आप ख़ुद फ़रमाते हैं, "जब मैं सातवीं ज़मात में पढ़ता था, उस वक़्त से ही नींद मुझे बहुत कम आती थी।" आप चाहे सारी–सारी रात पढ़ते रहें, चाहें प्रभु–सुमिरन और भजन में लीन रहें, नींद बहुत कम आती थी। जिनकी आत्मा दिव्य–मंडलों की यात्रा करती हो, उन्हें नींद से क्या काम! सुरत अथवा आत्मा के सिमट जाने पर नींद का काम पूरा हो जाता है, शरीर को पूरा आराम मिल जाता है। अपने सत्संग–प्रवचनों में आप फ़रमाते थे कि रूह अर्थात सुरत, पिंड को छोड़कर ऊपर दिव्य–मंडलों की सैर करके वापस शरीर में प्रवेश करती है, तो एक नया जीवन देह को मिलता है, शरीर recharge होता है अर्थात नई ज़िंदगी प्राप्त करता है" (आपकी दयादृष्टि के पुण्य–प्रताप से सैकड़ों–हज़ारों परमार्थाभिलाषियों को यह अवस्था प्राप्त थी)। इस स्थाई जागृत अवस्था से आपने बड़ा काम लिया, विद्यार्थी जीवन में हज़ारों किताबें आपने पढ़ डालीं। यह उच्च प्रवृत्तियाँ और संस्कार आपमें जन्मजात थे, लेकिन इनसे आपने जो काम लिया, अपने जीवन के उस महान काम के लिए, जो आगे चलकर करना था, जिस प्रकार से इन्हें तैयार किया, वह संसार के लिए एक अनुसरणीय उदाहरण है।

इस विषय में आप फ़रमाया करते थे कि प्रत्येक व्यक्ति विकास की प्रक्रिया में है, जिसमें उसका निर्माण हो रहा है। जन्म–जन्मांतर से वह तरक़्क़ी की मंज़िलें तय करता हुआ पूर्णता के शिखर पर पहुँचता है। इसीलिए कहा

है, 'Every saint has a past and every sinner a future,' अर्थात जो आज संत है, वह कभी हमारी तरह इंद्रियों के घाट पर विचरता था और हम, जो आज इंद्रियों के घाट पर बैठे है, उचित शिक्षा एवं मार्गदर्शन से आगे चलकर संत बन सकते हैं।

इस विषय पर बाबा जयमल सिंह जी के जीवन–वृत्तांत में ब्योरेवार प्रकाश डालते हुए आप लिखते हैं, "किसी महापुरुष की कहानी क्या है? वह आत्मा की यात्रा का इतिहास है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से यह कहानी पूरी करने के लिए अनगिनत वर्षों का, जन्म–जन्मांतर का इतिहास लिखना होगा। प्राप्ति की मंज़िल पर पहुँचने का समय, देखने वालों को ऐसा दिखाई देता है, जैसे चुटकी बजाई और सारा काम पूरा हो गया। लेकिन इससे पहले जन्म–जन्मांतर की कठिन यात्रा तय करनी पड़ती है।" इन शब्दों के साथ यह कहकर वे हमें उत्साह दिलाते थे, 'What a man has done, a man can do, of course with proper help and guidance,' अर्थात एक व्यक्ति ने जो काम किया, दूसरा व्यक्ति भी वह काम कर सकता है, यदि वैसी ही सहायता और मार्गदर्शन उसे मिले। समय अवश्य लगता है, लेकिन इंसान की उन्नति एवं प्रगति का कोई पारावार नहीं। वह क्या नहीं कर सकता? इसी प्रसंग में आप कहते हैं, "उस महान सुरत (परमात्मा) के एक इशारे से लाखों–करोड़ों खंड–मंडल अस्तित्व में आ गए, तो यह हमारी सुरत (आत्मा) भी तो उसी (अविनाशी प्रभु) की अंश है, उसी महाचेतनता के सागर की एक बूंद है। यह चाहे, तो क्या एक नई दुनिया नहीं बना सकती, एक नए मंडल की रचना नहीं कर सकती?"

मानवता के इस उच्चतम आदर्श को पाने के लिए हमारे पथ–प्रदर्शन हेतु आपने कई पुस्तकें लिखी हैं, लेकिन सबसे महान ग्रंथ, जो उन्होंने लिखा, वह उनका जीवन है, जिसमें क़दम–क़दम पर आदर्श जीवन की अनमोल शिक्षाएँ हमें मिलती हैं।

डायरी अर्थात जीवन की पड़ताल का महत्त्व

आध्यात्मिक जीवन के लिए आपने नेक–पाक–सदाचारी जीवन बनाने पर बड़ा ज़ोर दिया है और उसके लिए डायरी के द्वारा जीवन की पड़ताल को ज़रूरी बताया है। सात साल की उम्र से ही आपने डायरी रखना शुरू

कर दिया था, जिसमें दिनभर की ग़लतियों को बड़ी सख़्ती और बेलिहाज़ी के साथ नोट करते और आगे के लिए उन ग़लतियों से बचने का यत्न करते। दीक्षितों को आप डायरी के द्वारा अपनी त्रुटियों पर नज़र रखने और उन्हें निकालने के महत्त्व पर ज़ोर देते। यह आपके अपने महान जीवन का निचोड़ था। डायरी के संदर्भ में आपका कथन है कि आदमी कुछ भी न करे, सच्चाई और ईमानदारी से केवल डायरी लिखना शुरू कर दे, तो उसका जीवन पलटा खा जाएगा, उसके दिल का शीशा साफ़ होकर सत्य की झलक उसमें पड़ने लगेगी। इसी प्रसंग में आप फ़रमाते हैं कि परमात्मा को पाना कठिन नहीं, इंसान का सही मा'नो में इंसान बनना मुश्किल है। और इंसान बनने के लिए आपने अपने जीवन के अनुभव का निचोड़ आपने डायरी के रूप में प्रस्तुत किया है। डायरी के बारे में पूरे वैज्ञानिक 'scientific' ढंग से आपने 'Seven Paths to Perfection' नामी पेम्फ़लेट में (जो अनुवादित होकर हिंदी में भी छप चुका है) जो व्याख्या की है, उसे यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। यहाँ हम महाराज जी के केवल एक ही कथन को दोहरायेंगे कि, "हमें पता ही नहीं कि हम कहाँ जा रहे हैं? यदि हमें पता हो कि हम गंदगी में बैठे हैं, तो अवश्य ही हम उस गंदगी से निकलने की कोशिश करेंगे। हमें पता ही नहीं कि हममें क्या त्रुटियाँ हैं, दोष हैं– दिनभर के चिंतन और कथनी–करनी का हिसाब करें, तो पता भी चले हम दूसरों की त्रुटियों को देखने में लगे रहते हैं। अपनी तरफ़ नज़र भर के देखें, तो दूसरों के दोष देखने की फ़ुरसत ही न मिले और न ही हिम्मत पड़े।"

विश्व-प्रेम

महाराज जी का कथन है कि जो परमात्मा से प्यार करता है, स्वाभाविक है कि उसकी सृष्टि से भी उसे प्यार होगा। अपने सत्संग–प्रवचनों में आप बार–बार यह आदेश देते कि सबसे प्यार करो, किसी से नफ़रत न करो, किसी का बुरा चिंतन न करो, सब उस प्रभु के बच्चे हैं। प्रभु से प्यार है, तो उसके बच्चों से भी प्यार होगा।

आपके बचपन के ज़माने की एक घटना इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। आपकी आदत थी कि आप हरेक से प्यार से मिलते थे। एक बार पिता ने

कहा, "पाल! हमारे मित्र तुम्हारे मित्र होंगे और हमारे शत्रु तुम्हारे शत्रु।" आप पिता की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करते थे। लेकिन यह बात सुन कहने लगे, "पिताजी, आपके मित्र मेरे मित्र हैं, यह तो ठीक है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि आपके शत्रु मेरे भी शत्रु हों। संभव है, उनकी शत्रुता किसी ग़लतफ़हमी के कारण हो। मैं घृणा और शत्रुता करने नहीं आया। मैं तो सारी मनुष्य जाति से प्रेम करने आया हूँ।"

बरसों बाद, 1955 ई. में अपनी पहली विश्व यात्रा के समय अमरीका के नगर शिकागो में एक विराट सार्वजनिक समारोह में भाषण करते हुए आपने अपने इस आदर्श को दोहराते हुए कहा, "जो परमात्मा से प्यार का दावा करते हैं, जिसे वह देख नहीं रहे और अपने जैसे इंसानों से, जिन्हें वे देख रहे हैं, नफ़रत करते हैं, वह किस मुँह से परमात्मा से प्यार करने का दावा करते हैं?" और ईशु–मसीह की तालीम का प्रमाण देते हुए आपने कहा, "अपने प्रभु से प्यार कर, अपने पूरे मन से, अपनी पूरी शक्ति से और अपनी पूरी आत्मा के साथ। और चूंकि हरेक दिल प्रभु का निवास–स्थान है, इसलिए अपने पड़ोसी से वैसे ही प्रेम कर, जैसा प्रेम तुझे अपने आप से है।" फिर कहा, "परमात्मा एक है और वह सबका प्रभु है। उसकी सृष्टि भी एक है। ज़रूरत है कि इस सच्चाई को आज के दिन और ज़माने में फिर ताज़ा किया जाए, लोगों को इसे स्मरण कराया जाए।"

आदर्श जीवन–नेक कमाई

ज़माने के रिवाज़ के अनुसार आपका विवाह छोटी उम्र में हो गया था, किंतु आपने चिरकाल तक पत्नी को अपने पास नहीं बुलाया। पेशावर में नौकरी शुरू की, वहाँ से लाहौर बदली हो गई। लाहौर में आपने गृहस्थ जीवन आरंभ किया। जीवन का जो आदर्श आपने तय किया था, उसमें ईमानदारी की कमाई और हर काम में सच्चाई बुनियादी चीज़ थी। परंतु महकमा ऐसा मिला, जिसमें रिश्वत का बोलबाला था। आप मिलिटिरी इंजिनियरिंग सर्विस में क्लर्क भर्ती हुए थे। एक बार एक ठेकेदार बिल जल्दी पास करवाने के लिए आपके पास पहुँचा और साथ में रिश्वत पेश की, जो वहाँ नियमित रूप से चलती थी। आपने उस ठेकेदार से कहा, "रिश्वत देने की ज़रूरत नहीं, यह तो मेरा कर्तव्य है। इस काम की तनख़्वाह मुझे मिलती है। आप

निश्चिंत रहें, आपका बिल जल्दी पास हो जाएगा।" ठेकेदार समझा रिश्वत की रक़म शायद कम है। उसने कुछ और रुपए मिलाकर—चाँदी के रुपए थे—सारी नक़दी मेज़ पर रख दी। बहुत ज़ोर देने पर भी आपने रिश्वत लेना स्वीकार नहीं किया, तो वह रुपए वहीं मेज़ पर छोड़कर चला गया। आपने रक़म उठाकर उसके पीछे फेंक दी। फ़र्श पर रुपए गिरे, तो बड़े ज़ोर की झंकार हुई। सारे दफ़्तर में सन्नाटा छा गया। पुराने कर्मचारियों ने समझाया कि हाथ आई रक़म को फेंकना ठीक नहीं है। किंतु आपने जीवन का जो आदर्श बना रखा था, उसमें घूसखोरी और लोभ की कोई गुंजाइश नहीं थी। घरवालों ने भी बड़ा ज़ोर दिया, लेकिन आपने उन्हें साफ़ जवाब दे दिया कि हराम की कमाई की मुझसे कोई आशा न रखें। मैं अपनी सारी कमाई आपके हवाले कर दूँगा, अपने लिए मुझे कुछ नहीं चाहिए।

जिन्हें ज़िंदगी में कोई बड़ा काम करना है, सदाचार की नींव पर आध्यात्मिकता का महल खड़ा करना है, उन्हें ज़िंदगी के हरेक काम को व्यवस्थित करना पड़ता है। वे किसी के आगे हाथ क्यों पसारेंगे, झमेलों में क्यों पड़ेंगे? इसीलिए महापुरुषों ने हमेशा सादगी को मुख्य रखा है। चुनाँचे आपका जीवन और रहन–सहन बहुत सादा रहा। हर प्रकार के हालात में गुज़ारा कर लेते। आवश्यकताएँ न्यूनतम थीं; जो मिले, उसी से गुज़ारा करना ज़िंदगी का उसूल बना रखा था। शुरू–शुरू में जब आप दफ़्तर में क्लर्क थे, तन्खाह थोड़ी थी, वह भी बाँटकर खाते, दीन–दुखियों की मदद करते। फिर भी आराम से गुज़ारा होता था, इतना सरल जीवन था।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि वेतन मिलने में अभी सात दिन बाक़ी थे और जेब में केवल एक आना रह गया था। सोचा, किसी से एक रुपया उधार माँग लें, पर तुरंत ही ख़्याल आया कि इस तरह एक बुरी आदत पड़ जाएगी, अतः कर्ज़ नहीं लिया और पूरा सप्ताह एक आने पर काट दिया, वह इस तरह कि एक आने के भुने चने लिए, भूख लगने पर चने खाकर ऊपर से ठंडा पानी पी लेते। बात बहुत साधारण थी, पर ऐसी साधारण बातें बड़े गहरे परिणाम लिए होती हैं। आप फ़रमाया करते, "भूखे पेट सो रहना इससे कहीं अच्छा है कि अगला दिन चढ़े तो हम पर कर्ज़ का बोझ लिए हों। हम छोटी–छोटी बातों पर ध्यान नहीं देते, इसलिए बड़ी चीज़ें हाथ से निकल जाती हैं।"

आदर्श सरकारी अफ़सर

सरकारी नौकरी में कारगुज़ारी का, जिसके कारण आप एक साधारण क्लर्क से उन्नति करके डिप्टी असिस्टेंट कंट्रोलर ऑफ़ मिलिटरी एकाऊंट्स के उच्च पद पर पहुँचे और मानवता का, जिसके कारण आप अफ़सरों और मातहतों, दोनों के प्रिय थे, एक उच्चतम आदर्श अपने जीवन में आपने पेश किया। अफ़सर आपको केवल एक योग्य अफ़सर ही नहीं, बल्कि प्रभु–प्राप्त महापुरुष समझते थे और मातहत आपको एक सहृदय अफ़सर और अपना सरंक्षक समझते थे। आपके सदाचार और सद्व्यवहार की एक झलक भी जिसने देखी, वह हमेशा के लिए आपका हो गया।

इस संदर्भ में इनके जीवन की एक घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 36 वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद जब आप रिटायर हुए, तो स्टाफ़ ने विदाई की पार्टी देने की इच्छा प्रकट की, पर आपने मनाही कर दी और कहा कि मैं हरेक को ख़ुद ही उसकी मेज़ पर जाकर मिल लूँगा। सबको आपसे बिछुड़ने का शोक था। शाम को दफ़्तर के मुसलमान कर्मचारियों और दूसरे लोगों ने प्रार्थना की कि आप बाग़ में आकर बैठ जाएँ। हम सब वहीं आपके दर्शन कर लेंगे। यह सुझाव आपने स्वीकार कर लिया और अगले दिन सुबह–सवेरे अफ़सर और अन्य कर्मचारी सब बाग़ में इकट्ठे हो गए। सबकी आँखों में आँसू थे। उनमें एक चपरासी भी था, जिसे भर्ती हुए अभी दो दिन ही गुज़रे थे। वह फूट–फूटकर रो रहा था। आपने उससे पूछा, ″भाई, इन लोगों ने बरसों मेरे साथ काम किया है। इनके दुख को मैं समझ सकता हूँ। तुम्हें तो दो ही दिन हुए हैं, यहाँ आए हुए। तुमने मेरा क्या देखा है?″ चपरासी ने कहा, ″आप पहले अफ़सर हैं, जिसने हम तुच्छ चपरासियों को भी इंसान समझा है, अन्य लोग तो हमें चपरासी ही समझते हैं।″

मातेहतों से प्रेम और सहानुभूति का बर्ताव आप करते थे। कितना ही अनुभवहीन और अयोग्य कर्मचारी हो, यह प्यार से समझा–बुझाकर उसे सीधे रास्ते पर ले आते। आपका कहना था कि कर्मचारी की नालायक़ी का दंड उसके बीवी–बच्चों को क्यों दिया जाए? क्यों न उसे सुधरने का अवसर हम दें। आपको पूर्ण विश्वास था और इस विश्वास को आपने निज अनुभव से सिद्ध कर दिखाया कि प्रेम–प्यार से हर इंसान को सीधे रास्ते पर लाया जा सकता है। आप Administration and Co-ordination के

इंचार्ज थे। जिन क्लर्कों को दूसरे अफ़सर अयोग्य बताकर बरखास्त करने अर्थात नौकरी से निकाल देने के लिए इनके पास भेज देते थे, यह उन्हें अपने मातेहत रख लेते। कुछ दिन उनका रंग–ढंग देखते, फिर उनको प्यार से समझाते कि अगर तुम निकाल दिए गए, तो तुम्हारे बाल–बच्चों के लिए मुश्किल बन जाएगी। तुमको काम करना चाहिए। यह बात उनके मन में बैठ जाती और वह काम पर लग जाते। कुछ समय पश्चात वही अयोग्य क्लर्क हर तरह से योग्य पाए जाते। उच्च अधिकारियों के लिए किसी व्यक्ति का इनके मातेहत काम करना कार्यपटुता का एक बड़ा सर्टिफ़िकेट था।

मातेहतों से सहानुभूति के सिलसिले में इनके नौकरी के समय के कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। एक बार जब आप छुट्टी पर थे, तो आपके महकमे के तीन क्लर्कों को किसी दोष पर नौकरी से निकाल दिया गया। ये छुट्टी से लौटकर जब ड्यूटी पर उपस्थित हुए, तो यह समाचार सुनकर इन्हें बड़ा दुख हुआ। आपने उन क्लर्कों से अर्ज़ियाँ लिखवाकर उन्हें दोबारा नौकरी पर रखने की सिफ़ारिश करके अर्ज़ियाँ कंट्रोलर के पास भेज दीं। आपने लिखा कि ग़लती हर इंसान से होती है। इनकी ग़लती के लिए इन्हें चेतावनी देना ही काफ़ी होगा। नौकरी से बरख़ास्त करके इनके परिवारों को मुसीबत में डालना उचित नहीं। इस सिफ़ारिश के बाद तीनों क्लर्क दोबारा नौकरी पर लगा दिए गए।

इसी प्रकार प्रथम विश्व महायुद्ध की समाप्ति पर वो सारे क्लर्क, जो युद्ध में एमरजेंसी के अंतर्गत अस्थाई रूप में भर्ती किए गए थे और अपने पद की वांछित योग्यता नहीं रखते थे, उनके बारे में यह हुक्म जारी किया गया कि वे नौकरी पर लगे रहना चाहते हैं, तो परीक्षा दें। परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही वह नौकरी पर लगे रह सकते हैं। उनमें कई ऐसे क्लर्क थे, जो छः–छः, सात–सात साल से नौकरी पर लगे हुए थे और काम का पूरा अनुभव रखते थे। इतने समय के पश्चात उन पर परीक्षा पास करने की पाबंदी लगाना और फ़ेल होने पर नौकरी से निकाल देना भारी अन्याय था। नौकरी छूटने पर वो दोबारा किसी सरकारी महकमे में भर्ती नहीं हो सकते थे क्योंकि वो 25 वर्ष की आयु–सीमा पार कर चुके थे। सौभाग्य से आप उनके परीक्षक नियुक्त हुए। आपने कंट्रोलर ऑफ़ मिलिटरी एकाउंट्स को सारा मामला पेश किया और सिफ़ारिश की कि ऐसी हालत में, जबकि

बरसों काम करते रहने के कारण इन क्लर्कों की योग्यता और कार्यपटुता पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है, किसी को फ़ेल न किया जाए, सबको पास कर दिया जाए। अतः अफ़सरों की स्वीकृति से आपने सबको पास कर दिया।

उन्हीं दिनों वज़ीरिस्तान की फ़ील्ड सर्विस के सिलसिले में कंट्रोलर का जो दफ़्तर क़ायम था, वह तोड़ दिया गया और बहुत से अफ़सर और क्लर्क छटनी कर दिए गए। वज़ीरिस्तान का कंट्रोलर बदलकर लाहौर में कंट्रोलर नियुक्त हुआ। दफ़्तर के क्लर्कों ने जो छटनी कर दिए गए थे, उन्होंने लाहौर के दफ़्तर में भर्ती के लिए दरख़्वास्तें दीं। कंट्रोलर उनसे पूछता, तुमने सरदार कृपाल सिंह के मातेहत काम किया है? किया है, तो किस पद पर? जो कहता, मैंने सुपरिंटेंडेंट के पद पर उनके नीचे काम किया है, उसे वह सुपरिंटेंडेंट लगा देता, जिसने क्लर्क की हैसियत से इनके नीचे काम किया था, उसे वह क्लर्क लगा देता। लोगों ने पूछा, "यह आप क्या कर रहे हैं?" वो कहने लगा, 'I know him, any man who has worked under him knows his job,' अर्थात "मैं उन्हें जानता हूँ। जिस व्यक्ति ने उनके मातेहत काम किया है, वह अपने काम का पूरा अनुभव रखता है।" अफ़सरों को इन पर इतना विश्वास और भरोसा था! कंट्रोलर ही को नहीं, मेहकमे के सबसे बड़े अफ़सर, एकाउंटेंट जनरल ऑफ़ मिलिटरी एकाउंट्स को, बल्कि फ़ाइनेंस मेम्बर तक को आप पर भरोसा था। चुनाँचे एकाउंटेंट जनरल की ओर से कंट्रोलर को प्रायः आपसे सलाह करने का आदेश मिला करता था।

लोगों को आप पर कितना भरोसा था इसका एक उदाहरण यह है कि 1914 ई. की लड़ाई में लाम (युद्ध) पर जाने वाले सैनिक अपनी एलॉटमेंट आपके नाम लिख देते थे। उन्हें अपने माता–पिता पर विश्वास नहीं था कि वह उनके बीवी–बच्चों से पूरा इंसाफ़ बरतेंगे। उन्हें अपने माता–पिता से ज़्यादा आप पर भरोसा था।

परोपकार की लगन

संत परोपकार के लिए संसार में आते हैं। उनका जीवन दूसरों के लिए, दुनिया की भलाई के लिए होता है। महाराज जी का सारा जीवन निष्काम–सेवा और परोपकार का एक उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करता है।

शुरू से ही इन्हें निष्काम–सेवा की लगन थी। अस्पतालों में जाकर रोगियों की सेवा करना, उनका शरीर दबाना, उनको खाने की चीज़ें उपलब्ध करना, उनके बर्तन–भांडे तक मांझना आपका नियम रहा। दीन–दुखियों की सेवा के लिए आपने होम्योपॅथी चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की और रोगियों की प्रारंभिक चिकित्सा करते और उन्हें औषधियाँ देते रहे। रेलवे स्टेशन पर जाकर वृद्ध और कमज़ोर लोगों का सामान तक आपने ढोया है। आप फ़रमाते थे कि मन की शुद्धि के लिए निष्काम–सेवा नितांत आवश्यक है। इससे मन निर्मल होता है और ख़ुदी (अहं) घटती है, ह्रदय विशाल होता है। तन की सेवा इस सिलसिले में विशेष महत्त्व रखती है।

अपने सत्संग–प्रवचनों में आप फ़रमाते, "परमात्मा से जिसे प्यार है, स्वाभाविक है कि उसे उसकी सृष्टि से भी प्यार होगा और प्यार देना जानता है, लेना नहीं। यह प्यार की निशानी है। कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

जब तक देह है, दे, दे, पुनि दे।
नहीं रहेगी देह जब तो कौन कहेगा दे।।

निष्काम–सेवा की लगन के संदर्भ में इनके जीवन की दो घटनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 1919 ई. में, प्रथम विश्व महायुद्ध के पश्चात पंजाब पर इन्फ़्लुएंज़ा की महामारी का प्रकोप हुआ और लोग धड़ाधड़ मरने लगे। छूत की बीमारी होने के कारण सगे–संबंधी भी रोगियों से दूर भागने लगे। कोई उनका हाल पूछने वाला न रहा। इष्ट–मित्र, नाती–संबंधी, सबको अपनी–अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। आपने अपनी ज़िंदगी की चिंता छोड़कर रोगियों की सेवा का काम अपने हाथों में लिया, उन्हें दवा–दारू देने, उनके लिए भोजन की व्यवस्था से लेकर सफ़ाई के प्रबंध तक सारे काम अपने हाथों से करते रहे। उसी साल पंजाब में प्लेग फैली। यह महामारी ऐसी तेज़ी से फैली कि लोग धड़ाधड़ मरने लगे, भरे–पूरे नगर सुनसान हो गए। प्लेग ऐसा भयानक रोग है कि नाम सुनते ही इंसान के होश गुम हो जाते हैं। समय पर इलाज न किया जाए, तो रोगी चंद घंटों में दम तोड़ देता है। लोग अपने नाती–संबंधियों को मरता छोड़ घरों से भाग निकले— घर के घर ख़ाली हो गए। मुरदों को उठाने तक के लिए आदमी न मिलता था। चुनाँचे लाशें सड़ने लगीं। आपने एक बार फिर समाज सेवकों की टोली इकट्ठी की। पहले अकेले ही काम शुरू किया, फिर देखा–देखी और लोग

भी जनसेवा के इस कार्य में शामिल हो गए। लाशों को ठिकाने लगाया गया, सफ़ाई का प्रबंध किया गया, प्लेग के रोगियों की, जिनके पास जाते लोग डरते थे, सेवा में आपने और आपके साथियों ने रात–दिन एक कर दिया।

'मैं सबका हूँ'

महापुरुष सारी मानव जाति के होते हैं। सबसे प्यार करते हैं, किसी से घृणा नहीं करते। उनकी नज़र में इंसान–इंसान सब एक हैं। आपके बचपन के हालात से प्रकट है कि आप शुरू से ही विश्व–प्रेम के संस्कार लेकर आए थे। आपकी उम्र 18-19 बरस की होगी, उस समय की घटना है। आप उन दिनों क्लर्क थे। तन्ख़्वाह मामूली थी, उसी में जैसे–तैसे गुज़ारा करते थे। उन्हीं दिनों आपके चचा लाहौर आए, वो बीमार थे। आपने उन्हें अस्पताल में दाख़िल करा दिया और उनके लिए प्रतिदिन दवाइयाँ, दूध, फल आदि घर से ले जाते। एक दिन चाचाजी को दूध पिला रहे थे कि पास ही चारपाई पर एक वृद्ध रोगी दिखाई दिया– हड्डियों का ढाँचा, तन ढाँपने को चादर तक उसके पास नहीं थी। आप उसके पास गए और बड़े प्यार से पूछा, "आपको क्या चहिए?" बूढ़े की आँखें भर आईं कि इस दुनिया में कोई मेरा हाल पूछने वाला भी है। उस दिन से आप जहाँ अपने चचा के लिए घर से सामान ले जाते, साथ में उस बूढ़े के लिए भी ले जाते। फलस्वरूप इन्हें स्वयं कई दिन भुने चने खाकर गुज़ारा करना पड़ा। चाचा यह देखकर बड़े हैरान हुए और कहने लगे, "मैं तो तुम्हारा चाचा हूँ। मेरा हक़ है, तुम पर। यह बूढ़ा तुम्हारा क्या लगता है? हड्डियों का ढाँचा! तुम्हारे किसी काम भी नहीं आ सकता, न तुम्हारी सेवाओं का बदला चुका सकता है। फिर भी तुम उससे वैसा ही बर्ताव करते हो, जैसा मेरे साथ।" आपने कहा, "चाचा जी, मेरे लिए आप दोनों बराबर हैं। इस बूढ़े का मुझ पर वही अधिकार है, जो आपका है, बल्कि सबका अधिकार है मुझ पर। यह सारी मनुष्य जाति एक कुटुंब है। सब मेरे लिए हैं और मैं सबका हूँ। हम दो नहीं, सब एक हैं। मेरे लिए कोई पराया नहीं, सब अपने हैं।"

परमार्थ की भूमि

जैसा कि आपके बचपन के वृत्तांत में आया है, छोटी अवस्था से आपमें आध्यात्मिकता के जौहर झलकने लगे थे। हृदय की भूमि तैयार थी।

अंतःकरण की शुद्धि की यह अवस्था थी कि भूत, भविष्य, वर्तमान सब नज़र के सामने थे। 1913-14 ई. की बात है, ध्यान में बैठे हुए इन्हें सारे अगले–पिछले हालात, पीछे क्या हुआ, आगे क्या होने वाला है, दिखाई देने लगे। जो भी व्यक्ति सामने आता, उसके दिल की बात आप जाने लेते। इससे आपके कार्य में विघ्न पड़ने लगा। आप फ़रमाते हैं कि मैंने उस वक़्त प्रभु से दो चीज़ें माँगीं। मैंने प्रार्थना की, "हे प्रभु! अंतर्यामी होने का वरदान, जो तूने मुझे दिया है, इसके लिए शुक्रिया। यह तोहफ़ा अभी अपने पास रख और ये वरदान मुझे दे कि दुनिया में मेरा जीवन एक साधारण व्यक्ति के समान व्यतीत हो। दूसरे यह कि मेरे हाथों किसी का उपकार हो, तो मुझे इसका भान न हो।" यह वो हृदय था, जिसमें प्रभु ने ज्योति का अनंत भंडार रखा– दोनों हाथों लुटाने के लिए। यह सत्गुरु दयाल श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाने के दस वर्ष पूर्व की बात है, उस ज़माने की, जब आप भी स्वयं सत्पथ की खोज में थे। आपके कल्याणकारी व्यक्तित्व के प्रताप से कितने ही लोगों को परमार्थ–लाभ हुआ।

बेहोशी या समाधि?

1915 ई. की बात है, जब आप नौकरी करते थे। आपके चचेरे भाई सरदार दीदार सिंह आपके यहाँ ठहरे हुए थे। उन्हें एक विचित्र रोग था कि चलते–चलते सारा शरीर सुन्न हो जाता, हाथ–पाँव काम करना छोड़ देते, शरीर को सकता–सा हो जाता। उन्हें लगा कि संभवतः यह अधरंग की शुरूआत है। उनके पिता ने बड़े–बड़े नामी डॉक्टरों को दिखाया और इलाज करवाया, परंतु कोई आराम न हुआ। आपके यहाँ निवास की अवधि में भी सरदार दीदार सिंह को दौरा पड़ा और वो बड़े परेशान हुए। आपने उन्हें तसल्ली दी कि घबराने की कोई बात नहीं। यह कोई रोग नहीं, पूर्व संस्कारों के कारण सुरत एकत्र हो जाती है और इंद्रियाँ काम करना छोड़ देती हैं। आगे रास्ता नहीं मिला, इसलिए परेशानी है। कहो तो आगे रास्ता खोल दिया जाए और चाहो तो यह सिलसिला बंद कर दिया जाए।

कौन नहीं चाहेगा कि उसका पर्दा (कपाट) खोल दिया जाए! उन्होंने हामी भरी, तो आपने रास्ते पर डाल दिया, जिससे वो हर वक़्त एक जागृत समाधि, मस्ती और मग्नता की अवस्था में रहने लगे। चिंता और परेशानी

से पूर्णतया निश्चितंता प्राप्त हो गई, वो हर वक़्त हँसते रहते। देह का उनको कोई आभास न रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक बार चलते–चलते दीवार से टकरा गए, सिर फट गया और लहू बहने लगा, परंतु दीदार सिंह को कोई आभास नहीं हुआ, न पीड़ा ही हुई। यह हालत देखकर आपने आत्मानुभव का वरदान, जो उसे दिया था, वापिस ले लिया, ताकि वह शेष जीवन एक साधारण व्यक्ति के समान व्यतीत कर सके। पाँच वर्ष पश्चात जब उसका अंत समय आया, तो उसकी प्रार्थना पर आपने अंतर्मुख 'ज्योति' और 'श्रुति' के अनुभव का सिलसिला फिर से ज़ारी कर दिया और वह मस्ती और मग्नता की अवस्था में इस नश्वर जगत से प्रस्थान कर गया।

डाकू का उद्धार

आप नौकरी के सिलसिले में बदलकर डेरा इस्माइल खाँ आ गए और 36 सिक्ख रेजिमेंट में एकाउंट्स अफ़सर लगे। ये उस समय का वृत्तांत है (हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाने के तीन वर्ष पूर्व का यह क़िस्सा है)। एक भयानक आकृति के डाकू ने, जो हिंदुस्तानी कमांडिंग अफ़सर का अंगरक्षक भी था, बड़ी दहशत फैला रखी थी। वह सैनिकों के लिए पका हुआ गोश्त सबके सामने उठाकर ले जाता, उसे रोकने का साहस किसी में न था। सब उससे डरते थे। पर एक विचित्र बात थी कि सरदार कृपाल सिंह जी जब बाहर ड्यूटी पर होते, तो पीछे से इनके कमरे में जाकर वह झाड़ू–बुहारी देकर सफ़ाई कर जाता। आप क्वार्टर में आते, तो कमरा शीशे की तरह साफ़ मिलता। एक दिन आप समय से पहले लौट आए, तो देखा कि डाकू कमरे की सफ़ाई कर रहा है। आपने उससे पूछा, "भाई, तुम क्यों मेरे लिए रोज़ का यह झंझट मोल लेते हो?" डाकू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कहने लगा, "सरदार साहब! जब मैं आपको देखता हूँ, तो मेरे सारे पाप आँखों के सामने घूम जाते हैं और मैं थर–थर काँपने लगता हूँ। मैं बड़ा पापी हूँ, मैंने असंख्य निर्दोष आदमियों की हत्या की है। कितने ही लोगों को मैंने गले में अँगूठा देकर जान से मार डाला है। मेरे लिए भी क्या क्षमा की आशा हो सकती है?" आपने उसे सांत्वना दी और कहा, "क्षमा का द्वार सबके लिए खुला है, पापी से पापी और गए–गुज़रे व्यक्ति के लिए भी, यदि वह अपने पिछले पापों के लिए प्रायश्चित करे और आगे

से पाप करना बंद कर दे।" डाकू ने कान पकड़े और गुनाहों से तोबा की, तो आपने आज्ञा दी कि प्रभु का सुमिरन किया करो। वह डाकू प्रभु भक्त बन गया। इसके बाद भी आपने कई डाकुओं को 'नाम' दिया और वे सब सीधे रास्ते पर आ गए।

माता का प्रेम और पारिवारिक परिस्थिति

विद्यार्थी जीवन की यह कहानी अधूरी रह जाएगी, यदि माता जी के प्रेम का यहाँ वर्णन न किया जाए। धन्य वह जननी, जिसे ऐसे महापुरुष की माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन आँखों से वह आपको देखती होंगी! माता के प्रेम की झलक आपके अपने कथनों में मिलती है। एक समय जब पहली बार यह नौकरी से वापस घर लौटे, तो अभी घर में क़दम भी नहीं रखा था कि माता इनके आगमन का समाचार पाकर बड़ी बेताबी से उठी और छज्जे से देखने आई। शौक़ की बेताबी में माता को सुध ही न रही कि छज्जा कहाँ ख़त्म हो गया और वह नीचे गिर गईं।

विद्यार्थी जीवन समाप्त होने से कुछ समय पहले आपने माता जी को सूचित कर दिया था कि 6 महीने के अंदर–अंदर उन्होंने इस देह को त्याग देना है और साथ ही उन्हें यह आदेश दिया कि वे बाहर के सारे विचारों को छोड़ प्रभु को याद करें। आपकी भविष्यवाणी के अनुसार 6 महीने में माता जी का देहांत हो गया। मृत्यु से 17 दिन पहले आपने माता जी को पत्र लिखा कि मृत्यु के लिए तैयार रहें, आपको शीघ्र ही इस देह का परित्याग करना है। साथ ही अपने बड़े भाई सरदार जोधसिंह जी को नौशहरा चिट्ठी लिखी कि माता जी की सेवा के लिए आप तुरंत घर पहुँचें, मैं वहाँ नहीं पहुँच सकूँगा। सरदार जोधसिंह जी गाँव पहुँचे, तो उसके थोड़े दिनों पश्चात माता जी ने प्राण त्याग दिए। यह वह ज़माना था जब आप अभी गुरु के चरणों में नहीं पहुँचे थे, किंतु दिव्य–मंडलों के कपाट आपके लिए खुले हुए थे, जिसके फलस्वरूप आपने अंतर दिव्य–मंडलों में माता जी से भेंट भी की।

इस प्रकार की कई घटनाएँ आपके जीवन में मिलती हैं। 1914 ई. की घटना है, आपके बड़े भाई सरदार जोधसिंह लड़ाई पर बसरा गए हुए थे। एक दिन ध्यान में बैठे हुए आपने देखा कि उनके चेहरे पर मुरदनी छाई हुई है और वो बहुत कमज़ोर दिखाई देते हैं। आपने तुरंत ही तार दिया,

जिसमें उनके स्वास्थ्य के बारे में पूछा। वहाँ से जवाब आया कि वह वास्तव में बहुत बीमार हैं। इसी प्रकार एक बार बड़े भाई को आपने पत्र लिखा कि उनकी पत्नी का अंत समय समीप है। सरदार जोधसिंह चिट्ठी पढ़कर बड़े हैरान हुए क्योंकि उनकी पत्नी उस समय भली–चंगी बैठी थीं, किसी प्रकार की कोई तकलीफ़ उन्हें नहीं थी। सरदार जोधसिंह जी इनकी चिट्ठी पर विचार कर रहे थे कि सहसा उनकी पत्नी की तबीयत ख़राब हो गई और स्थिति चिंताजनक हो गई और कुछ मिनट पश्चात् उसी दिन, जब आपकी चिट्ठी सरदार जोधसिंह जी को मिली थी, उनकी पत्नी ने प्राण त्याग दिए।

परिवार में किसी का अंत समय आता, तो आपको पहले पता चल जाता और उस महान अंतिम परिवर्तन अथवा 'Great final change' के लिए, जिसे मौत कहते हैं, आप पहले से उन्हें सचेत कर देते। परिवार में अपने से छोटे और बड़े प्रियजनों की मृत्यु का आपने कभी शोक नहीं किया, हमेशा हरि–इच्छा समझकर उसे स्वीकार किया। बड़े भाइयों, सरदार जोधसिंह तथा सरदार प्रेमसिंह के निधन के अतिरिक्त अपने दो बच्चों की मौत भी आपको देखनी पड़ी। बच्चों का इलाज पूरी लगन से आपने किया, यद्यपि परिणाम से भली–भांति परिचित थे और उनकी मृत्यु का कोई असर दिल पर नहीं लिया।

⌘⌘⌘

2.
प्रभु प्रीतम की खोज

कोई आणि मिलावै मेरा प्रीतमु पिआरा
हउ तिसु पहि आपु वेचाई।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰757)

"**कोई** ऐसा मिले जो मेरे प्रीतम प्यारे से, प्रभु–प्रीतम से मुझको मिला दे, मैं बय–ख़रीद (गिरवी) हो जाऊँगा, उसकी ख़ातिर अपने आपको बेच दूँगा।"

महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संग–प्रवचनों में प्रायः कहा करते थे कि जिसमें राज़े–ज़िंदगी, जीवन की गूढ़ पहेली, 'The Mystery of Life' के समाधान की– इस बात को जानने की तड़प पैदा हो गई कि मैं कौन हूँ, तो प्रकृति उसके समाधान का, हल का, स्वयं उपाय खोज देती है। यह प्रश्न यदि एक बार मन में उठे, तो हल होकर ही रहता है। आप अक्सर फ़रमाया करते, "परमात्मा कहीं दूर आसमानों पर नहीं, वह हमारे अंतर में ही बैठा है, वह हमारे प्राणों का प्राण है। जब वह देखता है कि बच्चा मुझे चाह रहा है, तो उसे अपने साथ मिलाने का कोई उपाय करता है।" इसी प्रसंग में आप फ़रमाते, "हम जीवन का कोई ऐसा आदर्श नहीं बनाते, जिसे पाने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दें, सब कामों में उसे मुख्य रखें। हमारे अंतर में कोई Ruling Passionए कोई ऐसी ज्वलंत चेतना, कोई ऐसी ज़बरदस्त लगन नहीं होती, इसीलिए हम उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहते हैं। हम अस्थिरता एवं दुविधा में सारी आयु गुज़ार देते हैं, 'यह भी हो जाए, वह भी हो जाए,' परिणाम यह होता है कि कुछ भी नहीं हो पाता।"

आप फ़रमाया करते, मेरे सामने तीन बड़े आदर्श थे :

1. मानवता **(Man making) :** इसे मानव का निर्माण कहो अथवा मानवता का विकास, सबसे पहला और मुख्य ध्येय यह था कि मानव पूर्ण मानव बने, स्वयं बने और दूसरों को बनाए। इंसान शरीर रखता है, बुद्धि रखता है और आत्मा–जो वह स्वयं आप है, देह रूपी मकान का निवासी, जो शरीर और बुद्धि, दोनों को आधार देने वाला है। इसलिए

मानव को तीनों पहलुओं, तीनों दृष्टिकोणों से उन्नति करनी है। शरीर द्वारा उन्नति में ब्रह्मचर्य की रक्षा, नेक–पाक–सदाचारी जीवन आदि बातें आ जाती हैं। शरीर एक घोड़े के समान है। हमें इसे मानव जाति की उन्नति के काम में लगाना है। परंतु वह काम है क्या?

घटि वसहि चरणारबिंद रसना जपै गुपाल।।
नानक सो प्रभु सिमरिऐ तिसु देही कउ पालि।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म॰4, पृ॰554)

बुद्धि के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति, धर्मग्रंथों का स्वाध्याय और चिंतन–मनन– यह सभी बातें बुद्धि के विकास से संबंध रखती हैं। मैट्रिक पास करने के बाद महाराज जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे, किंतु परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण यह इच्छा पूरी न हो सकी। फिर भी तीक्ष्ण बुद्धि और अध्ययन में रुचि के कारण आपने ज्ञान प्राप्ति में आश्चर्यजनक प्रगति की।

शरीर की शोभा आत्मा से है। शरीर मकान है, तो आत्मा मकीन अर्थात शरीर रूपी मकान का निवासी। आत्म–ज्ञान– आत्मा को जानना और प्रभु की प्राप्ति, यह आध्यात्मिक पहलू है। आत्मा उस परमात्मा की अंश है। परमात्मा महाचेतन है, चेतनता का सागर है। आत्मा उस महासागर की बूँद है। यह भी चेतन–स्वरूप है। परंतु मन–इंद्रियों के घाट पर फैलाव के कारण आत्मा अपने आपको भूल गई, इतना identify हो गई, लंपट हो गई इस देह के साथ कि उसे सुधि ही नहीं रही कि मैं आत्मा हूँ, देह नहीं, मकीन हूँ, मकान नहीं, निवास करने वाली हूँ, स्वयं आवास नहीं। पूर्व संस्कारों के कारण महाराज जी के सम्मुख यह लक्ष्य और ध्येय आरंभ से ही था कि यह (आत्मा) तन–मन की क़ैद से आज़ाद हो, बंधनों से मुक्त हो, अपने आपको जाने, अपने जीवनाधार परमात्मा को पहचाने, 'सार–तत्त्व' को प्राप्त करे, उसकी उपलब्धि के लिए दूसरों की मदद करे।

2. जनसेवा **(Man service) :** मनुष्य जाति की सेवा का दूसरा आदर्श आपके सम्मुख था। अतः दीन–दुखियों की सेवा के लिए चिकित्सा शास्त्र के अध्ययन की बात सोची और मेडिकल कॉलेजों से पाठ्यक्रम मँगवाए, ताकि चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करके रोगियों की मुफ़्त सेवा करें। परंतु किसी सहायता के बिना मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई संभव नहीं थी। इसके

बावजूद अपने तौर पर होम्योपैथिक चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की, जिसका लाभ रोगियों को मिला।

3. भूमि सेवा **(Land service) :** इस संबंध में यह आदर्श आपके सामने था : 'To grow a blade of grass more is better than a patriot's work, " अर्थात कृषि द्वारा कुछ उपजाना देशभक्तों के काम से उत्तम काम है। इस दृष्टिकोण को अपनाने की आज देश को भारी आवश्यकता है।

आपने कृषि कॉलेज लायलपुर से पाठ्यक्रम भी मँगवाया, किंतु परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण वहाँ भी न जा सके। इनकी शिक्षा का निचोड़ और जो पुस्तकें पढ़ी थीं, उनका सार यही तीन आदर्श थे।

परमात्मा पहले और सब पीछे

अपने जीवन का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए महाराज जी ने फ़रमाया, "दसवीं पास करके जब मैं स्कूल की पढ़ाई से निश्चिंत हुआ, तो मैंने अपने आपसे प्रश्न किया कि जीवन में नितांत आवश्यक काम मुझे कौन–सा करना है? मेरे जीवन का मुख्य ध्येय क्या है? एक सुनिश्चित लक्ष्य और ध्येय सामने रखा जाए, तो फिर जो क़दम उठेगा उसकी प्राप्ति के लिए ही उठेगा। इस प्रश्न का हल खोजने के लिए मैंने 6-7 दिन लगा दिए, जीवन के हर पहलू पर अच्छी तरह सोच–विचार किया और अंत में निर्णय किया कि मेरे लिए प्रभु का पाना पहले है, दुनिया बाद में— 'God first and World next.'

महाराज जी के प्रवचनों से प्रकट होता है कि कितनी सूक्ष्म दृष्टि और दूरदर्शिता से उन्होंने इस प्रश्न के एक–एक पहलू को देखा और उस पर गूढ़ विचार किया है। उन्होंने कहा, "विद्या (हर विद्या एवं ज्ञान–विज्ञान का भवन) कल्पित आधार पर खड़ा है। जब वह कल्पित आधार असत्य सिद्ध हो जाता है, निर्मूल ठहरता है, तो सारा भवन बालू की भीत के समान ढह जाता है। संसार का जितना भी ज्ञान–विज्ञान है, वह सब भौतिक तत्त्वों अर्थात पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि तक सीमित है। प्रकृति की शक्तियों को वश में कर लिया, तो क्या हुआ? यह सारे साज़–सामान तो यहीं रह जायेंगे, यह शरीर भी यहीं रह जाएगा। 'What profits a man if he gains possessions of the whole world and loses his own soul?' क्या हुआ यदि मनुष्य को संसार के सारे पदार्थ उपलब्ध हो गए, मगर उसने

अपने आपको खो दिया, सब कुछ जान लिया और अपने आपको न जाना।

ऐसी सूक्ष्म दृष्टि से आपने इस प्रश्न के प्रत्येक पहलू को देखा और आंका है कि जब आप इस विषय पर बात करते, तो सुनने वालों के दिल–दिमाग़ पर से सारे परदे उठ जाते, सारे संदेह समाप्त हो जाते तथा परमार्थ के सामने दुनिया और उसकी सारी उपलब्धियाँ, सारे ज्ञान–विज्ञान और कला–कौशल तुच्छ और निरर्थक दिखाई देने लगते। बाह्य ज्ञान सब थोथा है, आत्म–ज्ञान ही ज्ञान का सार है, इल्मुलइल्म अर्थात इल्मों का इल्म है।

इ़ल्लते जुमला इ़ल्महा ईनस्तो ईं, तातो दानी मन कयम दर यौमे दीं
क़ीमते हर कालह मीदानी के चीस्त, क़ीमते ख़ुदरा न दानी इ़ब्लहीस्त

सारे इल्मों की इल्लतेग़ाई (मूल) क्या है? ज्ञान–ध्यान का सार क्या है? तू जाने कि तू कौन है? सारे इल्मों के बारे में तूने जान लिया और अपने आपको नहीं जाना, तो तू मूर्ख है।

यह धर्मग्रंथ, जिन पर संसार के सारे धर्म और मज़हब खड़े हैं, कहाँ से आए? वो पूर्ण पुरुषों के ज्योतिर्मय हृदय से निकले हैं। इनमें उन महापुरुषों के निजी अनुभवों का वर्णन है, जो अपने आपको, आत्मा को जानने और परमात्मा को पाने के प्रयत्नों में उन्हें हुए। वो वास्तिवकता (सतवस्तु) अकथनीय है, कहने–सुनने से परे है। धर्मग्रंथों में संकेत मात्र हैं, उसके। फिर क्यों न मानव देह की दो पन्नों वाली पुस्तक को खोजा जाए, जिससे यह सारे इल्म और ज्ञान, सारे आविष्कार, सारे धर्मग्रंथ निकले हैं? दुनिया भर के धर्मग्रंथों और पूर्ण पुरुषों के शब्दों व आप्त वचनों के प्रमाण देकर संत कृपाल सिंह जी ने आत्म–ज्ञान को जैसे पेश किया, उससे यह बात स्पष्ट रूप में सामने आती है कि इसके बावजूद कि उन्हें अपने ध्येय का, जीवन कार्य का पूरा आभास था और जीवन का कार्यक्रम आप पहले से तय करके आए थे। फिर भी आपने एक साधारण मानव के रूप में इस प्रश्न के सारे पहलुओं को देखा और आंका तथा मानवीय दृष्टिकोण से उसका हल खोजा व लोगों को समझाया।

'ओ जाने वाले, देख हमें!'

जीवन का ध्येय क्या हो? इसका निर्णय करने के कुछ समय पश्चात

एक ऐसी घटना घटी, जिसने परमार्थ प्राप्ति की चिंगारी को, जो आपके मन में धीरे–धीरे सुलग रही थी, भड़कती ज्वाला का रूप दे दिया, जिसमें अन्य दूसरे विचार जलकर भस्म हो गए।

इस घटना का वर्णन करते हुए आपने फ़रमाया, "लाहौर में एक युवा स्त्री को मृत्यु शय्या पर देखने का संयोग मुझे हुआ। वह अच्छी–भली बैठी बातें कर रही थी कि सहसा बोली, "अच्छा, मैं जाती हूँ," और देखते–देखते उसका शरीर ठंडा हो गया। मैं देख रहा था कि अभी थोड़ी देर पहले यह स्त्री हमारी तरह जीती–जागती, बोलती–चालती थी। कोई चीज़ इसमें से निकल गई है, मगर हम में वह अभी विद्यमान है। वह क्या चीज़ है? अंतर में एक स्थाई आनंद मुझे प्राप्त था, यद्यपि कभी–कभी उसका क्रम टूट जाता था। अंतर दिव्य मंडलों में रसाई (पहुँच) भी थी, परंतु यह गुत्थी मैं हल न कर सका, वो गुत्थी परम संत श्री हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाकर ही हल हुई।

आप अर्थी के साथ श्मशान भूमि गए। वहाँ पास ही एक चिता पर एक बूढ़े आदमी का शव भी रखा था। उसे देखकर मन में विचार आया कि मौत जवान और बूढ़े में कोई अंतर नहीं देखती। कर्म का चक्र पूरा हो जाए, तो शरीर छोड़ना ही पड़ता है, जवान हो या बूढ़ा उसे कोई लिहाज़ नहीं। वहाँ से लौटे, तो रास्ते में मुंशी गुलाबसिंह की समाधि पर अंकित यह शिलालेख पढ़ा :

ए जाने वाले! कभी हम भी तेरी तरह ज़मीन पर चलते–फिरते थे, लेकिन आज ख़ाक होकर पाँव तले दबे पड़े हैं।

एक ही दिन में तीन–तीन घटनाएँ! आप फ़रमाते हैं, "यह शिलालेख पढ़कर दिल को चोट लगी। उस दिन से मेरी आँखों की नींद उड़ गई। (सातवीं कक्षा में जब पढ़ते थे, नींद तो तभी से बहुत कम आती थी)। इसके बाद मेरी सारी ज़िंदगी एक तलाश बनकर रह गई। वह क्या चीज़ है, जो इस मानव–देह को जीवित रखती है, इसे चलाती है और जब इससे निकल जाती है, तो यह शरीर मिट्टी का ढेर बनकर रह जाता है?" इस तड़प और तलाश ने कई रंग दिखाए।

इस घटना के बाद आपने धर्मग्रंथों का, हरेक धर्म की जितनी भी पुस्तकें हाथ लगीं, उनका गहरा अध्ययन किया। वेद–शास्त्रों और उपनिषदों के अनुवाद पढ़े। पंडित गुरुदत्त की व्याख्याएँ पढ़ीं, सूफ़ी महात्माओं की वाणियों का भाव और आशय उनकी मूल भाषा में समझने के लिए मुंशी–फ़ाज़िल (फ़ारसी भाषा की सर्वोच्च परीक्षा) की तैयारी भी की। ध्येय यह था कि फ़ारसी भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके मौलाना रूम, शम्स तबरेज़, ख़्वाजा हाफ़िज़ और अन्य प्रभु–प्राप्त महापुरुषों के वचनों को भली–भाँति समझ सकें। बाइबिल और क्रिश्चियन महापुरुषों के कथन भी पढ़े। जहाँ भी किसी महात्मा के बारे में पता चला, वहाँ गए—क्या–क्या नहीं किया! दिल की लगन हो, तो इंसान क्या नहीं करता, यहाँ तो आत्मा की लगन थी!

महात्माओं के जीवन में और उनकी वाणियों में विरह–विह्वलता की जिन अवस्थाओं का वर्णन आता है, उन सारी अवस्थाओं से आप भी गुज़रे, जिसका संकेत गुरुवाणी की इस तुक में मिलता है :

हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय।।

— कबीर साखी संग्रह (बिरह का अंग 19, पृ.37)

विरह के प्रसंग में आपने एक बार फ़रमाया, "कौन इतना रोया होगा, जितना मैं रोया हूँ। बहुधा ऐसा हुआ कि दफ़्तर में बैठे–बैठे बरबस आँख भर आईं और सारे कागज़ आँसुओं से भीग गए।" विरह–व्याकुलता की विविध स्थितियों की आपने अपने सत्संग–प्रवचनों में खोल–खोलकर व्याख्या की और बड़े वैज्ञानिक ढंग से इस विषय पर प्रकाश डाला है। आप फ़रमाते थे कि विरह एक ऐसी ज्वाला है, जिसमें लोक–परलोक सब दग्ध हो जाते हैं, केवल उस प्रियतम की याद बाक़ी रह जाती है।

बिरहा बिरहा आखीऐ बिरहा तू सुलतानु।।
फरीदा जितु तनि बिरहु न ऊपजै सो तनु जाणु मसानु।।

– आदि ग्रंथ (सलोक सेख फरीद, पृ॰1379)

अर्थात जिस हृदय में विरह नहीं जागी वह मरघट, श्मशान या क़ब्रिस्तान के समान है। जिस हृदय में विरह–ज्वाला भड़क उठी, समझो प्रभु–प्रियतम

से मिलाप के दिन आ गए। जैसे कलियाँ पेड़ में फल लगने की सूचक होती हैं, इसी प्रकार यदि विरह–विह्वलता हृदय में जाग उठे, तो वह प्रभु के मिलाप की निशानी है।

साधु-महात्माओं से भेंट

दुनिया के सारे धर्मग्रंथों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन करने के पश्चात आप गुरु की आवश्यकता के क़ायल तो हो चुके थे, परंतु डरते थे कि किसी अधूरे गुरु से वास्ता न पड़ जाए, जिसे प्रभु की प्राप्ति न हुई हो, जो स्वयं मंज़िल तक न पहुँचा हो। गुरु की तलाश में आप कई साधु–संतों, फ़क़ीरों–महात्माओं से मिले। एक बार किसी परिचित व्यक्ति ने बताया कि एक बड़े महात्मा आए हुए हैं, जिनकी धुरधाम तक रसाई (पहुँच) है। आप यह सुनकर उनके पास पहुँचे। उन्होंने कहा, "इस रास्ते में सीस देना होगा, तब अंतर के कपाट खुलेंगे।" आपने मन में सोचा कि जो आप ही सीस माँगता है, वह क्या देगा? आपने उन्हें नमस्कार किया और उठकर चले आए। आप फ़रमाया करते थे, "जिन्होंने लेना था, वो आप ही सीस ले गए।"

एक और साधु से बात हुई। जब आपने अंतर्मुख अनुभव की चर्चा की, तो उस तथाकथित साधु ने देखा कि मैं तो पकड़ा गया, कहने लगा, "तुम अधिकारी नहीं हो।" आपने कहा, "अच्छा महाराज! जब अधिकार होगा, तब आऊँगा।" एक और महात्मा के पास गए। वह साधन–अभ्यास से होने वाली ख़ुश्की को दूर करने के लिए दिन में कई बार धनिया और बादाम रगड़कर पीते थे और सिर पर मक्खन रखते थे। आपने उनसे कहा, "महाराज, मुझे तो गुरु अर्जन साहिब जैसा साधन चाहिए, गुरुजी पिपली साहिब के गुरुद्वारे में सूखी रोटी खाकर, जिसका अभ्यास किया करते थे।"

करामाती मुसलमान फ़क़ीर

1912 ई. में एक करामाती मुसलमान फ़क़ीर से आपकी मुलाक़ात हुई। उस फ़क़ीर का नाम था, अब्दुल बहाब। वह बैठे–बैठे धरती से तीन–चार फुट ऊपर उठ जाता और घंटों हवा में अधर बैठा रहता था। वह फ़कीर लोगों से दूर अपनी झोंपड़ी में अकेला पड़ा रहता था। किसी को पास

नहीं फटकने देता था, लेकिन इनसे वह बड़ा प्यार रखता था। ये जब चाहें उसकी झोंपड़ी में जा सकते थे, रात को भी कोई मनाही न थी। क्यों न हो, आँख, आँख को पहचानती है। आप कई फ़क़ीरों से मिले, जिनमें कुछ कमाई वाले भी थे, परंतु कहीं भी तसल्ली न हुई, जब तक हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज नहीं मिले।

पिता का आशीर्वाद

आपके पिता सरदार हुकमसिंह जी बुढ़ापे में बीमार पड़े, तो आपने ऐसी लगन से उनकी सेवा की जिसकी बहुत कम मिसाल मिलेगी। उन्हें ऐसा रोग लगा कि हर वक़्त दस्त लगे रहते, जिससे कपड़े ख़राब हो जाते। आप कमर में तौलिया लपेटकर सारा दिन पिता के कपड़े धोते रहते। इस बीमारी में उनकी स्मरण–शक्ति भी जाती रही और दिमाग़ की हालत छोटे बच्चे के समान हो गई। जैसे बच्चे को सिखाते हैं, एक–एक बात उन्हें समझानी पड़ती, एक–एक चीज़ का नाम बताना पड़ता– यह चम्मच है, यह गिलास है, यह लोटा है। आपने अपने पिता को सुमिरन का तरीक़ा बताया, जिससे उनके दिमाग़ की हालत ठीक हो गई और धीरे–धीरे स्मरण–शक्ति भी लौट आई। आख़िर उनका स्वास्थ्य ठीक हुआ, तो बेटे की बेजोड़ सेवा से प्रसन्न होकर कहने लगे, "कृपाल! मैं तुझसे बहुत ख़ुश हूँ। माँग क्या माँगता है? माँ–बाप के आशीर्वाद में बरक़त है, तो मुँह–माँगी मुराद तुझे मिलेगी।" आपने कहा, "पिताजी आप तो जानते ही हैं कि दुनिया की कोई चीज़– धन–दौलत, संतान, यश–कीर्ति, मुझे दरकार नहीं। मैं तो प्रभु को पाना चाहता हूँ। इसके अतिरिक्त मुझे अन्य किसी चीज़ की अभिलाषा नहीं।" यह बात सुनकर इनके पिताजी, जो छड़ी हाथ में लिए टहल रहे थे, चलते–चलते सहसा खड़े हो गए। उनके माथे पर गहरी सोच की त्यौरियाँ पड़ गईं। थोड़ी देर चुपचाप सोचते रहे, फिर बोले, "परमात्मा को मैंने देखा नहीं। यदि परमात्मा है, तो किसी को मिले न मिले, तुझे ज़रूर मिलेगा।" महाराज जी गुरु के मिलने को पिता के वरदान का फल समझते थे। पिता के आशीर्वाद के पश्चात उसी रात आपको अंतर में गुरु–स्वरूप का दर्शन होने लगा।

अंतर में गुरु-स्वरूप का दर्शन

पिता के आशीर्वाद से पहले आपने प्रार्थना की थी, "हे प्रभु! मैं जानता हूँ, तुझे पाने के लिए पूर्ण गुरु से दीक्षा लेना आवश्यक है, परंतु मैं डरता हूँ कि किसी अधूरे से मेरा वास्ता न पड़ जाए, जो तुझ तक न पहुँचा हो और मेरा जन्म अकारथ चला जाए।" शायद पिता के आशीर्वाद का फल था कि प्रार्थना स्वीकार हुई और इन्हें अंतर में पूरे गुरु का दर्शन होने लगा। इस संबंध में आप फ़रमाते हैं, "वह जो पहाड़ की चोटी पर खड़ा देखता है कि कहाँ आग लगी है, कहाँ धुआँ उठ रहा है, उसने मेरे अंतर की हालत देखी कि यह मुझसे मिलना चाहता है, इसके दिल में सच्ची तड़प है मिलने की, तो मेरे हाल पर दया करके वो मेरे अंतर में आने लगे और फिर बाहर भी ऐसी कृपा की, जिसका कोई क्या मोल दे सकता है!"

ये 1917 ई. की बात है– इसके पूरे सात साल बाद अर्थात 1924 ई. में आपको सत्गुरु दयाल श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने अंतर में गुरु दर्शन पाया, तो यह समझे कि यह दिव्य स्वरूप गुरु नानक साहिब का है। चुनाँचे आपने अंग्रेज़ी और पंजाबी में कई कविताएँ लिखीं, जिनमें कहा कि मैंने गुरु नानक साहिब के दर्शन किए हैं और उस दिव्य स्वरूप का वर्णन किया, जितना शब्दों में संभव हो सकता था। यह दिव्य स्वरूप सात वर्ष तक आपके अंग–संग पथ–प्रदर्शक और सहायक बनकर रहा। वह अंतर दिव्य–मंडलों की सैर आपको कराता था और उसकी कृपा से आंतरिक अनुभव आपको प्राप्त होते रहे।

डेरा ब्यास में हुज़ूर महाराज से भेंट

1924 ई. में, इस घटना के पूरे सात वर्ष पश्चात, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज से आपकी भेंट हुई। इस मुलाक़ात की कहानी आप अक़्सर सुनाया करते थे। फ़रमाते थे, "मुझे शुरू से नदियों का बड़ा शौक़ रहा है। नदी के किनारे सैर करना, चुपचाप बहती नदी के तट पर किसी एकांत स्थान पर ध्यान में मग्न बैठे रहना, मुझे हमेशा पसंद रहा है। जब मैंने सुना कि लाहौर के पास ही ब्यास नदी है, तो उसे देखने के लिए चल

पड़ा। ब्यास स्टेशन पर उतरकर एक व्यक्ति से पूछा, 'ब्यास नदी कहाँ है?' वह कहने लगा, 'आप संतों के दर्शन करने आए हैं?' मैंने कहा, 'यहाँ कोई महात्मा भी रहते हैं?' जवाब मिला, 'जी हाँ, यहाँ नदी किनारे एक अनुभवी महापुरुष का स्थान है।' मैंने कहा, 'फिर तो बड़ी अच्छी बात है। एक पंथ, दो काज– नदी की सैर भी हो जाएगी और संतों के दर्शन भी।' "

जब आप वहाँ पहुँचे, तो सत्गुरु दयाल अंदर कमरे में भोजन कर रहे थे। जब वे बाहर आए, तो आपने देखा कि यह तो वही महापुरुष हैं, जो सात साल तक अंतर में दर्शन देते और दिव्य–मंडलों में मार्गदर्शन करते चले आ रहे थे। आपने पूछा, "हुज़ूर, अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने फ़रमाया, "यही उचित अवसर था, मुलाक़ात का।"

अपने बड़े भाई सरदार जोधसिंह जी से आपने यह तय कर रखा था, मुझे कोई अनुभवी महात्मा मिला, तो मैं तुम्हें बता दूँगा, तुम्हें मिले, तो मुझे ख़बर देना। अतः सरदार जोधसिंह जी को आपने यह तार भेजा :

'I have seen a personality walking in all humility of a Guru Nanak, but wait untill you hear from me next,' अर्थात मैंने एक महापुरुष को देखा है, जो श्री गुरु नानक साहिब के समान नम्रता के स्वरूप हैं। लेकिन इंतज़ार करो, जब तक मैं दोबारा न लिखूँ।

थोड़े दिनों बाद आपने बड़े भाई को पत्र लिखा, "गुरु मिल गया है। तुम भी आ जाओ।"

गुरु और गुरुमुख की कहानी

यहाँ से पिता और पुत्र की, गुरु और गुरुमुख की, शिष्य जो गुरु का रूप हो गया, उसकी कहानी शुरू होती है, जो विभिन्न स्थितियों से गुज़रकर उस मक़ाम को पहुँचती है, जहाँ पिता और पुत्र में, गुरु और शिष्य में कोई अंतर नहीं रह जाता और सेंट पॉल के शब्दों में वो (शिष्य) पुकार उठता है :

'It is I, not now I, it is Christ that lives in me.'

यह मैं हूँ, नहीं, अब मैं नहीं रहा, यह मसीह है जो मुझमें निवास करता है।

— पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

यह इश्क़ का क़ानून है, प्रेम गली की परंपरा है :

प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (प्रेम का अंग 10, पृ.44)

यहाँ दो से एक होकर चलना पड़ता है। शिष्य अपना अस्तित्व गुरु में लीन कर देता है। सूफ़ियों की परिभाषा में 'फ़नाफ़िल्शेख़' हो जाता है, गुरु में समा जाता है। जो गुरु में समा गया, वह फिर 'फ़नाफ़िल्लाह' हो जाता है अर्थात प्रभु में समा जाता है। महाराज कृपाल सिंह जी के शब्दों में, "गुरु 'God man' है, अथवा God (परमात्मा) और man (इंसान)। जो गुरुमुख बन गया, 'फ़नाफ़िल्शेख़' हो गया, श्Guru man' बन गया, God अर्थात प्रभु उसमें आ गया कि नहीं?"

आज तक के महापुरुषों ने अपनी शिक्षा और उपदेश में, प्रवचन और वाणी द्वारा, और सबसे बढ़कर अपने जीवन और आचरण से इस प्रेम–कहानी की विभिन्न स्थितियों, मंज़िलों और मुक़ामों का स्पष्टिकरण किया है। ग्रंथों–पोथियों में यही कहानी, जहाँ तक वह शब्दों द्वारा बयान की जा सकी, दोहराई गई है। पुस्तकों में वर्णन मात्र है, ख़ाली ज़िक्र है, वास्तविक झलक नहीं। ज़िंदगी ख़ुद ही ज़िंदगी की निशानदेही करती है, अपना जीता–जागता नमूना पेश करती है। पुस्तकों में शक्ति का वर्णन है, परंतु शक्ति क्या है, इसका अनुमान किसी पहलवान को देखकर ही हो सकता है। प्रेम की झलक प्रेमी की आँखों में मिलती है। अतः माँग और पूर्ति के प्राकृतिक नियम और विधान के अंतर्गत यह सिलसिला हमेशा से चला आता है और हमेशा चलता रहेगा कि यह सत् की शक्ति किसी मानव देह में प्रकट होकर, परमार्थाभिलाषियों को, सत् के खोजियों को अपने साथ जोड़ती चली आई है। उसे गुरु–सत्ता कहो, क्राइस्ट–पॉवर कहो, वो कभी मरती नहीं। देह बदलती रहती है, शक्ति वही है। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज फ़रमाया करते थे, "एक बल्ब फ़्यूज हो गया, दूसरा लग गया, दूसरा फ़्यूज हो गया, तीसरा लग गया— प्रकाश तो वही है, हम तो प्रकाश के पुजारी हैं।"

जीवन-चरित्र लिखना क्या है?

महापुरुषों का जीवन–चरित्र क्या है? वह सत् की धारा का इतिहास है, जो मानव देह में प्रकट होकर जीवों को अपने साथ जोड़ती चली आई है। यह जीवन–चरित्र जब भी लिखा गया है, ज़िंदगी की क़लम से लिखा गया है। महापुरुषों ने हमेशा अपने जीवन में उसकी झलक, उसका स्वरूप, उसका नमूना पेश किया है। महाराज कृपाल सिंह जी इस सिलसिले में अक्सर पंडित गुरुदत्त जी का दृष्टांत पेश करते थे, जिन्हें स्वामी दयानंद जी का जीवन–चरित्र लिखने का काम सौंपा गया था। एक साल गुज़र गया, दो साल गुज़र गए। पूछने पर हर बार वो यही जवाब देते कि मैं बड़ी मेहनत से लिख रहा हूँ। लोगों ने कहा, अब तक जो कुछ लिखा है, वही दिखा दो। ऐसा कौन–सा जीवन–चरित्र है, जो ख़त्म होने ही में नहीं आता? कहने लगे, "स्वामी दयानंद का जीवन–चरित्र मैं इस तरह लिख रहा हूँ कि ज़िंदगी का आदर्श, जो उन्होंने अपने जीवन में प्रस्तुत किया है, मैं अपनी ज़िंदगी को उस साँचे में ढालकर एक नमूना पेश करूँ, जिससे लोगों को अंदाज़ा हो सके कि स्वामी दयानंद क्या थे।" श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की जन्म–शताब्दी पर दुनिया भर की संगतों (सत्संगीजनों) के नाम अपने संदेश में आपने फ़रमाया :

"श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का सही मा'नो में जीवन–चरित्र लिखना यही है कि जो आदर्श उन्होंने अपने जीवन में हमारे सामने रखा, हम उस आदर्श को अपने जीवन में धारण करें। प्रार्थना करो कि मैं इस धरती पर निवास की अवधि में उस महापुरुष का जीवन–चरित्र लिखने में सफल हो जाऊँ और आप सब भाइयों से भी मेरा यही कहना है कि आप उस आदर्श को अपने जीवन और आचरण में धारण करें। सत्गुरु अंतर्यामी घट–घट की जाननहार है। वो सब कुछ देखता है और जो लोग उसकी रज़ा (आज्ञा) पर चलते हैं, उन पर दयामेहर की वर्षा करता है।"

जीवन–चरित्र लिखना क्या है? यह आदर्श कहाँ तक पूरा हुआ है, उसका प्रमाण सत्गुरु दयाल की दयामेहर की वर्षा है, जो इनके समय में पहले से ज़्यादा ज़ोर–शोर से ज़ारी रही। उस जगत–कल्याणकारी धारा

से सारी दुनिया लाभ उठाती रही। नम्रता संतों का शृंगार है, जो इस संदेश के एक–एक शब्द से प्रकट है। जीवन–चरित्र लिखने का यह आदर्श, जिसे आपने अपने जीवन में पूरा कर दिखाया, हर नामलेवा (दीक्षित) के लिए आपने पेश किया है, क्योंकि उनके कथनानुसार, "कोई पिता यह नहीं चाहता कि उसका बच्चा उससे कम हो। बादशाह अपने बच्चे को बादशाह ही बनाना चाहता है, वज़ीर नहीं।"

जैसा कि पहले ज़िक्र आया, यह कहानी पिता–पुत्र की कहानी है। इसलिए उचित है कि श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के जीवन और उनके दिव्य व्यक्तित्व का वर्णन एक अलग प्रकरण में किया जाए, जिसके बिना यह कहानी आगे चलकर अपनी चरम सीमा अर्थात संगम पर नहीं पहुँचती, जहाँ यह कहानी,

द्वै ते एक रूप ह्वै गयो।।

– दसम ग्रंथ (बचितर नाटक, पृ॰55)

और,

पिता पूत एकै रंगि लीने।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1141)

का रूप धारण कर लेती है।

ꕥꕥꕥ

3.
सावन की घटा

सावणु आइआ हे सखी कंतै चिति करेहु।।
नानक झूरि मरहि दोहागणी जिन् अवरी लागा नेहु।।
सावणु आइआ हे सखी जलहरु बरसनहारु।।
नानक सुखि सवनु सोहागणी जिन् सह नालि पिआरु।।

– आदि ग्रंथ (मलार वार म॰1, पृ॰1280)

अर्थात सावन की ऋतु आ गई है, वक़्त है कि उसको, जो सारे जहान का पति है, चित्त अंदर रख ले, उससे प्यार पैदा कर ले। दयामेहर की मूसलाधार वर्षा हो रही है, उससे निहाल हो जाओ। इस दुख भरी दुनिया में सुखी वही हैं, जो प्रभु–प्रियतम से जुड़ गए।

सावन की घटा जब टूटकर बरसती है, तो ऊँचाई–निचाई नहीं देखती, उसका वरदान सबके लिए है। जब बारिश आती है, तो जंगलों, बियाबानों, पहाड़ों, मैदानों, खेतों, खलिहानों, सबको तरोताज़ा और हरा–भरा कर देती है। श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज, जिनके नाम का पहला शब्द 'सावन' है, सावन मास में सावन की घटा बनकर आए और दयामेहर की वो मूसलाधार वर्षा की कि जल–थल एक कर दिए। उनका दिव्य वरदान सबके लिए था। हिंदू–मुसलमान–सिक्ख–ईसाई–पापी–पुण्यवान, जो भी आया, अपनी दया–दृष्टि का उभार देकर उसे प्रभु से जोड़ दिया। वो सारे जगत के लिए आए थे, 'मैं–मैं, तू–तू' के झगड़ों को मिटाकर सबको एक साथ बिठा गए, लोगों को ता'स्सुब और तंगदिली के गड्ढ़ों से निकालकर, *"एकु पिता एकस के हम बारिक"* – आदि ग्रंथ (सोरठि म॰5, पृ॰611) का पाठ सबको हृदयंम करा गए। वो नूर के पुतले थे, दुनिया को प्रकाशमान कर गए, प्रभु में अभेद थे, सदेह ब्रह्म थे, लोगों को उसकी झलक दिखा गए।

वक़्त की ज़रूरत

इंसान के अंदर जिस आदर्श का आभास हो, उसका मूर्त रूप प्रकृति पैदा करती रहती है। जो भी ख़्याल, परमात्मा का लोगों के अंतर में क़ायम होता रहता है, क़ुदरत उसका नमूना पेश करती रहती है। ऐसी दिव्य विभूतियाँ– गुरु नानक और अन्य पादशाहियों, दादू साहिब, पलटू साहिब, मौलाना रूम, शम्स तबरेज़, तुलसी साहिब, हुज़ूर स्वामी शिवदयालसिंह जी, बाबा जयमल सिंह जी, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज आदि के रूप में प्रकट होती रहती हैं, जो अपना जीवित उदाहरण प्रस्तुत करके परमार्थाभिलाषियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। अतः वो इंसान जो प्रभु को मिलना चाहते हैं, जब अपने आदर्श का साक्षात स्वरूप देखते हैं, तो हज़ार–जान से उस पर कुर्बान हो जाते हैं।

गुरु नानक और कबीर साहिब जिस ज़माने में आए, उस वक़्त धर्मांधता ज़ोरों पर थी, शरीयतों अर्थात समाज धर्म की परंपराओं के ठेकेदार आपस में जूझ रहे थे। बाह्य कर्म–धर्म अध्यात्म पर सवार था, आध्यात्मिकता कहीं दिखाई न देती थी। धर्म के नाम पर तरह–तरह के ज़ुल्म ढाए जाते थे। साधु–महात्मा, जो आत्म–तत्त्व का ज्ञान एवं उपदेश देते थे, उन्हें यातनाएँ दी जाती थीं। दुखी लोगों की पुकार सृष्टिकर्ता के चरणों में पहुँची। वह दयासागर उभार में आया। धारा चली, जो समय के महात्मा के रूप में प्रकट हुई। उन्होंने आते ही दोनों क़ौमों, हिंदू–मुसलमानों को आपस में मिलाने की कोशिश की। गुरु नानक साहिब ने कहा :

ना हिन्दू ना मुसलमान।। हम दोनों को एको जान।।

उन्होंने लोगों को शांति दी, उन्हें बताया कि बाहर भेस धारण करने से परमात्मा नहीं मिलता। अध्यात्म या रूहानियत इन चीज़ों से अतीत है। कबीर साहिब को कट्टरपंथी मुसलमान पकड़कर ले गए। पूछा, तुम कौन हो? उन्होंने कहा :

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (मध्य का अंग 4, पृ.75)

अर्थात यदि मैं कहूँ कि मैं हिंदू हूँ, तो तुम मुझे मारोगे, क्योंकि तुम्हारी नज़र शक्लों–बनावटों पर है और जिस चीज़ को अर्थात शरीयत को, बाहरी शक्लों–बनावटों और रस्म–रिवाज़ को तुम मुसलमानी समझते हो, वैसा मुसलमान भी मैं नहीं हूँ। पाँच तत्त्वों का शरीर है, इसमें ग़ैब की, अदृश्य की जो ताक़त खेल रही है, वो मैं हूँ, देह रूपी मकान का निवासी, जिसको कबीर कहते हैं।

इतिहास अपने आपको दोहराता रहता है। आगे दो समाजें थीं– अब एक–एक समाज के कई–कई फ़िरके (संप्रदाय) हो गए हैं। मुसलमानों में 72 फ़िरके हैं। हिंदुओं, सिक्खों और ईसाइयों में भी असंख्य फ़िरके हैं। इस वक़्त सात सौ से ऊपर धर्म और मत–मतांतर हैं, संसार में। सभी कहते हैं, हमारा मत सही है, हमारी समाज–धर्म परंपरा सर्वश्रेष्ठ है। इस कशमकश में परमार्थाभिलाषी दुखी हो गए। उनकी पुकार सृष्टिकर्ता के चरणों में पहुँची। उस करुणा–सागर में उभार आया। धारा चली, जो कि श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज, परम संत, पूर्ण धनी के स्वरूप में प्रकट हुई।

यह उस सावन का ज़िक्र आ रहा है कि सावन का मौसम आ गया है, मालिक से जुड़ जाओ। उसकी दयामेहर की मूसलाधार बारिश हो रही है। सावन की बरखा के बाद भड़ास उठती है। परंतु उस महापुरुष की दयामेहर की बरखा होती थी, तो हमेशा के लिए एक रस–भीनी शांति मिल जाती थी, प्रभु–प्रेम–रस भीने उनके अमृत–वचन चित्त को शांत करते जाते थे। उनका उपदेश सारे संसार के लिए था और है।

परथाइ साखी महा पुरख बोलदे साझी सगल जहानै।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि वार म॰4, पृ॰647)

वो फ़रमाते थे, "ऐ हिंदुओं, ऐ सिक्खों, ऐ मुसलमानों, ऐ ईसाइयों, ऐ मनुष्य जाति, मैं तुम्हारा हूँ, तुम मेरे हो। मैं तुम सबको गले लगाने आया हूँ। किसी शरीयत (समाज–धर्म) से, शक्लों–बनावटों से या रस्म–रिवाज़ से मेरी कोई ग़रज़ नहीं। मेरी ग़रज़ केवल रूहानियत (आत्म–तत्त्व से है। जिस मज़हब और सोसायटी में तुम हो, उसी में रहो। अपने–अपने तरीक़े से ब्याह–शादियाँ और दूसरी रस्में पूरी करो। केवल अपने आपको जानो, तुम कौन हो? और नाम से, परिपूर्ण परमात्मा से जुड़ो। मेरा–तुम्हारा संबंध केवल परमार्थ का है।"

वर्तमान समय में एक ऐसे पूर्ण समर्थ महापुरुष की आवश्यकता थी, जो नाम–रूप में बंधी हुई दुनिया को शक्लों और बनावटों से ऊपर लाकर मालिक से जोड़ सके। पिछले ज़मानों से संतों–महात्माओं को दो समाजों का सामना करना पड़ा। अब तो सैकड़ों फ़िरके और अलग–अलग सोसायटियाँ हैं। वर्तमान समय में सबकी भावनाओं का पूरा ख़्याल रखकर काम करना था। यह उस महान शक्ति का काम था, जो श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज में थी और जिससे उन्होंने काम लिया। उनका पहला काम सबको मिलाकर बिठाना था :

होइ इकत्र मिलहु मेरे भाई दुबिधा दूरि करहु लिव लाइ।।
हरि नामै के होवहु जोड़ी गुरमुखि बैसहु सफा विछाइ।।

– आदि ग्रंथ (बसंतु म॰5, पृ॰1185)

उनका उपदेश कुल दुनिया के लिए एक था। वो फ़रमाते थे, "सब मिलकर बैठो। आपस में जो दुविधाएँ हैं, उनको मिटाओ। हम सब मानवता की दृष्टि से एक हैं, *"मानस की जात सब एके पहचानिबो।"* सब आत्मा–देहधारी हैं। हर इंसान की आत्मा प्रभु की अंश है, *"कहु कबीर इहु राम की अंसु।"* – आदि ग्रंथ (गोंड बाणी कबीर, पृ.871) सबका जीवनाधार एक है। उसके नाम पर मानवता के आधार पर हम सब एक हैं। किसी गुरुमुख की संगति में बैठो, ताकि उस एकता को जो पहले ही मौजूद है, मगर जिसको हम भूल चुके हैं, फिर से हम पा सकें।"

बिसरि गई सब ताति पराई।। जब ते साधसंगति मोहि पाई।।
ना को बैरी नही बिगाना सगल संगि हम कउ बनि आई।।

– आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1299)

दयामेहर की वर्षा

श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज जिस दिन प्रकट हुए अर्थात देह के साथ उनका संबंध हुआ, वह शुभ दिन 27 जुलाई[1], 1858 ई., तदनुसार 13 सावन, संवत 1925 विक्रमी, मंगलवार दिन चढ़े 38 घड़ी 22 पल, कृष्णपक्ष की एकम की तिथि थी। महिमासिंहवाला ग्राम, ज़िला लुधियाना में, एक प्रतिष्ठित जाट ग्रेवाल परिवार में आपका जन्म हुआ।

हुज़ूर के पिता का नाम सरदार काबलसिंह ग्रेवाल था। वो फ़ौज में सूबेदार–मेजर थे। माता का नाम श्रीमती जीवनी था। आप माता–पिता के इकलौते बेटे थे और उनकी सारी आशाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ आप पर केंद्रित थीं। ऐसी विभूतियाँ साधारण माता–पिता के घर नहीं आया करतीं। आपके पिता, सरदार काबलसिंह जी सत्संग प्रेमी, साधु–संतों के सेवक, देवता स्वरूप पुरुष थे और माता, श्रीमती जीवनी जी पुराने ज़माने के सदाचार, सरलता और संतोष का जीता–जागता नमूना थीं।

हुज़ूर के जन्म से पहले सूखा पड़ने के कारण अकाल की स्थिति पैदा हो चली थी, किंतु आपके जन्मदिवस पर वो झड़ी लगी कि शाम तक वर्षा का तार न टूटा, बल्कि पूरा महीना पानी बरसता रहा। आपके आते ही सबके दुख–दरिद्र दूर हो गए और हर तरफ़ ठंडक और हरियाली छा गई।[2] यह प्रकृति की ओर से मानो एक एलान था, घोषणा थी कि यह महान विभूति जो ऐसे समय में आई है, जब रूहानियत (आत्म–ज्ञान) का अकाल पड़ा हुआ है, दोनों हाथों से दयामेहर के ख़ज़ाने लुटाएगी और रूहानियत की वह भरपूर वर्षा होगी कि सब जल–थल एक हो जायेंगे। चुनाँचे लोगों के मुख से बरबस यह ध्वनि निकली कि यह बालक बड़ा ही भाग्यवान पैदा

---

1. हुज़ूर महाराज से उनके जन्मदिन के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने कहा, "मेरा जन्मदिवस सही मा'नो में वह है, जब मैं बाबा जी महाराज के चरणों में आया।" महापुरुषों की वाणियों में यह ख़्याल जगह–जगह मिलता है। गुरु नानक साहिब ने सिद्धों के साथ बातचीत के दौरान कहा :

सतिगुर कै जनमे गवनु मिटाइआ।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰940)

हुज़ूर के जन्मदिन के बारे में उनकी ज़िंदगी से ही झगड़ा चला आता था। अतः महाराज कृपाल सिंह जी ने हुज़ूर से प्रार्थना की कि महापुरुषों के जन्मदिवस के बारे में प्रायः मतभेद पाया जाता है। हुज़ूर स्वयं निर्णय कर दें, ताकि इस बारे में कोई भ्रम न रह जाए। तत्पश्चात पत्री निकलवाई गई, जिसके अनुसार 27 जुलाई, तदनुसार 13 सावन, जन्मतिथि निकली। हुज़ूर की सेवा में वह पत्री पेश की गई तो उन्होंने फ़रमाया कि यह तिथि ठीक है, बाक़ी सब ग़लत हैं। अमृतसर के लाला अरूड़चंद कहने लगे, "हुज़ूर हम तो 5 सावन को ही जन्मदिन मनायेंगे, क्योंकि हुज़ूर ने अपने मुखारविंद से, पहले यही फ़रमाया था।" हुज़ूर ने कहा, "पहले भी मैंने कहा था और अब भी मैं ही कह रहा हूँ कि मेरा सही जन्मदिन 27 जुलाई या 13 सावन का है।" आश्चर्य है कि हुज़ूर महाराज के इस कथन के बाद भी कुछ भाई अभी तक 5 सावन को हुज़ूर महाराज का जन्मदिन मनाते हैं।

हुआ है। नामकरण के लिए गुरुग्रंथ साहिब से वाक् लिया गया, तो चौथी पातशाही श्री गुरु रामदास जी का यह शब्द निकला :

सावणि सरसी कामणी चरन कमल सिउ पिआरु।।

– आदि ग्रंथ (माँझ म॰5, पृ॰134)

इस वाक् पर सावन सिंह नाम रखा गया, जो हुज़ूर के जगत–कल्याणकारी व्यक्तित्व और जो महान काम उन्होंने संसार में किया उसके उपयुक्त था।

हुज़ूर की जन्मकुंडली

आपकी जन्मकुंडली बनाई गई, तो पंडित हैरान रह गए। ऐसी जन्मकुंडली उन्होंने अपनी सारी ज़िंदगी में कहीं न देखी थी। जन्मकुंडली पर विचार करने से प्रकट हुआ कि ये बालक दीन–दुनिया, लोक–परलोक का स्वामी होगा, लाखों जीवों का उद्धार करेगा। यह योगियों का परम योगी और अमीरों का अमीर होगा, पीरी–मीरी अर्थात बादशाही और फ़क़ीरी, दोनों प्रकार की शान इसमें होगी। इसका यश और कीर्ति सारे संसार में फैलेगा। प्रियदर्शन मनमोहन होगा, जो देखेगा मोहित हो जाएगा। दिलों पर राज करेगा। जब तक इच्छा होगी जीएगा, जब चाहेगा इस नश्वर संसार को छोड़ निजधाम प्रस्थान कर जाएगा। हुज़ूर की यह जन्मकुंडली का सार था।

बचपन का वृत्तांत

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात'। बचपन ही में आपमें असाधारण सूझ–बूझ और प्रतिभा के चिह्न दिखाई देने लगे थे। बाल्यावस्था में भी आप एकांतप्रिय थे, बच्चों के साथ बाहर खेलने नहीं जाते थे। प्रायः

2. हुज़ूर की दयामेहर की एक आम निशानी देखी है कि जहाँ भी हुज़ूर का ज़िक्र करो, बारिश आ जाती है, थोड़ी बूंदें हमेशा पड़ती हैं। चुनाँचे, सावन–आश्रम दिल्ली की जब नींव रखी गई, तो आकाश बिल्कुल साफ़ था और तेज धूप पड़ रही थी। सब बहन–भाई बैठे हुए थे। अभी वहाँ कुछ नहीं बना था। सहसा बारिश की मोटी–मोटी बूंदें आसमान से गिरने लगीं। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, 'भई, आ गए हुज़ूर।' हुज़ूर का शुभ नाम भी 'सावन' था, इसलिए सावन की कुछ न कुछ बूंदें पड़ ही जाती हैं। यह निशानी है, हुज़ूर महाराज की बरक़त की।
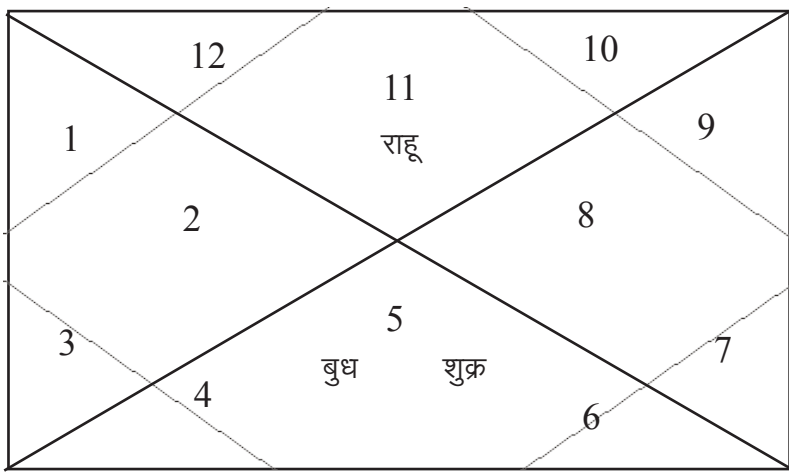
हुज़ूर महाराज सावन सिंह जी की जन्मकुंडली

घर पर अकेले ही पढ़ा करते थे। बड़े तीक्ष्णबुद्धि और अध्ययनशील विद्यार्थी थे। कक्षा में सदैव प्रथम रहते। सफ़ाई और सलीक़ा पसंद था। किताबें, कलमें और हर चीज़ क़रीने से सजाकर रखते थे। आपके कपड़ों या किताबों पर कभी कोई दाग़–धब्बा नहीं देखा गया।

हुज़ूर के पिता, सरदार क़ाबलसिंह जी शुरू से साधु–महात्माओं की संगति और उनकी सेवा करते थे। अतः छोटी उम्र ही में इन्हें भी साधु–सेवा का सुअवसर प्राप्त हो गया। 1870 ई. तक अर्थात 12 वर्ष की अवस्था तक आप पिता के साथ रहे। जैसा बाप वैसा बेटा, पिता के साधु–सेवा के स्वभाव के फलस्वरूप बच्चा भी साधु–सेवा का प्रेमी बन गया। आपको जो भी समय मिलता, साधु–संग में व्यतीत करते।

प्रारंभिक शिक्षा मौज़ा नारंगवाल के मदरसे में शुरू की, फिर गुजरवाल में पढ़े और मैट्रिक वहीं से पास किया। अध्यापकों का बड़ा आदर–सत्कार करते थे। अपने फ़ारसी के शिक्षक मुंशी बख्शीशसिंह जी का ज़िक्र किया करते थे कि कुएँ से डोल निकालकर हम मुंशी जी को स्नान कराते थे। अध्यापक भी आपकी बड़ी क़द्र करते थे। उस वक़्त कौन कह सकता था कि यह बालक जो आज बस्ता लेकर स्कूल जा रहा है, एक दिन सारे संसार

को शिक्षा देगा। 1878 ई. में मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद शीघ्र ही ज़िलेदारी के लिए चुन लिए गए और जिला रोहतक में गोहाना नहर पर कुछ समय ज़िलेदार के पद पर काम करते रहे, परंतु बीमार हो जाने पर वापस घर बुला लिए गए और दो वर्ष तक घर ही में रहे।

जीवों को संसार सागर से पार लगाने का कार्य जिस महापुरुष को सौंपा जाता है, उसके जीवन के निर्माण के उपयुक्त साधन भी अपने आप उपलब्ध हो जाते है। अतः दो साल के समय में, जो आपने घर में व्यतीत किया, भाई भूपसिंह की संगति से लाभ उठाया। वो त्यागी थे और वेदांत के पंडित और योग–विद्या के अनुभवी भी। भाई भूपसिंह की संगति रंग लाई और त्याग का ख़्याल मन में उभरा। हुज़ूर माता–पिता की इकलौती संतान थे, उनकी सेवा के विचार ने त्याग से रोका, क्योंकि त्यागी जीव जो माता–पिता की सेवा नहीं कर सकता और जो कर्तव्य पूरा करने में कमी करता है, वह पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता।

1880 ई. अर्थात 22 वर्ष की अवस्था तक संसार–यात्रा इसी प्रकार व्यतीत हुई। तत्पश्चात सरदार क़ाबलसिंह जी ने कोशिश की कि बेटा सेना में इंडियन आफ़िसर नियुक्त हो जाए। उन्होंने अपने कमांडिंग अफ़सर से कहा। उसने आश्वासन दिया कि धीरे–धीरे इंडियन आफ़िसर के पद पर लगा देंगे। कुछ काल फर्रुख़ाबाद के सैनिक स्कूल में अध्यापक रहे। वहाँ अनपढ़, शराबी–कबाबी लोगों की संगति में दिल न लगा, इसलिए रुड़की के थॉमसन इंजीनियरिंग कॉलेज में दाख़िल हो गए और कोर्स पूरा करके अच्छे नंबरों से पास हुए।

परमार्थाभिलाषियों के मार्गदर्शन के लिए हुज़ूर अपने जीवन की घटनाओं की चर्चा करते हुए बड़े सारगर्भित संकेत दिया करते थे। आप फ़रमाया करते थे कि जब हम इंजीनियरिंग की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए, तो प्रोफ़ेसरों ने हमसे हाथ मिलाया, अपने साथ कुर्सी पर बिठाया और कहने लगे, तुममें और हममें अब कोई अंतर नहीं रहा अर्थात पूरे गुरु से दीक्षा लेकर 'नाम' की कमाई करो, तो तुम भी एक दिन उस गति को प्राप्त कर सकते हो, जिससे उसको पाया है। फर्रुख़ाबाद में निवास के दौरान गंगा के तट पर कई साधु–महात्माओं से मिलने का संयोग होता था। वहाँ विशेष रूप से भाई निहालसिंह जी थोहे वाले महात्मा से संपर्क रहा। कुछ समय पश्चात

कमांडिंग अफ़सर ने इंडियन ऑफ़िसर की फ़ौज में कमीशन देना स्वीकार कर लिया। उधर उसी समय मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विस की नौकरी मिल गई। हुज़ूर ने एम.ई.एस. की नौकरी पसंद की और 1883 ई. में नौशहरा में सब ओवरसियर लगे। वहाँ हुज़ूर ने मकान तलाश किया, तो लोगों ने कहा कि एक मकान ख़ाली है, परंतु वह haunted house अर्थात भूतों का डेरा है, ख़तरे वाली जगह है। हुज़ूर ने कहा, "मैं वहीं रहूँगा," और उसी मकान में रहने लगे और पता नहीं लगा कि जिन्न–भूत कहाँ उड़ गए। जो संपूर्ण सृष्टि का स्वामी हो, उसको किसका डर और किसका ख़तरा? सब सृष्टि उसकी सेवा के लिए है।

अवर जोनि तेरी पनिहारी।। इसु धरती महि तेरी सिकदारी।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰374)

नौशहरा में हुज़ूर को होती मरदान वाले महात्मा, बाबा करमसिंह जी के सत्संग और दर्शनों का अवसर मिलता रहा। धर्मग्रंथों का अध्ययन आप शुरू से करते चले आ रहे थे। हरेक धर्म और मज़हब की किताबों का पूर्वाग्रह के बिना निष्पक्ष भाव से आपने अध्ययन किया। गुरुमुखी, हिंदी, उर्दू, फ़ारसी और अंग्रेज़ी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया और हिंदुओं, मुसलमानों, सिक्खों और ईसाइयों के धर्मग्रंथों, सूफ़ियों की पुस्तकों और संतों की वाणियों का गूढ़ अध्ययन किया। सदाचार, प्रेम और अध्यात्म–विद्या के सिद्धांतों की पूरी जानकारी प्राप्त की। आप शुरू से ही धर्मांधता, संकीर्णता, ता'स्सुब और शरीयत (समाज–धर्म) की जकड़ से आज़ाद थे। प्रत्येक धर्म और मज़हब के मूलभूत सिद्धांतों का अध्ययन–अनुसंधान आपका लक्ष्य आर ध्येय था। माता–पिता के निर्मल सात्विक जीवन तथा साधु–संग के प्रभाव से बचपन ही में तप, त्याग, दया, क्षमा, शील, संतोष, नम्रता और दानशीलता के दैवी गुण आपमें पैदा हो गए थे। यह सारी चीज़ें उस महान जीवन की तैयारी के लिए थीं, जो बाद में प्रकट हुआ।

बाबा कान्ह से भेंट

नौशहरा से हुज़ूर पेशावर गए। वहाँ बाबा कान्ह की सोहबत–संगति आपको मिली। बाबा कान्ह हर वक़्त मस्ती की अवस्था में रहते थे और किसी को पास नहीं आने देते थे, पर हुज़ूर उनके पास जाते, तो बड़े

प्यार से उन्हें मिलते और कुशल–क्षेम पूछते। हुज़ूर भी बाबा कान्ह की सेवा–सत्कार करते रहते थे। एक बार जब हुज़ूर फ़ील्ड सर्विस से वापस लौटे, तो फ़ील्ड के दिनों की इकट्ठी तन्ख़्वाह मिली, जो उनके पास थी। उसमें से दस रुपये बाबा कान्ह को भेंट किए। कहने लगे, मैं तो बीस चिट्टे (चाँदी के रुपये) लूँगा। हुज़ूर ने हँसकर कहा, "बाबा, तू लालची हो गया है।" बाबा ने कहा, "मैं लालची नहीं हूँ। तुम्हें ज़्यादा रुपए मिले हैं। मैं चाहता हूँ तुम्हारी कमाई से ज़हर निकल जाए, वरना मुझे रुपयों का क्या करना है। अभी बच्चे आयेंगे और सब रुपए ले जायेंगे।" हुज़ूर ने बीस रुपये उसके आगे रख दिए। थोड़ी देर में बच्चे आए और सारे रुपये ले गए।

एक बार हुज़ूर ने बाबा कान्ह से आत्मानुभव की माँग करते हुए कहा, "बाबा, हमें कुछ दे।" उन्होंने कहा, "तुझे मिलेगा ज़रूर, पर कोई और देगा।" पूछा, "उसे कहाँ तलाश करूँ?" जवाब मिला, "वह महापुरुष समय आने पर स्वयं तुम्हें ढूँढ लेगा।" यह लोग त्रिकालदर्शी होते हैं। बाद में जब बाबा जयमल सिंह जी से आत्म–अनुभव की संपत्ति मिली, तो हुज़ूर बाबा कान्ह से फिर मिले और कहने लगे, "बाबा तूने तो कुछ नहीं दिया, किसी और से मिला है।" बाबा कान्ह बोले, "हम सब एक होते हैं।"

बाबा जी से मिलाप

पेशावर से हुज़ूर की बदली कोहमरी हुई। वहाँ भरपूरामल की धर्मशाला के समीप एक मकान में निवास था। जितने साधु–महात्मा अमरनाथ की यात्रा को जाते, इसी धर्मशाला में आकर टिकते थे। उनसे आत्म–ज्ञान के विषय पर चर्चा रहती और हुज़ूर उनकी संगति का लाभ उठाते। छोटी अवस्था से ही विधना आपके लिए परमार्थ लाभ के साधन उपलब्ध करती रही और हरेक साधु से कुछ न कुछ लाभ आपको मिलता रहा। इस प्रकार वह दिन भी आ गया, जिस दिन आपको समस्त मनुष्य जाति के उद्धार का कार्यभार सौंपने की नींव रखी जानी थी। जहाँ आग जलती है, ऑक्सीजन मदद को आ जाती है। जहाँ भूख है वहाँ रोटी है, जहाँ प्यास है वहाँ पानी है। वह प्रभु–सत्ता, जो किसी मानव देह पर प्रकट हो चुकी थी, जिसे हम बाबा जयमल सिंह जी महाराज कहते हैं, उसे कशिश हुई। वो ब्यास से चले और कहाँ गए? मरी की पहाड़ियों में, जहाँ हुज़ूर एस.डी.ओ. लगे हुए थे। हुज़ूर

अपना काम कर रहे थे, बाबा जी पास से गुज़रे। यह क़िस्सा हुज़ूर अपने मुखारबिंद से इस प्रकार बयान किया करते थे, "मैं एक दिन मरी पहाड़ पर काम की निगरानी कर रहा था, तो मैंने एक सिक्ख बुज़ुर्ग को वहाँ से गुज़रते देखा। उनके साथ अधेड़ उम्र की एक महिला भी थी। मैं समझा कि यह सरदार साहिब शायद कमिश्नर की कचहरी में अपील के सिलसिले में आए होंगे। वो सरदार साहिब बाबा जयमल सिंह जी महाराज थे और उनके साथ बीबी रुक्को थीं। उस समय मुझे यह बात मालूम नहीं थी, लेकिन बाद में पता चला कि बाबा जी ने मेरी तरफ़ इशारा करके बीबी रुक्को से कहा था, "हम इस सिक्ख के लिए यहाँ आए हैं।" यह बात सुनकर बीबी रुक्को ने कहा, "परंतु इसने तो आपको फ़तेह भी नहीं बुलाई (नमस्कार तक नहीं किया)।" बाबा जी ने कहा, "इसको अभी क्या मालूम? आज से चौथे दिन यह हमारे पास आएगा।"

यह चुनाव कहो, नामज़दगी कहो, प्रभु की ओर से होती है। सारे पंजाब में क्या कोई आदमी न था? आदमी तो बहुत थे, परंतु वह इंसान नहीं था, जिसने आगे चलकर संसार का मार्गदर्शन करना था। उनमें क्या बड़ाई थी, इस चुनाव के लिए? उनमें वो संस्कार थे, जो पूर्ण पुरुषों में हुआ करते हैं।

बाबा जी की भविष्यवाणी के अनुसार, हुज़ूर चौथे दिन बाबू काहनसिंह के साथ बाबू सुखदयाल की बैठक पर गए, जहाँ बाबा जी ठहरे हुए थे। उससे एक दिन पहले, संध्या समय आप एक वेदांती साधु के साथ वेदांत का एक ग्रंथ देख रहे थे कि बाबू काहनसिंह ने आकर कहा कि एक पहुँचे हुए महात्मा आए हुए हैं, दर्शन करने हों, तो चलिए। बातचीत के दौरान, उन्होंने जब आपको बताया कि वो महात्मा राधास्वामी हैं, तो वह वेदांती साधू भड़क उठा, कहने लगा, "यह लोग नास्तिक हैं, सिर पर एक बाजा रखते हैं।" हुज़ूर कहने लगे, "मैं इंजीनियर हूँ। मैंने आज तक ऐसा बाजा नहीं देखा, जो सिर में रखा जा सकता हो।" साधु नहीं चाहता था कि हुज़ूर वहाँ जाएँ। उससे अगले दिन हुज़ूर, बाबा जी महाराज के दर्शनों के लिए गए।

हुज़ूर इस घटना को यों बयान करते थे, "चौथे दिन मैं बाबा जी के सत्संग में गया। बाबा जी 'जपजी साहिब' की वाणी की व्याख्या कर रहे थे। मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। इतने प्रश्न मैंने पूछे कि सत्संग में बैठे सब

लोग परेशान हो गए। हुज़ूर स्वामी जी महाराज की वाणी का संग्रह, 'सार बचन' भी वहाँ पड़ा हुआ था। मैंने 'राधास्वामी' शब्द पर आपत्ति प्रकट की, जिसके जवाब में बाबा जी ने 'सार बचन' की यह तुक पढ़ी, जिसमें हुज़ूर स्वामी जी महाराज ने स्वयं इस शब्द की व्याख्या की थी :

राधा आदि सुरति का नाम।। स्वामी आदि शब्द निज धाम।।

– सार बचन, पद्य (बचन 2, सिफ़त 4)

बाबा जी 'सुरत–शब्द मार्ग' के बारे में समझाने लगे, परंतु मैंने तो वेदांत पढ़ रखा था। जब मैं गुरुवाणी पढ़ता था, तो ख़्याल बदल जाता था। आख़िर मैंने बाबा जी की तालीम को पूरी तरह समझने के लिए आठ दिन की छुट्टी ले ली। बाबा जी ने कबीर साहिब की वाणी, 'अनुराग सागर' पढ़ने का आदेश दिया। मैंने उसी वक़्त बंबई से आठ प्रतियाँ मँगवा लीं, ताकि बाबा हरि राम, बाबू गुलाबसिंह और दूसरे मित्रों को भी यह किताब पढ़ने के लिए दूँ और उनकी राय मालूम कर सकूँ। बाबा जी से थोड़े दिन और बातचीत हुई, जिसके बाद मेरी पूरी तसल्ली हो गई और 15 अक्तूबर, 1894 ई. को मैंने बाबा जी से नाम ले लिया।

इसके बाद की कहानी गुरुमुख की भक्ति और गुरु की दयामेहर की अनुपम कहानी है। बाबा जी दो महीने कोहमरी ठहरे। हुज़ूर उनके चरणों में बैठकर सत्संग का लाभ उठाते रहे और उनके आदेशानुसार 'शब्द' अर्थात अंतर्मुख नाद–श्रवण का अभ्यास में व्यतीत करते रहे। बाबा जी के जाने के बाद हुज़ूर अधिक समय अभ्यास में व्यतीत करते। गुरु–प्रेम में यह अवस्था थी कि बाबा जी की विरह में उदासीन रहते, जब भी अवसर मिलता बाबा जी के चरणों में पहुँच जाते और उनकी संगति से लाभ उठाते।

डेरा बाबा जयमल सिंह की बुनियाद

बाबा जयमल सिंह जी महाराज ब्यास नदी के किनारे रहा करते थे। वह जगह जहाँ डेरा बाबा जयमल सिंह आबाद है, वो पहले यह स्थान देखकर पसंद कर चुके थे। यहीं पर एक मस्त फ़क़ीर, जिसे उस इलाक़े के लोग काहना कमला कहते थे, उन्हें मिला था। वह कंकड़–पत्थर चुन रहा था। बाबाजी ने उसे पूछा, "यह क्या कर रहे हो, साईं जी?" फ़क़ीर ने जवाब दिया, "तेरे लिए मकान बनाने को ईंटें इकट्ठी कर रहा हूँ।" यह उस ज़माने

की बात है, जब बाबा जी सेना में नौकर थे। 1891 ई. में वहाँ से पेंशन लेकर बाबा जी ने ब्यास नदी के तट पर डेरे डाल दिए, जहाँ बीबी रुक्को ने घास–फूँस की 8 फुट लंबी और 8 फुट चौड़ी झोंपड़ी पहले ही तैयार कर रखी थी। बाबा जी इस झोंपड़ी में निश्चिंत होकर भजन–सुमिरन करने लगे। बाबा जी के प्रेमी शिष्य लाला खज़ानामल उनके दर्शन के लिए गए, तो उन्होंने झोंपड़ी पर मिट्टी पुतवा दी और साथ में एक गुफा भी ख़ुदवा दी। बाबा जी उस गुफा में बैठकर अभ्यास करते और कई–कई दिन गुफा से बाहर न निकलते।

बाबा जी दुनिया से दूर प्रभु से लौ लगाए बैठे थे, लेकिन उनकी कमाई अर्थात साधना की सुगंधि चारों ओर फैल गई और लोग दर्शनों के लिए आने लगे। कई धनाढ्य व्यक्तियों ने अपनी ओर से पक्का मकान बनवा देने का आग्रह किया, किंतु बाबा जी ने यह बात स्वीकार नहीं की और उसी कोठरी में गुज़ारा करते रहे। भवन–निर्माण का क्रम तभी आरंभ हुआ, जब 1894 ई. में हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी बाबा जी के चरणों में आए। हुज़ूर के अनुरोध पर बाबा जी ने फूँस की झोंपड़ी की जगह पक्का कमरा बनवाने की स्वीकृति दे दी। उन दिनों डेरे में पानी की व्यवस्था नहीं थी। प्रेमी भक्त, सत्संगीजनों के लिए नदी से कनस्तरों में पानी भरकर कंधों पर या बहंगियों पर लाया करते थे। बाबा जी से आज्ञा लेकर हुज़ूर ने वहाँ एक पक्का कुंआ बनवा दिया। तत्पश्चात 'छोटा दरबार' और लंगर (भोजनशाला) की इमारतें और बाहर से आने वाले परमार्थाभिलाषियों के ठहरने के लिए कुछ कोठरियाँ बनवाई गईं और इस प्रकार भवन–निर्माण का सिलसिला बढ़ता चला गया। शुरू में बनी इमारतों में 'छोटा दरबार' और 'बड़ा दरबार' विशेष महत्त्व रखती हैं, इसलिए यहाँ इनकी स्थापना का संक्षिप्त इतिहास देना असंगत न होगा।

छोटा दरबार के मामलात

30 फुट लंबा और 15 फुट चौड़ा यह कमरा डेरे की पहली इमारत थी। इसमें श्री आदिग्रंथ साहिब का प्रकाश था और गुरुद्वारे की पूरी मर्यादा थी, जो हुज़ूर महाराज जी के समय में भी ज़ारी रही। हुज़ूर के समय में इसमें तीन दरबार साहिब थे, जिनमें हुज़ूर स्वामी जी महाराज का ग्रंथ

साहिब (जिससे वह आगरा में सत्संग किया करते थे) भी था, जो हुज़ूर महाराज आगरा से लाए थे। इस दरबार साहिब का दर्शन महीने में एक बार कराया जाता था। उस ज़माने में सत्संगी थोड़े थे और छोटे दरबार में सत्संग भी हुआ करता था। जैसे गुरुद्वारों में होता है, वहाँ चंदोआ लगाकर गुरु ग्रंथ साहिब का विधिवत प्रकाश हुआ करता था। बाद में जब 50 फ़ुट लंबा और 20 फ़ुट चौड़ा नया बड़ा सत्संग घर बना, जिसमें पहला सत्संग हुज़ूर महाराज ने किया था, तब से छोटा दरबार गुरुग्रंथ साहिब के प्रकाश और गुरुवाणी के पाठ के निमित्त ही रह गया।

डेरा गुरुद्वारा था... और है

छोटे दरबार में बाक़ायदा ग्रंथी मुक़र्रर था, अखंड पाठ के भोग रखाए जाते थे। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज स्वयं बैठकर पाँच प्यारों द्वारा अमृत छकाया करते थे। पहले ग्रंथी, भाई भगतसिंह जी के समय में अमृत छकाया जाता रहा। तत्पश्चात भाई रतनसिंह जी ग्रंथी नियुक्त हुए। उनके समय में भी अखंड पाठ और भोग रखाए जाते थे। हुज़ूर महाराज की बीमारी के दिनों में भी पाठ रखवाया गया था। जिस स्थान पर डेरा क़ायम है, यह भूमि मौजा बलसराय के लोगों ने गुरुग्रंथ साहिब के नाम दाख़िल ख़ारिज कराई है, जिसके मुहतमिम, प्रबंधक बाबा जयमल सिंह जी थे। उनके निधन के पश्चात भी यह भूमि गुरुग्रंथ साहिब के नाम थी और मुहतमिम हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज थे।

अकाली लहर

गुरुद्वारों पर कब्ज़ा करने के लिए जिन दिनों अकाली लहर चली, तो अकालियों ने डेरे के सामने कैंप लगाया और डेरे के ख़िलाफ़ प्रचार करना शुरू कर दिया। हुज़ूर महाराज का बड़ा विशाल हृदय था। अकालियों को, जो उनके ख़िलाफ़ दिन–रात प्रौपेगेंडा करते रहते थे, हुज़ूर महाराज कहते, "आप भाइयों को भोजन की असुविधा होती होगी। यह गुरु का लंगर है। इसी में प्रसाद छक लिया करो।" शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी की ओर से जब डेरे के संबंध में पूछा गया कि वह गुरुद्वारा है या नहीं, तो हुज़ूर महाराज भाई सुरैनसिंह और भाई मघ्घरसिंह को भेजा। उन्होंने हुज़ूर महाराज की ओर से ऐलान किया

कि डेरा बाबा जयमल सिंह गुरुद्वारा है और वह गुरुद्वारा ही रहेगा। वहाँ गुरुवाणी का प्रचार होता है और आगे भी होता रहेगा। इस आशय की लिखत भी उन्होंने दी, जो शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के रिकॉर्ड में होगी।

हुज़ूर महाराज की गुरु-भक्ति

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज 1894 ई. में बाबा जी महाराज के चरणों में आए। आप उन दिनों कोहमरी में एस.डी.ओ. लगे हुए थे, जब छुट्टी मिलती, सीधे बाबा जी महाराज के पास ब्यास चले जाते और वहाँ सत्संग और गुरु–दर्शन का लाभ उठाते। जो तनख़्वाह मिलती, बाबाजी के चरणों में रख देते। बाबाजी उस रुपए में से कुछ रक़म हुज़ूर महाराज के घर गुज़ारे के लिए भेज देते और जो उचित समझते सेवा में लगा देते। बाबा जी हुक्म देते, तो हुज़ूर वापस नौकरी पर जाने से पहले घर जाते, अन्यथा वहीं से वापस ड्यूटी पर चले जाते।

गुरुयाई की दात

1902 ई. में बड़े सत्संग घर की नींव रखी गई। जिस समय यह सत्संगघर बन रहा था, तो बाबा जी ने फ़रमाया कि हम इस सत्संग घर में सत्संग नहीं करेंगे। जब सत्संग घर तैयार हो गया और संगत ने बाबा जी से सत्संग करने के लिए प्रार्थना की, तो बाबा जी ने कहा, "नहीं, प्रभु की यह इच्छा नहीं। मेरे बाद जिसने काम करना है, वही नए सत्संग घर (बड़े दरबार) में सत्संग करेगा।" बीबी रुक्को ने कहा, "जब उसका समय आएगा, तो उसे भी सुन लेंगे। अभी तो आप हमारे सिर पर बैठे हैं। आज तो हम आप ही का सत्संग सुनेंगे।" बाबा जी ने कहा, "नहीं। मैं चाहता हूँ बाबू सावन सिंह (बाबा जी हुज़ूर को प्यार से बाबू सावन सिंह कहते थे) मेरे होते सत्संग का काम संभाल लें।" संगत उस वक़्त तक सत्संग के लिए एकत्र हो चुकी थी और सबकी यही इच्छा थी की बाबा जी सत्संग करें। आख़िर बीबी रुक्को के बार–बार आग्रह करने पर बाबा जी उठे, किंतु दो ही सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद रुक गए और वही वचन दोहराए कि प्रभु की यह इच्छा नहीं। मेरे बाद जिसने सत्संग का काम करना है, वही नए सत्संग घर में सत्संग करेगा।

जब लोग नए सत्संग घर पहुँचे, तो बाबा जी महाराज के गुरुमुख बेटे, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज, जो उस समय डेरे में मौजूद नहीं थे, उन्हें सत्संग के आसन पर बैठे दिखाई दिए। यह चमत्कार देखकर लोग अचंभे में आ गए।

यह कोई विलक्षण बातें नहीं, प्रकृति के नियम के अनुसार ही हैं, केवल हम उन नियमों से अभी परिचित नहीं हैं। मैडम ब्लावाट्स्की के बारे में ज़िक्र आता है कि वह लाहौर में भाषण कर रही थीं कि एक प्रोफ़ॅसर उठकर कहने लगा, "यह जो कुछ आप कह रही हैं, यह सब क़िस्से–कहानियाँ हैं और वैसे ही असंभव हैं, जैसे कि अभी–अभी छत से फूल बरसने लग जाएँ।" मेडम ब्लावाट्स्की ने कहा, "प्रोफ़ॅसर! क्या तुम समझते हो यह असंभव है?" और उसी वक़्त छत से फूलों की वर्षा हुई और मेज़ भर गई। यह देखकर प्रोफ़ॅसर हैरान रह गया। मेडल ब्लावाट्स्की ने कहा, "यह जो कुछ हुआ प्रकृति के क़ानून के अंतर्गत ही हुआ है, जिसका अभी हमें कोई ज्ञान नहीं, उन नियमों के बारे में अभी हम कुछ नहीं जानते।"

सूर्य की किरणों के समान, जो सबको जीवन और ज्योति प्रदान करती हैं, बाबा जी की दयामेहर का प्रसाद सबके लिए था, किंतु उनके विशेष कृपा–पात्र श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज थे। हुज़ूर 1894 ई. से लेकर 1903 ई. तक नियमित रूप से बाबाजी के दर्शनों के लिए डेरा ब्यास जाते रहे। इस दौरान में बाबा जी भी कई बार उनके यहाँ पधारे। बाबा जी ने अपनी निज सेविका बीबी रुक्को को, जो एक अनुभवी महिला थीं, पहले ही बता दिया था कि सुंदर, प्रियदर्शन बाबू सावन सिंह जी उनके उत्तराधिकारी होंगे।

एक दिन बाबा जी मौज में आकर अपने प्यारे गुरुमुख से कहने लगे, "आप और मैं मानव जाति के कल्याण के लिए संसार में आए हैं।"[3] हुज़ूर

3. बाबा जी महाराज को भी उनके गुरु स्वामी शिवदयालसिंह जी महाराज ने यही बात कही थी। स्वामी जी ने फ़रमाया, "जीवों के कल्याण के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है। तुममें और मुझमें कोई अंतर नहीं।" बाबा जी ने कहा, "मैं इस योग्य नहीं। मुझे अपने चरणों में पड़ा रहने दीजिए, अहंकार के विष से दूर।" हुज़ूर स्वामी जी महाराज ने फ़रमाया, "घबराओ नहीं, सच्चे संत में अहंकार नहीं होता।" बाबा जी ने पुनः यही कहा कि मुझे तो अपने चरणों में पड़ा रहने दीजिए। मेरी यही एक माँग है कि मैं संतों के दासों का दास बना रहूँ।

महाराज ने जवाब में कहा, "आप निश्चय ही जीवों के कल्याण के लिए संसार में आए हैं, परंतु मैं तो एक साधारण भूला–भटका बंदा हूँ।" बाबा जी ने वही वचन दोहराए, तो हुज़ूर ने फिर वही उत्तर दिया। बाबाजी ने त्योरी चढ़ाकर ज़ोरदार आवाज़ में कहा, "बाबू जी, मैं आपसे बात कर रहा हूँ। हम दोनों मानव जाति के कल्याण के लिए आए हैं।" हुज़ूर यह बात सुनकर मौन रहे। बाबा जी ने इसी प्रकार एक और संकेत दिया, जब उन्होंने कहा, "मुझे परमार्थ की निधि (दौलत) प्राप्त करने के लिए कड़ा परिश्रम करना पड़ा, मैंने इसे ख़ूब कसकर ताले लगाकर रखा है, इसकी ख़ुशबू बाहर नहीं निकलने दी। किंतु मेरे बाद जो काम करेगा, उसकी ख़ुशबू सारी दुनिया में फैलेगी।"[4]

ज्यों–ज्यों समय बीतता गया, डेरा बाबा जयमल सिंह का महत्त्व बढ़ता गया और वह विश्व में आत्म–ज्ञान का एक महान केंद्र बनता गया। बाबा जी बड़ी–बड़ी इमारतें बनवाने के पक्ष में नहीं थे, परंतु अपने प्यारे गुरुमुख 'बाबू' सावन सिंह जी की बात वह टाल नहीं सके। अतः बाबा जी के जीवन के अंतिम दिनों में एक पक्का कुंआ और बड़ा सत्संग घर बनवाया गया, जिसका ज़िक्र पहले आ चुका है। पहली बार जब यह सुझाव बाबा जी के सामने रखा गया, तो उन्होंने फ़रमाया, "ऐसी जगह इमारत बनाने का क्या फ़ायदा, जहाँ नदी का पानी उसे बहा ले जाए?" किंतु 'बाबू' सावन सिंह जी कब मानने वाले थे। उन्होंने कहा, "महाराज, यदि आप एक बार भी कुंए का पानी पी लें और सत्संग की अमृत वर्षा करने की कृपा करें, तो मेरी मेहनत सफल हो जाएगी। इसके बाद भले ही नदी उसे बहा ले जाए।"

बाबा जी का अंत समय

बाबा जी के जीवन के अंतिम दिनों में ब्यास में यात्रियों की बड़ी भीड़ लगी रहती थी। बाबा जी जो कभी दिन–रात समाधि में लीन रहते थे, अब सारा समय सत्संगीजनों की सेवा में लगे रहते। उन दिनों दया–द्वार सब पर खोल दिए गए। बख़्शिश की ऐसी मौज थी कि देह–त्याग से

4. हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने भी अपने उत्तराधिकारी के बारे में भविष्यवाणी की थी कि "मेरे बाद जो आएगा, वह डंडे के ज़ोर से तुमसे भजन कराएगा।" अपने उत्तराधिकारी से उन्होंने फ़रमाया था, "कृपाल सिंह, जो भी किसी ने मुझसे माँगा, मैंने उसे दिया। इस लाड़ का नतीजा यह हुआ कि सत्संगीजन भजन से ग़ाफ़िल हो गए। तुम इनसे भजन कराना।"

कुछ दिन पहले जो कोई उनके कमरे में गया, उसका ध्यान टिक गया (मन स्थिर या एकाग्र हो गया) और सुरत दिव्य–मंडलों में विचरने लगी।

आख़िर बाबा जयमल सिंह जी के निजधाम प्रस्थान करने का दिन आ पहुँचा। 29 दिसंबर 1903 ई. का दिन था। ब्यास नदी की लहरों पर से होती हुई ठंडी हवा देह को सुन्न किए देती थी। बाबा जी की नज़र बार–बार दरवाज़े पर उठ जाती। आख़िर एक पुलिस अफ़सर[5] आया और बाबा जी से नामदान के लिए प्रार्थना की। बाबा जी ने कहा, "मैं तुम्हारी ही बाट जोह रहा था," उसी समय उसे 'सुरत–शब्द योग' का भेद देना शुरू कर दिया। नाम देने के बाद बाबा जी लेट गए और नश्वर देह को त्यागकर निजधाम को प्रस्थान कर गए।

सरकारी नौकरी

बाबा जी के निधन के बाद भी हुज़ूर नौकरी करते रहे। एस.डी.ओ. के पद पर काम करने के दौरान मोना रिमाउंट डिपो बनवाया। 1904 ई. से 1911 ई. तक एबटाबाद और रावलपिंडी रहे और न्यू रॉयल आर्टिलरी की इमारत बनवाई। मरी पहाड़ पर वॉटर सप्लाई का बड़ा तालाब बनवाया। नौकरी में उनकी कार्यपटुता, अनूठी सूझ–बूझ, सुप्रबंध और योग्यता का सबने लोहा माना। नौकरी के दौरान हुज़ूर डेरा ब्यास आकर मासिक सत्संग करते रहे। 1911 ई. से, जब हुज़ूर अवकाश पाकर स्थाई रूप से डेरे में रहने लगे। तब से लेकर उनके चोला छोड़ने तक, डेरे ने जो तरक़्क़ी की है, वह सबके सामने है। कहाँ एक–दो मकान, कहाँ भरा–पूरा शहर आबाद हो गया! अंग्रेज़ी के टी 'T' अक्षर के आकार का 40 फुट चौड़ा और 120 फुट लंबा सत्संग घर बनवाया, जो भवन–निर्माण कला की उत्कृष्ट कृति है। इसके सुनहरी कलश डेरा ब्यास से तीन मील दूर स्टेशन से साफ़ दिखाई देते हैं। नाम के ख़ज़ाने इस दरियादिली से लुटाए गए कि संसार में रूहानियत अथवा अध्यात्म की बाढ़–सी आ गई। बाबा जी ने अपने जीवनकाल में क़रीब तीन हज़ार लोगों को 'नाम' दिया। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के समय में 'सुरत–शब्द योग' की तालीम पूर्व से पश्चिम तक सारी दुनिया में फैली और फैलती चली

5. ये पुलिस अफ़सर लाला मंगतराय इंस्पेक्टर पुलिस थे, जिनका मकान अब भी डेरे में मौजूद है। वे 1903 ई. में नौकरी से रिटायर हुए और 1926 ई. तक डेरे में रहकर संगत की सेवा करते रहे।

गई। सवा लाख से अधिक नर–नारियों को, जिनमें हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यूरोपियन, अमरीकन आदि सभी देशों, जातियों और धर्मों के लोग सम्मिलित हैं, उनको हुज़ूर ने नामदान दिया।

गुरु और गुरुमुख के मामलात

बाबा जयमल सिंह जी और उनके गुरुमुख हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी के बीच जो मामलात गुज़रे, उनकी कहानी परमार्थाभिलाषियों के लिए शिक्षा व प्रेरणा का अनमोल भंडार है। यह आत्मा को शक्ति देने वाली और वास्तविकता से युक्त कहानी हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी के गुरुमुख सुपुत्र महाराज कृपाल सिंह जी ने "जीवन–चरित्र परम संत बाबा जयमल सिंह"[6] में प्रस्तुत की है। यह पुस्तक जीवन–चरित्र लेखन–कला की अनुसंधानपूर्ण उत्कृष्ट कृति कही जा सकती है। इसमें बाबा जी के जीवन, उनके व्यक्तित्व और शिक्षा पर ऐसा भरपूर प्रकाश डाला गया है कि बाबा जी और उनके समय की जीती–जागती तस्वीर नज़र के सामने उभर आती है। बाबा जी अपने गुरुमुख सुपुत्र, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी को समय–समय पर जो चिट्ठियाँ लिखते रहे, उनमें उनकी शिक्षा, व्यक्तित्व और गुरु और गुरुमुख के मामलात पर प्रकाश पड़ता है। इन पत्रों का विषयानुसार सार भी इस पुस्तक में दिया गया है। यहाँ इस कहानी के सुविस्तार वर्णन की गुंजाइश नहीं।

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज अपने मुखारविंद से फ़रमाया करते थे कि बाबा जी के हुक्म पर जीवों को नाम देने का कार्य आरंभ करने से पहले मैं चाचा प्रतापसिंह जी महाराज (हुज़ूर स्वामी जी महाराज के छोटे भाई) के पास गया, बाबा ग़रीबदास जी के पास गया। उन्होंने आश्वासन दिया कि तुम्हारा चिताया हुआ अर्थात दीक्षित जीव, चौरासी लाख योनियों के चक्कर में नहीं जाएगा। हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि 'अनमोल वचन' के नाम से बाबा ग़रीबदास जी वचनों का जो संग्रह मिलता है, उसमें उन प्रश्नों के उत्तर हैं, जो मैं उनसे पूछता रहता था।

---

6. महाराज कृपाल सिंह जी लिखित, "जीवन–चरित्र परम संत बाबा जयमलसिंह" हिंदी और अंग्रेज़ी, दोनों भाषाओं में सावन कृपाल प्रकाशन, कृपाल–आश्रम, दिल्ली से उपलब्ध है। इसका प्रथम संस्करण 1961 ई. में छपा था। दूसरा संस्करण नई खोज के दृष्टिकोण से परिवर्तित रूप में 1967 ई. में छपा था।

श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज 4 भंडारों या ख़ज़ानों के स्वामी थेः 1. हुज़ूर की अपनी साधना की कमाई, 2. बाबा जयमलसिंह जी महाराज की कमाई, 3. बाबा ग़रीबदास जी की कमाई, 4. चाचा प्रतापसिंह जी की कमाई। बाबा जी ने 1903 ई. में हुज़ूर महाराज जी को नामदान का काम सौंपा था। उस समय उन्होंने बाबा जी से चार वर माँगे थे :

(1) "कलियुग में जीव कुकर्म करते रहेंगे, उनको चौरासी न भोगनी पड़े।" बाबा जी ने वर दिया कि आपका चिताया हुआ जीव, जो नाम–सुमिरन में लगेगा, वह चौरासी के चक्र में अर्थात मनुष्य जन्म से नीचे नहीं जाएगा।

(2) "मेरा हाथ कभी तंग न रहे, ताकि संगत अर्थात सत्संगीजनों की सेवा में कठनाई न हो।" बाबा जी ने वर दिया, "राजा–महाराजा आपके दरबार में आकर नाम लेंगे और आपका हाथ कभी तंग नहीं रहेगा।"

(3) "मेरा दिया हुआ वर सबको लग जाए, पर श्राप का किसी पर प्रभाव न हो।" बाबा जी ने फ़रमाया, "ऐसा ही होगा।"

(4) "आप मेरे अंदर बैठकर काम करते रहना।" बाबा जी ने फ़रमाया, "ऐसा ही होगा।"

श्री हुज़ूर महाराज के ज्योतिर्मय व्यक्तित्व और दयामेहर के अनंत धारावाही प्रवाह के बारे में उनके गुरुमुख सुपुत्र महाराज कृपाल सिंह जी ने इतना कुछ कहा है और इतने विस्तार के साथ कि उनके सत्संग–प्रवचनों से श्री हुज़ूर महाराज के महान उपकारों और दयामेहर के दृष्टांतों को एकत्र किया जाए, तो ग्रंथ के ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संग–प्रवचनों में प्रायः श्री हुज़ूर महाराज और अपने जीवन के दृष्टांत प्रस्तुत किया करते थे। संत कृपाल सिंह जी महाराज फ़रमाया करते थे कि संतों की कहानी उनकी अपनी ज़बानी सुनें तभी हम उन्हें कुछ समझ सकते हैं। यदि वो स्वयं अपने बारे में न बताएँ, तो हम मन–बुद्धि के घाट पर विचरने वाले अल्पमति जीव उन्हें क्या जान सकते हैं? अतः यहाँ हम महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–प्रवचनों के अनंत भंडार में से परम संत हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के पावन ज्योतिर्मय जीवन की कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे। अनंत की इस वार्ता को पूरी तरह लिखा पाना असंभव है, चंद झाँकियाँ ही हम प्रस्तुत कर पायेंगे।

ЖЖЖ

4.
पिता-पूत की कहानी

सतिगुरु देखिआ दीखिआ लीनी।।
मनु तनु अरपिए अंतर गति कीनी।।
गति मिति पाई आतमु चीनी।।
– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰227)

और,

पिता पूत एकै रंगि लीनै।।
– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1141)

"सत्गुरु को देखा, उनसे आँखें चार हुईं, फिर दीक्षा अर्थात अंतर का मार्ग उनसे लिया और अपने अंतर को, घट को खोजा और सत् वस्तु को पाया, जो हमारे अंतर में थी और गुरु–कृपा से इस गति को प्राप्त किया कि 'मैं–तू' का भेद मिट गया और पिता–पूत एक ही रंग में रंगे गए।"

महाराज कृपाल सिंह जी की सत् वस्तु की खोज और श्री हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज से बाहर देह स्वरूप में भेंट का वृत्तांत पहले आ चुका है। पहली बार दर्शन करने पर बरबस इनके मुख से यह वचन निकला, "हुजूर अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" कोई पूछताछ नहीं, कोई सवाल–जवाब नहीं। सात साल तक जो अंतर दिव्य–मंडलों में मार्गदर्शन करते रहे, उनसे सवाल–जवाब की गुंजाइश ही कहाँ रह गई थी!

हुजूर महाराज फ़रमाया करते थे कि 'नाम' लेने भर से कोई सत्संगी या सिक्ख अर्थात शिष्य नहीं बन जाता। नामदान तो अंतरिम काल है, उम्मीदवारी है। सिक्ख बनने के लिए सत् की थोड़ी पूँजी दी जाती है, ताकि शिष्य कमाई करे और अंतर में गुरु–स्वरूप को प्रकट कर ले। सत्संगी या सिक्ख तब बनता है, जब गुरु अंतर में प्रकट हो और बातें करे। इस बात का समर्थन हुजूर महाराज के इस कथन से भी होता है कि, "मुझे भाई

कह लो, दोस्त कह लो, अध्यापक कह लो, बुज़ुर्ग या पिता समान समझ लो। मेरे आदेशानुसार चलो अंतर, अंतर्मुख दिव्य–मंडलों में गुरु की शान को देखो, तो फिर जो चाहे मुझे कह लेना।" मुख से लाख हम कहते रहें, 'सत्गुरु दयाल', 'सच्चे पातशाह', 'स्वामी', 'हुज़ूर', दिल में ज़्यादा से ज़्यादा हम उन्हें दोस्त, भाई, अध्यापक, बुज़ुर्ग और पिता समान ही समझ सकते हैं, और क्या समझेंगे? गुरु की कुछ झलक उस समय मिलती है, जब पिंड से, स्थूल देह से, ऊपर आकर शिष्य की, जो पूर्व संस्कारों और गुरु की दयामेहर से शिष्य बना, उसकी पुकार थी, समर्थ गुरु के आगे कि हुज़ूर अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की? उत्तर में हुज़ूर सच्चे पादशाह ने फ़रमाया, "यही समय उचित[7] था।"

इनके बचपन के वृत्तांत से प्रकट है कि इनमें परमार्थ की पृष्ठभूमि पहले से तैयार थी और इन्हें इसका आभास भी था। अंतर्यामित्व और अन्य दैवी गुण तथा शक्तियाँ इनमें जन्मजात थीं और आयु के साथ उनकी उन्नति और विकास होता चला गया। सत् की खोज में कई साधु–महात्माओं से भेंट हुई, जिनमें ऊँची करनी वाले लोग भी थे। अब्दुल वहाब जैसे धरती से उठकर हवा में अधर टिके रहने वाले फ़क़ीर देखे, ऋद्धि–सिद्धि वाले पुरुष भी देखे, मस्त फ़क़ीर बाबा कान्ह के दर्शन किए, बहुत लोग मिले, परंतु वह न मिला जिसकी तलाश थी।[7]

चलता हूं थोड़ी दूर हर इक रहनुमा के साथ
पहचानता नहीं हूं अभी राहबर को मैं

---

7. इस सिलसिले में एक दिलचस्प बात यह है कि इनके चिर–परिचित सरदार बेअंतसिंह जी ने, जो इन्हीं के नगर के रहने वाले और हुज़ूर महाराज के पुराने सत्संगी थे, 1921 ई. में इनसे हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की बड़ी महिमा की। महाराज कृपाल सिंह जी ने कुछ निशानियाँ बताईं कि यदि यह बातें तुम्हारे गुरु में हैं, तो निश्चय ही वे समर्थ पुरुष हैं। 1917 ई. से अंतर में इन्हें हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का दिव्य–स्वरूप दिखाई देता था अर्थात चार साल से हुज़ूर इनके साथ थे। सरदार बेअंतसिंह जी कुछ न कहते, केवल हुज़ूर का चित्र ही दिखा देते (जैसे महाराज कृपाल सिंह जी 'नाम' देने के बाद दिखाते थे और उनमें से बहुत से बहन–भाई तत्काल गवाही देते कि यही महापुरुष हैं, जिन्हें हमने अंतर में देखा है) तो यह मुलाक़ात 1924 ई. की बजाए 1921 ई. में ही हो जाती, परंतु गुरु–सत्ता को यह मंजूर न था।

सत् की खोज में प्रभु–प्राप्ति का उच्चतम लक्ष्य आपके सामने था, उससे कम कोई चीज़ कैसे स्वीकार कर लेते? फलस्वरूप खोज ज़ारी रही। इस तलाश ने, खोज ने विरह–व्याकुलता के कई रंग दिखाए। होते–होते यह हालत बनी कि हर समय आँखों से आँसू बहते रहते। लाहौर से पेशावर बदली हुई, तब भी यही हालत थी। इनकी माता और इष्ट–मित्र समझे कि नई जगह आए हैं, पिछली याद सताती होगी, इसलिए उदास हैं। अब किसे बताएँ कि बात क्या है? और कौन समझेगा?

घायल की गत घायल जानै, की जिन लाई होय।।

— मीराबाई की शब्दावली (2, शब्द 3, पृ.4)

महाराज कृपाल सिंह जी का कथन है कि विरह में यह अवस्था बने, तो समझो प्रभु से मिलाप के दिन आ गए, जैसे पेड़ में कलियों का आना फल लगने का सूचक है या बादल घिर आएँ, तो वर्षा की आशा हो जाती है। कुछ समय पश्चात इन्हें अंतर में हुज़ूर महाराज का दिव्य–स्वरूप दिखाई देने लगा, जिसके बारे में आप कहते हैं, "वो जो पहाड़ की चोटी पर खड़ा देखता है कि कहाँ आग लगी है और कहाँ धुआँ उठ रहा है, उसने मेरे अंतर की हालत देखी कि यह मुझसे मिलना चाहता है, इसके मन में सच्ची तड़प है, मुझे मिलने की और वो मेरे हाल पर दया कर अंतर में आने लगे और फिर बाहर भी ऐसी कृपा की कि क्या कोई मोल दे सकता है!"

यह तो था एक पहलू, इस घटना का। दूसरा पहलू हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के जीवन–वृत्तांत में सामने आता है, जब बाबा जी महाराज ने इन्हें देखकर बीबी रुक्को से फ़रमाया था कि हम इस सिक्ख के लिए यहाँ आए हैं। इस घटना का ज़िक्र करते हुए महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं, "यह चुनाव प्रभु की ओर से होता है। क्या सारे पंजाब में कोई दूसरा आदमी न था? आदमी बहुत थे, वह इंसान मिलता नहीं था, जिसकी बाबा जी को तलाश थी, जिसने आगे संसार का मार्गदर्शन करना था। हुज़ूर सावन सिंह जी महाराज में क्या विशेषता थी इस चुनाव के लिए? उनमें वह संस्कार थे, जो पूर्ण पुरुषों में हुआ करते हैं।"

महाराज कृपाल सिंह जी के इन दोनों कथनों को मिलाया जाए, तो इस पहली मुलाक़ात की वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है। यह जीवन–कथा

अमर जीवनधारा की कहानी है, जो समय–समय पर गुरु और शिष्य के रूप में अपनी कहानी कहती और ज्योति से ज्योति जगाती चली आई है। रसना और भाषा में शक्ति नहीं कि वो इस कथा का वर्णन कर सकें।

अल्लाह अगर तौफ़ीक़ न दे, इन्सान के बस का काम नहीं
फ़ैज़ाने मुहब्बत आम सही, इरफ़ाने मुहब्बत आम नहीं

प्रेम का वरदान मिलना, प्रेम हो जाना सहज बात है, किंतु प्रेम का सार पाना कठिन है।

एक ओर प्रेमी खड़ा है। "हूज़ूर अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" इस वाक्य के पीछे छान–बीन और तलाश की, विरह और सोज़–फ़िराक़ की एक लंबी कहानी है, जो पूर्व प्रकरण में वर्णित है। वह सारी घटनाएँ पृष्ठभूमि हैं इस घटना की, वो सारे क्षण मिलन के इस क्षण का एक भाग हैं और इस प्रकार संबंधित हैं और अभिन्न हैं उस क्षण से कि उन्हें एक–दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। गुरु के बाहरी देहस्वरूप की कद्र वही जानता है, जिसने अंतर्मुख उसके दिव्य–स्वरूप के दर्शन किए हैं। "हुज़ूर अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" इस वाक्य में जो पीड़ा है, चुभन है, कोई भेदी ही उसे जान सकता है। हम मन–बुद्धि के घाट पर रेंगने वाले किताबी कीड़े उसे क्या समझ सकते हैं! और हुज़ूर महाराज का जवाब कि "यही समय उचित था" स्पष्ट संकेत है कि इस सारे कारोबार में मानवीय प्रयत्नों को दख़ल नहीं, यह उस करन–कारण प्रभु–सत्ता का काम है, जो गुरु की मानव देह में काम करती है।

शिष्य के प्रश्न के पीछे, उस क्षण से पहले के पूरे जीवन का संकेत छिपा है, जिसका वृत्तांत पहले आ चुका है। गुरु के उत्तर में उसकी रज़ा का, इच्छा का इशारा है, जिसका वर्णन आगे आएगा। कहानी तो पहली मुलाक़ात ही में अपनी चरम सीमा को पहुँच गई थी, किंतु महापुरुषों का जीवन अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए हुआ करता है। उनका जीवन एक खुली पुस्तक है, जीवन–पथ के यात्रियों के मार्गदर्शन के लिए। अपनी जीवन–यात्रा में वो जिज्ञासुओं के लिए पद–चिह्न छोड़ जाते हैं, इसलिए उनकी कहानी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर शुरूआत बन जाती है। जैसे अध्यापक प्राइमरी में प्राइमरी की, मिडिल में मिडिल की और एम.ए. में एम.ए. की योग्यता दर्शाता

है, इसी तरह पूर्ण होते हुए भी वो (महापुरुष) गृहस्थी, संसारी, जिज्ञासु, सेवक और शिष्य– सारे आदर्शों को अपने जीवन में प्रस्तुत करते हैं।

स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज ने बाबा जयमल सिंह जी को 'नाम' दिया, तो तीन दिन उनकी समाधि लगी रही। शिष्य अंदर कमरे में दशम–द्वार की चढ़ाई कर रहा है और गुरु बाहर लोगों से पूछ रहा है कि वह नौजवान सरदार जो कल आया था, फिर दिखाई नहीं दिया? बाबा जी ने हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी को 'नाम' दिया, तो थोड़े दिनों में यह हालत हो गई कि उनका तन–मन–धन गुरु अर्पण था। तन–मन कौन अर्पण कर सकता है? जिस पर विशेष कृपा हो, जो गुरु में समा जाए, उसका रूप हो जाए। महाराज कृपाल सिंह जी ने गुरु की खोज में कड़ी से कड़ी कसौटी, ऊँचे से ऊँचा आदर्श सम्मुख रखा, क्योंकि हर वक़्त यही धड़का लगा रहता था कि किसी अधूरे से वास्ता न पड़ जाए, जन्म अकारथ न चला जाए। परंतु जब पूर्ण गुरु मिल गया, तो तन–मन–धन उसके अर्पण कर दिया। कहानी तो तभी, पहली भेंट में पूरी हो गई थी। यह और बात है कि पहली नज़र की चाहत के इस क्षण के पीछे जन्म–जन्मांतर का इतिहास होता है, किंतु मानव देह द्वारा कैसे यह प्रेम–कथा दरजे–बदरजे खुलती अर्थात मानव से ईश्वर तक अध्यात्मिक विकास और उन्नति की सारी स्थितियों और मंज़िलों की निशानदेही करती चली जाती है, यह आगे की घटनाओं से प्रकट होगा।

महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते थे कि "जब मैं हुज़ूर महाराज के चरणों में गया, तो उन्होंने मेरी आवभगत में बड़ा कष्ट किया, 'इनके लिए कमरा तैयार करो, देखना इन्हें कोई तकलीफ़ न हो, यह करो, वह करो,' स्वयं जाकर मेरे ठहरने और आराम की व्यवस्था को देखा, जिससे मुझे बड़ी परेशानी हुई। अतः अगले रविवार को (सरकारी नौकरी में छुट्टी के दिन ही आ सकते थे) जब मैं उनके चरणों में गया, तो प्रार्थना की, "हुज़ूर इस सेवक के लिए इतना कष्ट न किया करें।" फ़रमाया, "अच्छा, आगे सबकी देखभाल तुम्हीं किया करना।"

हुज़ूर महाराज ने अलग कमरे में आपको 'नाम' दिया। उस दिन दूसरे दीक्षितों को बाहर 'नाम' दिया जा रहा था। हुज़ूर महाराज अपने दीक्षितों को रोज़ ढाई घंटे भजन–सुमिरन करने का आदेश दिया करते थे। परंतु महाराज कृपाल सिंह जी से कहने लगे, "कम से कम छः घंटे भजन किया

करो। इससे ज़्यादा जितनी तुम्हारी इच्छा हो।" तात्पर्य यह कि कोर्स जल्दी पूरा कर लो, आगे काम करना है।

नाम की कमाई

गुरु आज्ञा का पालन करते हुए आपने 'नाम' की कमाई का कार्यक्रम यह बनाया कि सवेरे 2.45 बजे ध्यान–भजन में बैठ जाते। धर्मपत्नी से कह रखा था कि पूरे 9 बजे खाना परोसकर इनके कमरे में रख दिया जाए। घड़ी और अलार्म का यह हिसाब नहीं था, गुरु कृपा से पौने 9 बजे अंतर से छुट्टी मिल जाती। इसके बाद खाना खाकर सीधे दफ़्तर चल देते थे। दफ़्तर से छुट्टी मिलने पर सत्संग का काम करते (जो शुरू से ही इनके ज़िम्मे था) और दीन–दुखियों तथा रोगियों का हाल–चाल पूछते हुए घर लौटते थे, आगे रात अपनी थी। रात को बाहर रावी नदी पर निकल जाते और सारी–सारी रात वहाँ अभ्यास करते। घर पर होते तो अपने कमरे में भजन पर बैठ जाते। पत्नी इनके आदेशानुसार भोजन परोसकर इनके कमरे में रख देतीं। ये भजन से उठते, तो रोटी खा लेते। इस प्रकार सुबह छः घंटे और रात को कम से कम तीन–चार घंटे भजन करना इनका नियम था।

जिनकी रातें बन गईं उनका सब कुछ बन गया

भजन–सुमिरन के संबंध में अपने सत्संग–प्रवचनों में जो आदेश आप दिया करते, उनमें अपने जीवन के अनुभव का निचोड़ आप प्रस्तुत करते थे। जैसे आपका यह वचन कि, "रोटी न खाओ, जब तक भजन न कर लो। पहले आत्मा को ख़ुराक़ दो, सुरत को नाम से अथवा करन–कारण प्रभु–सत्ता से जोड़ो, फिर शरीर को भोजन दो।" आपका नियम था कि रोटी पड़ी रहती, पर आप भजन से उठने के बाद ही भोजन करते थे। अपने सत्संग–प्रवचनों में आप अक्सर फ़रमाते कि जिनकी रातें बन गईं, उनका सब कुछ बन गया, जिनकी रातें बिगड़ गईं, उनका सब कुछ बिगड़ गया।

इसी प्रसंग में आपका कथन है, "रात को जंगल बना लो। सब घरों–बारों से छुट्टी करके प्रभु की याद में लीन हो जाओ।" रात को नदी किनारे आप नियमित रूप से अभ्यास शुरू से करते रहे। इस संदर्भ में

उदाहरण देते हुए आप फ़रमाते हैं, ″चोर रात को चोरी करता है, विद्यार्थी अध्ययन में रात गुज़ारता है, पहलवान व्यायाम करता है।″ इस संबंध में आप पंजाब के नामी पहलवान ′गूंगा′ का उदाहरण देते थे कि जब वह पहलवान बनकर लोगों के सामने आया, तो सबने उसे देखा, पर जब वह सारी–सारी रात व्यायाम (कसरत) किया करता था, उस समय किसी ने उसे नहीं देखा। इस दृष्टांत की पृष्ठभूमि यह है कि रावी नदी के किनारे रात्रि को आप अभ्यास में बैठते, तो वहाँ क़रीब ही गूंगा पहलवान व्यायाम किया करता था और उसके हांफने की आवाज़ इन्हें साफ़ सुनाई देती थी।

'तुम भी बैठ जाओ'

रावी के तट पर अभ्यास की एक रोचक घटना है। एक बार आप अभ्यास के लिए बैठने लगे, तो एक सिपाही ने आकर पूछा, "तुम कौन हो? और यहाँ इस वक़्त क्या कर रहे हो?" आपने कहा, "प्रभु की याद में बैठा हूँ। आओ तुम भी बैठ जाओ।" यह दृष्टिकोण था, जो संसार के व्यावहारिक संबंधों के सिलसिले में आप प्रस्तुत करते थे, जब लोग इनसे शिकायत करते कि यदि घर आए अतिथि की बात न पूछें, उससे उदासीन रहें और बेरुख़ी बरतें तो लोग नाराज़ हो जाते हैं और बात बिगड़ती है। आप फ़रमाते, "अतिथियों और मुलाक़ातियों का पूरा स्वागत–सत्कार करो, किंतु जो निज काम है तुम्हारा अर्थात भजन–सुमिरन, उसको न भूलो। आप भी भजन बैठो, मेहमानों और मुलाक़ातियों से भी कहो कि वो तुम्हारे साथ भजन बैठ जाएँ।"

साधना की सुगंधि

′नाम′ लेने के थोड़े दिन बाद हुज़ूर महाराज की अपार दयामेहर और निरंतर साधना से महाराज कृपाल सिंह जी ने अपना कोर्स पूरा कर लिया अर्थात अध्यात्म के सर्वोच्च शिखर (आत्म–ज्ञान की चरम सीमा) पर पहुँच गए। उनकी कमाई की सुगंधि दूर–दूर तक फैलने लगी और लोगों में चर्चा होने लगी। उन दिनों अभ्यासियों को दो–दो स्वरूप (एक इनका, एक श्री हुज़ूर महाराज का) अंतर में आने लगे।

सत्गुरु दयाल ने लाहौर, अमृतसर, गुजरांवाला, रावलपिंडी, स्यालकोट, वज़ीराबाद, नौशहरा, जेहलम आदि के सत्संग आपको सौंप रखे थे। सत्संग के बहुत से महत्त्वपूर्ण कार्य जैसे— आत्मानुभव से संबंध रखने वाले गूढ़ प्रश्नों पर भारत और विदेश से आने वाले पत्रों का जवाब देना और परमार्थ के साहित्य संबंधी काम को पूरा करना आदि काम हुज़ूर ने आपको सौंप दिए थे। आपके व्यक्तित्व और सत्संग में एक विलक्षण आकर्षण का प्रभाव पैदा हो गया था, जो 'नाम' की कमाई और आत्मानुभव का अनिवार्य परिणाम है। अतः लोग, जिन्होंने इनके अंदर सत्गुरु दयाल की दयामेहर की झलक देखी, इनकी ओर आकृष्ट होने लगे। स्वयं हुज़ूर महाराज जी आध्यात्मिक रोगियों को इनके पास भेज देते, क्योंकि radiation अर्थात आत्मानुभवी पुरुषों की आत्मरंग की किरणें ऐसे रोगियों को लाभ पहुँचाती है।

आकर्षण शक्ति की शिकायत

आपके प्रभावशाली व्यक्तित्व और सत्संग के अद्‌भुत आकषर्ण के बारे में कुछ लोगों ने हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज से शिकायत की कि इतनी आकर्षण शक्ति इनके सत्संग में होती है कि लोग इन्हें पूजने लग गए हैं और उसी श्रद्धा भाव से इनका दर्शन करते हैं, जैसे कि आपका। हमें डर है कि कहीं वे ध्यान न बदल दें, हुज़ूर की जगह इनका ध्यान न करने लगें। हुज़ूर ने फ़रमाया, "वह सत्संग ही क्या है, जिसमें कशिश नहीं। रही ध्यान की बात, जो स्वयं गुरु से जुड़ा है, वह तुम्हें उसी से जोड़ेगा, तोड़ेगा नहीं।"

बीबी हरदेवी ने बाबा प्रीतमदास और कुछ दूसरे लोगों का उदाहरण दिया कि उन्होंने अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के द्वारा कई लोग अपने गिर्द इकट्ठे कर लिए हैं। हुज़ूर ने फ़रमाया कि उन लोगों की बातचीत और सरदार कृपाल सिंह के सत्संग में बड़ा अंतर है। वो अपने साथ जोड़ते हैं, यह गुरु के साथ जोड़ेंगे। इसी प्रसंग में रावलपिंडी के लाला राजाराम सर्राफ़ ने एक दिन हुज़ूर महाराज से कहा, "हुज़ूर यह क्या बात है कि सरदार कृपाल सिंह मुझे बड़े प्यारे लगते हैं?" हुज़ूर ने पूछा, "कितने प्यारे लगते हैं?" वो कहने लगे, "आपको में साक्षात् परमात्मा समझता हूँ और आपसे दूसरे दर्जे पर मैं सरदार कृपाल सिंह जी को मानता हूँ।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "बाबा

जी महाराज के समय में लोग मुझसे भी इसी तरह प्यार करने लगे थे।" लाला राजाराम ने कहा, "हुज़ूर इसका मतलब है कि सरदार कृपाल सिंह जी वास्तव में एक महान हस्ती हैं।" हुज़ूर ने ज़ोर देकर कहा, "दरीं चिह शक़" अर्थात इसमें क्या संदेह है?

जहाँ एक ओर 'नाम' की कमाई और परमार्थ लाभ, जो लोगों को इनसे मिलने लगा था, उसके कारण आप हर छोटे–बड़े के प्रेम और श्रद्धा का केंद्र बन गए थे, तो दूसरी ओर गुरु–गद्दी को पैतृक संपत्ति (ख़ानदानी विरासत) समझकर जो लोग उस पर आँख लगाए बैठे थे, उनकी ईर्ष्या का निशाना भी आप बनते जा रहे थे। यह कोई नई बात नहीं, सत्य का विरोध हुआ ही करता है। जितनी ज़्यादा रूहानियत की ताक़त काम करेगी, उतना ही अधिक विरोध भी होगा।

'हुज़ूर मेरे लिए काफ़ी हैं'

हुज़ूर महाराज की आप पर विशेष कृपा थी। इनके लिए ख़ास रियायत थी कि हुज़ूर कुछ भी काम कर रहे हों, यह उनके पास जा सकते थे। सेवादारों को ख़ास हिदायत थी कि इन्हें कभी न रोका जाए। इनका नियम था कि हफ़्ते में दो बार हुज़ूर के दर्शनों के लिए लाहौर से डेरा ब्यास चले आते, शनिवार की रात और रविवार का पूरा दिन डेरे रहकर सोमवार प्रातः चलकर लाहौर ड्यूटी पर उपस्थित हो जाते। बीच में एक फेरा और लगा जाते।

शुरू–शुरू की बात है, लोगों ने आपसे पूछा कि हुज़ूर कितने बड़े हैं? आपने कहा, "हुज़ूर कितने बड़े हैं, यह तो मैं नहीं जानता। इतना ज़रूर जानता हूँ कि मेरे लिए काफ़ी हैं।" इस प्रसंग में आप फ़रमाया करते कि बच्चा अध्यापक को क्या जान सकता है? जितना–जितना वह ज्ञान और इल्म प्राप्त करता जाता है, उतना–उतना उसे अध्यापक की योग्यता और महानता का भान होता जाता है।

उन दिनों डेरे में ज़्यादा भीड़–भड़क्का नहीं था। साल में जो दो भंडारे होते थे, उनमें भी पाँच सौ, हज़ार से अधिक लोग नहीं होते थे। लेकिन सत्संगियों का आपस में बहुत प्रेम भाव था– सगे–संबंधियों से भी अधिक।

सत्संगियों के सदाचार की बड़ी ख्याति थी। यहाँ तक कि कचहरी में कोई सत्संगी गवाही देता, तो वह सत्य समझी जाती थी। लोग कहते थे, हुज़ूर बाबा सावन सिंहजी महाराज के सत्संगी झूठ नहीं बोलते।

दूसरी बड़ी बात थी– सत्संगियों का सेवा–भाव। आरंभ में बहुत थोड़े लोग लंगर में भोजन पाते थे, किंतु बाद में भारी संख्या में लोग उस स्थान पर आने लगे। होते–होते यात्रियों की संख्या इतनी बढ़ गई कि एक वार्षिक सत्संग में एक दिन में भोजनशाला में सात मन नमक ख़र्च हुआ। उन दिनों लंगर की सेवा में सत्संगियों के गुरु–प्रेम और निष्काम–सेवाभाव की अनुपम झाँकी दिखाई देती थी। लंगर में सब छोटे–बड़े एक थे, कोई भेद–भाव नहीं था। सबको मुफ़्त भोजन मिलता था। महिलाएँ सारी–सारी रात प्रेम–विभोर हो खाना पकातीं और साथ ही गुरुवाणी के शब्द भी गाती जातीं। इतने प्यार से खाना पकाया और परोसा जाता था कि देह के साथ आत्मा को भी भोजन मिल जाता। हुज़ूर महाराज बड़े दरबार अर्थात नए सत्संग घर के मैदान में सत्संगियों को भजन के लिए बिठाते थे, स्वयं भी उनके बीच भजन बैठा करते थे।

तारों तक नाम

हुज़ूर महाराज की अपार कृपा और सामर्थ्य के प्रसंग में महाराज कृपाल सिंह जी अपने बड़े बेटे दर्शनसिंह का क़िस्सा सुनाया करते। दर्शनसिंह तब सात वर्ष के रहे होंगे। पिता के साथ वो भी श्री हुज़ूर महाराज के दर्शनों के लिए जाता। हुज़ूर उसे बड़ा प्यार करते। एक दिन हुज़ूर से कहने लगा, 'महाराज जी, मुझे नाम दो।' उन्होंने फ़रमाया, "तुमको मीठा–मीठा ईनाम देंगे" और मिठाई दे दी। दोबारा हुज़ूर के पास गया, तो मिठाई लेने से इंकार कर दिया। कहने लगा, "मुझे तो वो नाम चाहिए, जो आपने मेरे बाबू जी को दिया है।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "शाम को आना।" शाम को दर्शन वहाँ गया, तो हुज़ूर ने सामने बिठा लिया। कहने लगे, "आँख बंद कर और अंदर देख।" पूछा, "क्या दिखाई देता है?" कहता है, "रौशनी है, आसमान है।" उन्होंने फ़रमाया, "और आगे देख।" बोला, "तारे हैं।" महाराज जी ने कहा, "अभी तेरे लिए इतना ही काफ़ी है।" दर्शन भागा–भागा पिता के पास

पहुँचा बोला, "बाबू जी, बाबू जी! मुझे तो तारों तक नाम मिला है, आपको कहाँ तक मिला है?"

'बिन कथनी उपदेश'

महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाया करते, "मैंने हुजूर से कभी कोई प्रश्न नहीं किया। शुरू में सिर्फ़ दो प्रश्न पूछे थे (जिनका ज़िक्र आगे आएगा) बस चुपचाप सामने देखता रहता, एकाग्रचित दर्शन करता। देखने–देखने में मुझे सब कुछ मिल गया।" अतः अपने सत्संग–प्रवचनों में आप गुरु–दर्शन के महत्त्व पर बड़ा ज़ोर देते थे। फ़रमाते, "पूर्ण पुरुष के पास जाओ, सब तरफ़ से चित्त–वृत्ति हटाकर उनके चरणों में बैठो, चुपचाप देखते रहो। दर्शन में इतने लीन हो जाओ कि दुनिया भूल जाए। वो (गुरु) रहे या तुम, और कोई व्यवधान न रहे। उस मंडल में ठंडक की, स्थिरता की, निजानंद की लहरें चलती हैं, एक नशा, एक मस्ती होती है। तुम उस मंडल का असर महसूस करोगे। जब उनके पास जाओ तो मन और बुद्धि को किनारे रख दो, थोड़ी देर के लिए। जो कुछ तुम जानते हो वह तो जानते ही हो, सुनो वो क्या कहता है?"

आप हुज़ूर के चरणों में जाते, तो *"दीदा शौ यक़सर"* अर्थात सर्वथा आँख बन जाते, चुपचाप देखते रहते। हुज़ूर महाराज की विशेष कृपा थी, मुलाक़ात में कोई रोक–टोक नहीं थी। जैसे ही ख़बर मिलती कृपाल सिंह जी आए हैं, हुज़ूर तुरंत बुला लेते। हुज़ूर कोई काम कर रहे हों या किसी से बातें कर रहे हों, यह चुपचाप बैठे देखते रहते। दर्शन में ऐसे लीन हो जाते कि तन–बदन की सुधि न रहती। पास बैठे लोगों को मुफ़्त नशा मिल जाता।

आपका नियम था कि सत्संग में सबसे पीछे बैठते। एक बार एक धनी व्यक्ति, जिसे इनसे कुछ काम था, आकर इनके पास बैठ गया, सत्संग के मध्य में, वह वहीं बैठा रहा। दूसरे दिन फिर वह वहीं आकर बैठ गया। आपने उससे कहा, "आप बड़े आदमी हैं, आपकी जगह आगे है, पीछे नहीं।" वह बोला, "सत्गुरु दयाल की तवज्जोह, दयादृष्टि यहाँ ज़्यादा मार करती महसूस होती है।"

एक दिन आप सत्गुरु दयाल के दर्शन में लीन थे। दोनों के अतिरिक्त अन्य कोई वहाँ मौजूद न था। एक भक्त महिला ने देखा, तो शोर मचा दिया, "मैंने आप दोनों की चोरी पकड़ ली है।" सत्गुरु दयाल उस महिला पर हँसे और बोले, "क्या चोरी पकड़ ली है तूने?" कहने लगी, "आप दोनों देह में नहीं हो, देह से उठकर आँखों में आ गए हो।"

उपासना

अपने सत्संग–प्रवचनों में महाराज कृपाल सिंह जी दर्शन के बारे में 'उपासना' का आदर्श प्रस्तुत करते थे। उपासना (उप–आसन) अर्थात पास बैठना। पास बैठना यह नहीं कि *'दिल दिया कहीं और ही तन साधु के संग।'* दर्शन में इतना लीन हो जाएँ कि तन–बदन की सुधि भूल जाए। दर्शन के प्रसंग में बड़ी गूढ़ बातें आप बताते। आप फ़रमाया करते, "हुज़ूर अपने काम में लीन होते, मैं चुपचाप बैठा देखता रहता। एक्टर होता है ना! उसकी हर बात में अभिनय होता है–खाने–पीने, उठने–बैठने, चलने–फिरने, बातचीत में। एक तो उसका वास्तविक स्वरूप, जो वो स्वयं आप है (अर्थात परमात्मा) दूसरा वह जो वेश धारण करता है अर्थात मानव। पूर्ण पुरुष हमारी तरह मानव देह रखता है, परंतु वह कुछ और भी है। वह इंसान के रूप में ख़ुदा है, Man in God है, सदेह ब्रह्म है। दोनों में अंतर नहीं। चित्त–वृत्ति एकाग्र करके चुपचाप बैठ देखते रहो, तो God in man की, प्रभु–सत्ता की, जो उस मानव देह में काम कर रही है, झलक मिलती है।

दो प्रश्न

महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं कि सत्गुरु दयाल से मैंने कभी कोई प्रश्न नहीं किया, चुपचाप बैठा दर्शन करता रहता। देखने–देखने में मुझे सब कुछ मिल गया, बिन माँगे मिल गया। हुज़ूर अपने मुखारबिंद से जो वचन कहते, मैं लिख लेता था। यह उनकी संगति का लाभ मिलता था।

आप फ़रमाते हैं, "सारी आयु में केवल दो प्रश्न मैंने हुज़ूर से पूछे थे– वे भी शुरू में। पहला प्रश्न था कि शिष्य बाहर से हट जाए, अंतर में अगली मंज़िल के कपाट खुलें नहीं, गुरु के दिव्य–स्वरूप के दर्शन न हों, तो वो क्या करे?" (याद रहे कि महाराज कृपाल सिंह जी को दीक्षा लेने से सात वर्ष पहले ही से अंतर्मुख गुरु के दिव्य–स्वरूप के दर्शन होने लगे थे, अतः

यह सवाल अपने लिए नहीं पूछा गया था)। हुज़ूर सच्चे पादशाह ने फ़रमाया, "लोग बच्चों का ध्यान करते हैं, गाय–भैंसों का, रुपए–पैसे और जायदादों का ध्यान करते हैं, तो साधू का ध्यान क्या बुरा है?" फिर फ़रमाया, "गुरु जब नाम देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है। ध्यान करके जाओ या बिना ध्यान किए, अंतर में जो बैठा है, वह अवश्य दिखाई देगा।"[8]

महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाया करते, "इसके बाद मैंने किसी को ध्यान नहीं बताया। ध्यान बड़ी ख़तरनाक चीज़ है। जिसका ध्यान आप करते हैं, परमात्मा न करे, वह वैसा न हो अर्थात! पूर्ण पुरुष न हो, तो तुम भी वही बनोगे, जो वह बना है, वैसे ही संस्कार तुम्हारे अंतर में पड़ेंगे। ख़ुदा (ख़ुद–आ) वह है, जो आप आए। सब तरफ़ से चित्त–वृति हटाकर उसके द्वार पर बैठो। हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि किसी अमीर आदमी के दरवाज़े पर कोई बैठा हो, तो उसे मालूम होता है कि कोई मेरे द्वार पर बैठा है। वह घट–घट की जानने वाला प्रभु अथवा जिस मानव देह में प्रकट रूप से प्रभु–सत्ता काम कर रही है, क्या वह नहीं जानता कि मेरे द्वार पर कोई बैठा है?"

जब अंतर के कपाट खुले और मंज़िल पर पहुँचे, तो आपने सत्गुरु दयाल से पूछा, "हुज़ूर यह आत्म–विद्या तो एक संपूर्ण विद्या है। इसका क्या सबूत है कि आपके बाद भी यह रहेगी? रहेगी, तो किस रूप में होगी!" हुज़ूर ने फ़रमाया, "जिसको मैं कह जाऊँगा, उसका मैं ज़िम्मेदार हूँ, दूसरों का मैं ज़िम्मेदार नहीं और वह सिक्ख शक्ल में होगी।" (अर्थात! जिस महापुरुष को आगे चलकर जीवों का मार्गदर्शन करना है, वो सिक्ख जाति के होंगे)।

दिल से दिल की राह

दिल की लगी बुरी होती है। अनुमान करो, जिसे रूह की लगन लग जाए उसकी अवस्था क्या होगी? जिसे लगी हो वही जानता है! महाराज

8. सावन–आश्रम दिल्ली में प्रतिदिन प्रातः व सायं प्रार्थना सभा होती, जब लोग भजन बैठते। तत्पश्चात 'गुरुमत सिद्धांत' का पाठ होता। महाराज कृपाल सिंह जी जब दिल्ली में होते, तो प्रार्थना सभा में अंग्रेज़ी व हिंदी में प्रवचन करते और आदेश देते कि इन वचनों को नोट करो और अपने जीवन में धारण करो। उनके वे प्रवचन अंग्रेज़ी में 'मॉर्निंग टॉक्स' तथा हिंदी में 'प्रातःकालीन प्रवचन' संग्रह में छप चुके हैं।

कृपाल सिंह जी ने हिंदी, उर्दू, अंग्रेज़ी तथा पंजाबी भाषा में लगभग एक हज़ार कविताएँ रची होंगी। उन कविताओं में गुरु–प्रेम और विरह विह्वलता के हृदयोद्गार बरबस छलक पड़े हैं। सप्ताह में दो बार आप हुज़ूर महाराज के दर्शनों के लिए उनके स्थान डेरा ब्यास जाते थे। रविवार की छुट्टी में यह सुविधा थी कि शनिवार की रात को डेरे पहुँच जाते, रविवार का पूरा दिन और रात वहीं रहते और सोमवार को वापस लाहौर ड्यूटी पर उपस्थित हो जाते। शेष दिन ड्यूटी के थे, फिर भी बीच में एकाध फेरा और लगा जाते। दो–ढाई घंटे की आने–जाने की यात्रा थी। प्रातः दर्शन करके तुरंत वापस लौट जाते। कभी–कभी ट्रेन लेट हो जाती, तो बड़ी परेशानी होती।

इधर लाहौर में यह विरह–व्याकुल हों, तो उधर गुरु को भी चैन कहाँ! लाहौर से जो भी डेरे आता, हुज़ूर पहला सवाल उससे यही पूछते, "कृपाल सिंह से मिलकर आए हो?" यदि किसी सप्ताह यह ब्यास न जा पाते, तो हुज़ूर हाल पूछने के लिए कोई आदमी भेज देते। कई बार कार पर स्वयं इनके दफ़्तर पहुँच जाते। डिप्टी हरनारायण जी जाकर इन्हें ख़बर देते कि हुज़ूर आए हैं। दिल को दिल से राह बनने का सवाल था।

एक बार हुज़ूर महाराज बड़े चाव से इन्हें बाबा जी की जन्म भूमि, घुमाणा (जो हुज़ूर महाराज के लिए सबसे बड़ा तीर्थस्थान था) ले गए और वह स्थान दिखाया जहाँ बाबा जी भोरे (गुफ़ा) में बैठकर भजन किया करते थे, वह खूंटी भी दिखाई, जहाँ वो केस बांध देते थे, ताकि भजन में नींद न आए।

दिल से दिल की राह के प्रसंग में महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते, "हुज़ूर महाराज डेरे में होते, मैं यहाँ लाहौर में, तो कई बार बैठे–बैठे ठंडक–सी महसूस होने लगती, सिर से पाँव तक एक शीतल धारा–सी चलने लगती। मैं वक़्त नोट कर लेता। जब डेरे जाता, तो पूछता– मालूम होता कि उस वक़्त हुज़ूर महाराज ने याद किया था।" इसी प्रसंग में आप फ़रमाते, "यदि अध्यात्म की निधि ग्रहण करने के लिए पात्र तैयार हो, दो दिलों की एक–सी vibration हो, परस्पर ताल–मेल और सामंजस्य हो, तब यह अवस्था बनती है। इस अवस्था को पाने का साधन केवल प्रेम है। रेडियो की सूई के सही बिंदू पर लगने का प्रश्न है, हज़ारों मील से ध्वनि सुनाई देने लगती है। शिष्य का गुरु की ओर मुँह होना चाहिए। दिल से

दिल को राह हो, तो टेलीफ़ोन के यंत्र के समान जैसी टिक–टिक एक ओर हो, वैसी ही टिक–टिक हज़ारों मील दूर दूसरी ओर भी होती है। यहाँ दूरी–नज़दीकी का प्रश्न नहीं।" प्रायः यह देखा गया कि महाराज कृपाल सिंह जी से लाहौर में एक प्रश्न पूछा जाता और वही प्रश्न यदि डेरे में जाकर श्री हुज़ूर महाराज से पूछा जाता, तो वही उत्तर मिलता, जो कृपाल सिंह जी ने दिया था, वरन् शब्द भी वही होते।

डेरे में सत्संग की उन्नति

जैसे पहले ज़िक्र आया, महाराज कृपाल सिंह जी के दीक्षा लेने के समय डेरे में ज़्यादा भीड़–भड़क्का नहीं था, परंतु धीरे–धीरे यात्रियों की संख्या बढ़ने लगी। साल में दो समारोह समारोह होते थे। होते–होते इतनी भीड़ होने लगी कि सेवादारों के लिए प्रबंध करना कठिन हो गया, वो हार गए और हुज़ूर की सेवा में निवेदन किया कि वार्षिक सत्संगों के बदले मासिक सत्संग किए जाएँ, ताकि लोग बँट जाएँ और समारोह के अवसर पर अधिक भीड़ न हो। हुज़ूर महाराज ने बड़े दुख भरे लहज़े से फ़रमाया कि बाबा जी का भंडारा मैं नहीं छोड़ सकता। यदि इसमें तुम्हें सुविधा हो, तो साथ में मासिक सत्संग भी ज़ारी कर सकते हो। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "हुज़ूर मासिक सत्संगों में उतनी ही भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, जितनी भंडारों पर होती है, दिनों–दिन संगत बढ़ती जाएगी।" ऐसा ही हुआ। सत्संगीजनों की संख्या में इतनी वृद्धि हुई कि दिसंबर के एक भंडारे में एक दिन में सात मन नमक लंगर में व्यय हुआ। इतिहास में गुरु नानक के समय में राजा शिवनाथसिंह के एक बड़े लंगर का ज़िक्र आता है कि उसमें सवा मन नमक प्रतिदिन लगता था।

गुरु आज्ञा का पालन

महाराज कृपाल सिंह जी ने गुरु भक्ति का यह आदर्श प्रस्तुत किया है कि पूर्ण पुरुष के चरणों में जाओ, तो अपने आपको उसको समर्पित कर दो। समर्थ पुरुष की शरण दृढ़ करके पकड़ो। जो हुक्म वो दे, उसे पूरा करो। अपनी बुद्धि का बीच में ज़रा दख़ल न दो। कोई बात समझ न आए, तो मीन–मेख न निकालो, आनाकनी न करो। गुरु आज्ञा का पूर्णतया पालन करो।

आपने अपने जीवन में गुरु भक्ति का बड़ा ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। जैसा पहले ज़िक्र आया, लाहौर, अमृतसर के अतिरिक्त कई जगहों पर सत्संग करने की ड्यूटी सत्गुरु दयाल ने आपको सौंप रखी थी। सत्संग के लिए हुज़ूर का आदेश था कि चारपाई पर पड़े हुए हिल भी सको, तो सत्संग ज़रूर करो, उसमें नागा नहीं होना चाहिए। ड्यूटी के मामले में हुज़ूर बहुत सख़्त थे। एक समय शनिवार को रात्रि के नौ बजे आप डेरे पहुँचे। हुज़ूर को ख़बर मिली, तो उसी वक़्त बुला लिया। इनका इरादा था कि शनिवार की रात और रविवार का पूरा दिन वहीं रहे। लाहौर में सत्संग करने के लिए किसी और को कह दिया था। हुज़ूर के चरणों में बैठे–बैठे रात के ग्यारह बज गए। हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह! कल रविवार है। सत्संग में जाना चाहिए।" इतना इशारा काफ़ी था। उसी वक़्त वापस आ गए और फिर कभी सत्संग का नागा नहीं किया।

लाहौर की एक और घटना है। इन्हें बड़ा तेज़ ज्वर था, सारा शरीर ताप से झुलस रहा था। बदन में ज़रा ताक़त न थी। गुरु का हुक्म था कि चारपाई पर लेटे हुए हिल भी सकते हो, तो सत्संग में ज़रूर जाओ। आप उठे और दस–दस क़दम पर रुकते, गिरते–पड़ते, चार–पाँच फर्लांग का रास्ता तय कर लाला वीरभान असिस्टेंट डायरेक्टर ऑफ़ इंडस्ट्री के मकान पर पहुँचे, जहाँ सत्संग होता था। तेज़ बुख़ार की हालत में सत्संग किया। उस दिन सत्संग भी लंबा था। सत्संग ख़त्म हुआ, तो तबीयत पूर्णतया स्वस्थ और प्रसन्न थी। जाते समय दस–दस क़दम रुकते हुए आए थे, लौटते समय दौड़ते हुए गए। यह गुरु–कृपा का प्रताप था।

इसी प्रकार की एक और घटना है। इनका बड़ा बेटा दर्शनसिंह बीमार था। डॉक्टरों ने कहा, इसकी हालत नाज़ुक है, ज़िंदगी का कोई भरोसा नहीं। आप दफ़्तर से दो दिन की छुट्टी ले लें। इस घटना का ज़िक्र करते हुए आप फ़रमाते हैं, "इस बीच रविवार आ गया। हुज़ूर का हुक्म था, अमृतसर सत्संग करने के लिए। प्रातः चार बजे मैं उठा। जी में आया, डॉक्टर कहते हैं, लड़के की ज़िंदगी का भरोसा नहीं (उस वक़्त दर्शनसिंह की 18 वर्ष की अवस्था थी)। लेकिन क्या मैं इसे बचा सकूँगा? गुरु जाने अपना काम, मैं अपना कर्तव्य पूरा करूँ।" अमृतसर गए, सत्संग किया। गर्मियों के दिन थे।

बारह बजे भोग पड़ा। दिल में ख़्याल आया, ”ब्यास से आधे रास्ते आया हूँ, दर्शन करता चलूँ। चल पड़ा। दोपहर दो बजे डेरे पहुँचा। हुज़ूर को मेरे आने का पता लगा, तो ऊपर बुला लिया। हुज़ूर लेटे हुए थे, उठकर बैठ गए। यह लोग अंतर्यामी होते हैं। पूछा, ‘सुनाओ, काके का क्या हाल है?’ मैंने कहा, ‘हुज़ूर, वह ज़्यादा ही बीमार था।’ मगर मैंने कहा यहाँ रहकर कौन–सा मैंने इसे बचा लेना है। हुज़ूर बहुत उदास होकर बैठ गए। मैंने कहा, ‘हुज़ूर आपके दर्शनों से चिंता–फ़िक्र दूर हो जाते हैं। आप इस तरह क्यों बैठ गए?’ कहने लगे, ‘तूने अपने सिर से बोझ उतार दिया, तो मुझे उठाना ही पड़ा।’”

गुरु आज्ञा के पालन में कई ऐसी विकट परिस्थितयाँ आती हैं, जहाँ बुद्धि काम नहीं देती। महाराज कृपाल सिंह जी का उसूल था कि ऐसे समय पर मन–बुद्धि को किनारे रख दो। जो भी हुक्म मिले, बे चूँ–चरां उसे पूरा करो। लाहौर की एक घटना है, जिसका दृष्टांत आप इस प्रसंग में दिया करते थे। हुज़ूर एक बार जमालदीन दंत–चिकित्सक के यहाँ आए। अब हुज़ूर आएँ, तो किसका जी न चाहेगा दर्शन करने को? उधर सत्संग की ड्यूटी, इधर दर्शनों की बेताबी। क्या करें क्या न करें! हुज़ूर की आज्ञा का ख़्याल करते हुए सत्संग किया और भागम–भाग जमालदीन के यहाँ पहुँचे। हुज़ूर जा चुके थे। विचार आया कहीं भूल तो नहीं हुई? गए सीधे ब्यास, हुज़ूर के चरणों में। सारा हाल बताने के बाद पूछा, ”कहीं ग़लती तो नहीं की मैंने?“ हुज़ूर ने फ़रमाया, तुमने ठीक किया। जो वचनों पर फूल चढ़ाए, वही मुझे प्यारा लगता है।

एक और घटना उस समय की है, जब आप सत्गुरु दयाल की आज्ञा से ’गुरुमत सिद्धांत’ की रचना कर रहे थे। आपका नियम था कि दफ़्तर से छुट्टी के पश्चात लोगों के घरों में जाकर उनका हाल–चाल पूछते, दीन–दुखियों को सांत्वना देते और उनका दुख दूर करते हुए रात को घर पहुँचते थे। उन दिनों कुछ लोग इनका तीव्र विरोध कर रहे थे, अतः हुज़ूर महाराज ने इन्हें संदेश भेजा कि सत्संगघर के अतिरिक्त और कहीं न जाएँ। अब इन्हें बहुत समय मिल गया। दफ़्तर से सीधे घर आ जाते। सारी रात ’गुरुमत सिद्धांत’ लिखने का कार्य होता, प्रातः उठते ही दफ़्तर। लोगों ने पूछा, ”आपका लोगों के घरों में आना–जाना था। अब कहीं जाना

है, न आना। कैसे गुज़रती है?" कहने लगे, "नौकर को मालिक का हुक्म बजा लाना है। पहले दस कमरों की सफ़ाई का काम था, अब केवल एक कमरे की सफ़ाई की ड्यूटी है। काम ही करना है।"

सत्गुरु दयाल के इस हुक्म का परिणाम था कि कई निकट संबंधी मरते मर गए, यह उनको देखने नहीं जा सके। सरदार दलीपसिंह का लड़का मर गया, उसके घर नहीं गए, क्योंकि लोगों के घरों में जाने की मनाही थी—सीधे श्मशान भूमि चले गए। एक प्रेमी मित्र ने संदेश भेजा, "मैं मर रहा हूँ। इनसे कहो आकर मिल जाएँ।" आप वहाँ नहीं गए। दोबारा कहा। आँखों में आँसू आ गए। कहने लगे, "मेरा दिल उसके लिए रोता है, लेकिन गुरु के हुक्म की दीवार मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। संभाल तो सत्गुरु ने करनी है।" वह व्यक्ति मर गया, यह उसके घर नहीं गए। आप फ़रमाते, "लोगों के घरों को देखकर मुझे डर लगता था।"

मेहता रंगलाल की लड़की की सगाई थी। हुज़ूर लाहौर पधारे। यह भी दर्शनों के लिए गए। उस व्यक्ति की पत्नी ने शिकायत की, "हुज़ूर वो (उसका पति) मरते मर गए। ये (महाराज कृपाल सिंह जी) देखने नहीं आए, बुलाने पर भी नहीं आए।" फ़रमाया, "कृपाल सिंह! ऐसा मामला हो, तो चले जाया करो।" अब यह हुआ कि उसी व्यक्ति के घर जाने का विधान बनता, जिसने मर जाना होता।

सेवा का आदर्श

एक समय डेरे में भवन—निर्माण के सिलसिले में भक्त सेवक काम कर रहे थे। महाराज कृपाल सिंह जी भी टोकरी उठाकर सेवा कार्य में लग गए। लोगों ने कहा, "यह काम आपके योग्य नहीं।" आपने उत्तर दिया, "देह करके मानव लद्दू पशु की तरह परिश्रम करने वाला प्राणी है। मैं देहधारी हूँ, मुझे देह से सेवा करनी चाहिए। मैं बुद्धि रखता हूँ, बुद्धि से सेवा करना भी मेरा धर्म है। आत्मा देहधारी हूँ, आत्मा करके भी सेवा करनी चाहिए। मेरे लिए काम, कोई भी काम हो, पूजा है।"

महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संग—प्रवचनों में तन की सेवा पर बड़ा बल देते थे। आप फ़रमाते थे कि पढ़े—लिखे बुद्धिजीवियों को भी तन की सेवा करनी चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ रहता है, अंतर में नम्रता आती

है, मन निर्मल होता है। आप सारी उम्र अस्पतालों में जाकर तन–मन–धन से दीन–दुखियों की सेवा करते रहे। आपका जीवन सेवा के निमित्त रहा। काम, चाहे कैसा भी काम हो, आपने पूजा समझकर किया। 36 वर्ष की सरकारी नौकरी में केवल एकाध बार छुट्टी ली, वह भी सख़्त बीमार होने पर। एक समय ऐसा संयोग हुआ कि निश्चित समय पर Statement of Accounts, हिसाब का विवरण, तैयार करके देना था। दफ़्तर के कुछ कर्मचारी सहसा बीमार पड़ गए। आप पूरे 48 घंटे, दो दिन और दो रात, जमकर काम करते रहे, बीच में केवल शौच आदि के लिए कुर्सी से उठे। खाना तक नहीं खाया।

सांझे मंच का आदर्श

साहिब जी महाराज के गद्दी पर बैठने के रजत जयंती महोत्सव पर हुज़ूर महाराज जी आगरा गए। बहुत से सत्संगीजन भी इनके साथ वहाँ गए। वहाँ एक समझौता लिखा गया, जिस पर साहिब जी महाराज और हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने हस्ताक्षर किए। समझौता इस बात पर था कि राधास्वामी ऊँची से ऊँची अवस्था का नाम है। हुज़ूर महाराज को इस पर भला क्या आपत्ति हो सकती थी? 'स्वामी' की संज्ञा सारे महापुरुषों ने उसे दी है। 'महादयाल' और 'निराला' भी उसे कहा है। शब्द तो बोध कराने के लिए हैं, स्वामी कह लो, राधास्वामी कह लो, कोई नाम रख लो। स्वामीजी महाराज की तालीम इस बारे में साफ़ है। 'राधास्वामी' शब्द का स्पष्टिकरण उन्होंने स्वयं अपनी वाणी में इस प्रकार किया है :

राधा आदि सुरति का नाम।। स्वामी आदि शब्द निज धाम।।

– सार बचन (बचन 2, सिफ़त 4)

अर्थात 'राधा' सुरत का, आत्मा का नाम है। 'स्वामी' का अर्थ है सुरत का स्वामी, जहाँ वह लय होती है, जहाँ जाकर बूँद सागर में समा जाती है।

हुज़ूर आगरा से वापस आए, तो डिप्टी हरनारायण जी (हुज़ूर के सेक्रेटरी) ने क्या किया, चार सेवकों की ड्यूटी लगा दी कि हुज़ूर सत्संग के लिए पधारें, तो वह आगे होकर आगरे वालो की परंपरा के अनुसार 'बेनती' पढ़ना शुरू कर दें। एक दिन यह हुआ, दो दिन हुआ। हुज़ूर सुनते रहे। तीसरे दिन हुज़ूर ने 'बेनती' का पाठ बंद करा दिया। डिप्टी हरनारायण जी

ने कहा, "हुज़ूर यह क्या कर रहे हैं?" फ़रमाया, "जो कर रहा हूँ, ठीक कर रहा हूँ। यहाँ मैंने किसी एक या दूसरी समाज की रीति या प्रथा नहीं रखी। यह स्थान सब के लिए है। यहाँ हिंदू भी आते हैं, मुसलमान भाई भी आते हैं, सिक्ख भी आते हैं, ईसाई भी। अगर मैं राधास्वामी मत की 'बेनती' की रस्म रखूँ, तो हिंदुओं की आरती भी रखनी पड़ेगी, सिक्खों की अरदास भी। डेरे में विशुद्ध परमार्थ की शिक्षा–दीक्षा ही चलेगी।"

धर्म परंपराओं के पुजारियों की ओर से कई बार ऐसे प्रयत्न किए गए, परंतु हुज़ूर महाराज ने उनकी एक न चलने दी। हुज़ूर हरेक सत्संग में यह वचन कहते थे, "मुझे राम–राम कह लो, सत् श्री अकाल कहो, जयदेवा कहो, सलामालैकुम, राधास्वामी, नमस्ते– कुछ भी कह लो, मुझे सब कबूल है। अपनी–अपनी समाजों में रहो, अपने–अपने रीति–रिवाज़ और बोले (सम्मानसूचक शब्द) रखो। वह काम करो, जिसके लिए मनुष्य जन्म मिला है, अर्थात अपनी आत्मा को प्रभु से जोड़ो।" हुज़ूर महाराज की तालीम, जो वास्तव में सारे संतों की शिक्षा है, 'गुरुमत सिद्धांत' और अन्य ग्रंथों द्वारा (जो सावन आश्रम दिल्ली ने भी प्रकाशित किए) सारे संसार में फैली और अब भी फैल रही है। इस शिक्षा का साक्षात्, सक्रिय स्वरूप, रूहानी सत्संग, सावन आश्रम के संयुक्त मंच और 'विश्व धर्म संघ' के रूप में दुनिया के सामने मौजूद है।

पत्थर के फूल

हुज़ूर महाराज के जीवन वृत्तांत में एक गाँव का ज़िक्र आता है, जहाँ उनके सत्संग को रोकने के लिए लोगों ने पत्थर मारे। सत्संग के बाद हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह पत्थर एक दिन फूल बन जायेंगे।" यह भविष्यवाणी थी कि जिन हाथों में आज पत्थर हैं, उन्हीं में कल फूल होंगे। जो आज पत्थर मारते हैं, वास्तविकता को, सारतत्त्व को समझेंगे तो फूल बरसायेंगे, और यही हुआ। उस गाँव ही में नहीं–जहाँ आज सारे लोग सत्संगी हैं–हरेक जगह यही बात हुई। सत्संग के प्रमुख केंद्र वहीं बने, जहाँ पहले तीव्र विरोध हुआ था।

पत्थर मारने वाले लोग कौन थे? जो बात सुनने को तैयार नहीं थे। सत्य का विरोध हुआ ही करता है। यह कोई नई बात नहीं। उस महापुरुष

ने देखा कि इन बेचारों का कोई दोष नहीं। इन्हें बोध नहीं, ज्ञान नहीं। सत्वस्तु को देखा नहीं, पढ़े–पढ़ाए और सुने–सुनाए पर नाच रहे हैं। देखेंगे, तो आप ही मानेंगे। हुज़ूर फ़रमाया करते थे, "जहाँ दीवा जलेगा, तो पर्वाने आप ही खिंचे चले आयेंगे," और मुख़ालिफ़त के झक्कड़ों में आँधियों और तूफ़ानों में, उन्होंने वह दीपक जलाया जिसे आँधी–तूफ़ान बुझा नहीं सके।

नूरे ख़ुदा है कुफ़्र की हरकत पे ख़न्दा ज़न
फूंकों से यह चिराग़ बुझाया न जाएगा

इस प्रसंग में हज़रत इब्राहीम की मिसाल याद आती है। एक दिन वह नाव में बैठकर कहीं जा रहे थे। उसी नॉव में एक अमीर आदमी अपने मुसाहिबों के साथ सवार था। मनोरंजन के लिए कुछ नक़लची भी साथ थे। हज़रत इब्राहीम का घुटा हुआ सिर देखकर नक़लची ठट्ठा करने लगे, वो मौन रहे। नक़लचियों से कुछ नहीं कहा। उसी समय आकाशवाणी हुई कि ऐ इब्राहीम! मैं तेरा अनादर सहन नहीं कर सकता। तू कहे, तो अभी नाव डुबो दूँ। इब्राहीम ने प्रार्थना की, "ऐ ख़ुदा! इन बेचारों का क्या कसूर है? इनकी आँख ही नहीं खुली। अगर तू ऐसा मेहरबान है, तो इनकी आँख खोल दे।" प्रार्थना स्वीकार हुई। आँख खुली, देखा, चरणों में गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे। यह दृष्टांत हुज़ूर महाराज की अपार कृपा की, दयामेहर के अनंत धारा प्रवाह की झाँकी प्रस्तुत करता है। लोगों ने उन्हें पत्थर मारे, बदले में उन्हें फूल मिले। फूलों की महक फैली, तो वह दौड़े आए और पीछे–पीछे फिरने लगे।

रावलपिंडी में विरोध

जो लोग जीवन के सार–भेद को नहीं जानते थे, उन्होंने शुरू में हुज़ूर का घोर विरोध किया। 1928 से लेकर 1932 ई. का समय तो बड़ा कठिन था। हुज़ूर महाराज ने अकेले ही मुख़ालिफ़त के तूफ़ान का मुक़ाबला किया और उसका मुँह मोड़ दिया। लाहौर, रावलपिंडी, अमृतसर और गुजराँवाला में हाथापाई तक हुई। रावलपिंडी में अकाली भाई टोली बनाकर सत्संग में आ गए। उनमें कई किरपाणें लिए हुए थे। सत्संग शुरू होने से पहले उन्होंने एक रुक्का लिखकर बोलने के लिए समय माँगा। सत्संग आरंभ होने से पहले महाराज कृपाल सिंह जी ने उठकर ऐलान किया कि इस समय सत्संग

होगा। तत्पश्चात् जो भाई चाहें, उन्हें बातचीत के लिए अलग से समय दिया जाएगा। यह उस रुक्के का जवाब है, जो हमें भेजा गया है और जिसका जवाब पहले भी दिया जा चुका है।

हुज़ूर महाराज ने सत्संग शुरू किया, जिसमें कबीर साहिब की वाणी में से एक तुक पढ़ी। जो लोग दंगा करने आए थे, उन्होंने शोर मचा दिया कि गुरुवाणी से बाहर की वाणी क्यों ली गई है? हुज़ूर ने फ़रमाया कि रागी गुरुवाणी का गायन करते हुए बीच में अपनी कविताएँ सुनाते रहते हैं। मैंने तो एक पूर्ण पुरुष की वाणी प्रस्तुत की है। वहाँ कौन सुनता था? भगदड़ मच गई। लोग आपस में गुत्थम–गुत्था होने लगे। हुज़ूर चुपचाप बैठे देख रहे थे। उधर यह स्थिति हो गई कि गड़बड़ डालने वाले आपस में जूझ पड़े। महाराज कृपाल सिंह जी ने एक ज़िम्मेदार नेता की बांह पकड़कर कहा, "यह क्या हो रहा है?" वह कहने लगा, "यह मेरे क़ाबू में नहीं हैं।" इस पर आपने कहा, "जो आग बुझा न सको, वह लगाया भी न करो।"

उस समय सत्संगघर में महाराज कृपाल सिंह जी, उनके भाई सरदार प्रेमसिंह व सरदार जोधसिंह, सरदार बेअंतसिंह, डॉक्टर जॉनसन, बाबू गज्जासिंह, अमोलक मस्ताना और लखमेरसिंह ड्यूटी पर खड़े थे। लखमे. रसिंह, बीबी हरदेवी और डॉक्टर जॉनसन हुज़ूर महाराज के पीछे तीन दरवाज़ों पर पहरा दे रहे थे। बाक़ी लोग हुज़ूर के गिर्द घेरा डाले खड़े थे। बाहर खड़े लोगों ने दरवाज़ा तोड़ डाला और अंदर घुस आए। लखमेरसिंह दरवाज़े से पीठ लगाए बैठा था, धक्कों से उसकी पीठ घायल हो गई, पर वो अपनी जगह से हिला नहीं। महाराज कृपाल सिंह जी के पीछे एक अकाली अंगरक्षक बनकर खड़ा था। इतने में एक व्यक्ति उन पर आक्रमण करने लपका। तभी अमोलक मस्ताना गैलरी से उस पर कूद पड़ा। जो दंगई किरपानें खोले हुए बैठे थे, उनको हमला करने की हिम्मत न पड़ी। एक सिक्ख भाई दरबार साहिब पर पाँव रखकर हुज़ूर महाराज पर हमला करने को लपका। उसे यह कहकर परे धकेल दिया गया कि गुरु ग्रंथ साहिब पर पाँव रखते हो? दो घंटे लात–घूँसों का तमाशा जारी रहा। इसके बाद सब शांत हो गया। तभी हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया, "सत्संग शुरू करें?" महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, हुज़ूर आपका दिल ठिकाने है, लोगों का दिल ठिकाने नहीं है।"

हुज़ूर महाराज को उसी रात वापस चले जाना था, परंतु वो रुक गए। कहने लगे, "अब मैं सुबह सत्संग करके जाऊँगा।" अगले दिन सुबह सत्संग किया, शाम को फिर सत्संग किया, तीसरे दिन गए। दंगे वाले दिन लाला राजाराम जी के निवास–स्थान की ऊपर की मंज़िल पर गए, तो हुज़ूर महाराज ने इनसे पूछा, "कृपाल सिंह! क्या हाल है?" विनती की, "हुज़ूर मन में इतनी स्थिरता और शांति रही, जो पहले कभी नहीं थी।"

लाहौर में मुख़ालिफ़त

लाहौर बाग़बानपुरा में बाबा बग्गासिंह जी महाराज का सत्संग अकाली भाइयों ने गड़बड़ डालकर बंद करा दिया। अगले दिन किले के पास पीली कोठी में हुज़ूर महाराज का सत्संग था। वहाँ भी वह लोग पहुँचे हुए थे कि सत्संग नहीं होने देंगे। कई दंगई एकत्रित श्रोताओं में बैठे थे। महाराज कृपाल सिंह जी ने उनके साथ अपने आदमी बिठा दिए कि यदि वो दंगा करने लगें, तो उन्हें रोक दें। हुज़ूर आए, मंच पर आकर बैठ गए और बड़े रोब से कहा, "कृपाल सिंह! तुम्हें किसने कहा था, सत्संग का इंतज़ाम करने के लिए?" इन्होंने जवाब दिया, "हुज़ूर के आगमन का समाचार पाकर लोग दर्शनों के लिए इकट्ठे हो गए हैं।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "ख़ैर अब संगत आ गई है, मैं सत्संग करके जाऊँगा। अमृतसर में भी सत्संगीजन आ रहे हैं, उन्हीं का इंतज़ार है।" हुज़ूर बड़े रोब से बात कर रहे थे, जिसे देखकर दंगा करने वालों को भी कान हो गए।

हुज़ूर ने दो–ढाई घंटे सत्संग किया। दंगई टोली के आदमी सत्संग सभा में बैठे थे और बाहर भी खड़े थे, परंतु गड़बड़ नहीं डाल सके। सत्संग के दौरान में एक व्यक्ति बाहर विज्ञापन बाँट रहा था, किसी ने उसे रोका। वह व्यक्ति उसे कुल्हाड़ी मारने लगा। महाराज कृपाल सिंह जी ने छलांग मारकर उसकी कुल्हाड़ी पकड़ ली, अन्यथा वहीं हत्या हो जाती। कुल्हाड़ी और कुल्हाड़ी चलाने वाले को पुलिस के हवाले कर दिया और उनसे कह दिया कि इसको बाहर ले जाकर छोड़ दें। वह व्यक्ति डेरा साहिब के गुरुद्वारे में जाकर कहने लगा कि हमारे चिह्न (धर्मचिह्न) छीन लिए गए, हमारा धर्म भ्रष्ट कर दिया गया। वहाँ से दस–पंद्रह आदमी किरपानें लेकर आ गए। उधर पुलिस को ख़बर दी जा चुकी थी। जिस व्यक्ति की कुल्हाड़ी छिन

गई थी, वह महाराज कृपाल सिंह जी की ओर संकेत कर अपने साथियों से बोला, "इसे पकड़ लो।" वह लोग आगे बढ़े, तो महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "होश में आओ, आराम से बात करो।" उनमें कुछ बूढ़े व्यक्ति भी थे। उन्हें समझाया, 'चिह्न यहाँ किसी ने नहीं उतारे। पुलिस ले गई है। कुल्हाड़ी मिल जाएगी, नहीं तो दो–ढाई रुपए की बाज़ार से आती है, हम पैसे दे देंगे। तुम जानते हो, दूसरों के मकान पर हमला करना अपराध है। तुम्हारे हाथों में हथियार हैं। तुम्हारा अपराध सिद्ध है। तुम मेरे भाई हो। पुलिस वाले थोड़ी देर में आने वाले हैं। जल्दी से निकल जाओ, अन्यथा पकड़े जाओगे।"

दंगई वहाँ से खिसक गए। पुलिस आई। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "कुछ भाइयों को ग़लतफ़हमी हो गई थी। उन्हें समझा दिया गया है, वो चले गए हैं।" पुलिस वाले कहने लगे, "आपने व्यर्थ हमारा समय नष्ट किया। आइंदा हम आपके बुलाने पर नहीं आयेंगे।" पुलिस वाले रोष प्रकट कर चले गए। उधर शाम को बावली साहिब के गुरुद्वारे में फिर सिक्ख भाइयों की सभा हुई। बड़े गरमागरम भाषण हुए। सभा का प्रधान क़िला गुजरसिंह में महाराज कृपाल सिंह जी के मकान के समीप रहता था। वह कहने लगा, "मैं सरदार कृपाल सिंह जी को जानता हूँ। तुम ग़लत बात कर रहे हो। तुम्हें उनका आभारी होना चाहिए। उन्होंने तुम्हारी इज़्ज़त बचा दी, अन्यथा सब पकड़े जाते।"

गूजराँवाला और अमृतसर में भी ऐसी ही मुख़ालिफ़त थी। अमृतसर में पुलिस को बीच–बचाव करना पड़ा। यहाँ विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं। पेशावर, सैयद कसराँ और अन्य स्थानों में सत्संगियों का पूर्णतया बहिष्कार कर दिया गया, यहाँ तक कि सिक्ख मर्यादानुसार मृतकों का दाह–संस्कार करना भी कठिन हो गया। विरोधियों ने अनेकों प्रकार के षड्यंत्र रचने शुरू किए। नेतरसिंह नामी[9] एक व्यक्ति ने हुज़ूर महाराज पर वचन भंग की नालिश कर दी। अभियोग यह लगाया कि इन्होंने वचन दिया था कि मुझे परमात्मा का दर्शन करायेंगे। वह वायदा पूरा नहीं किया। हुज़ूर महाराज कचहरी गए और कहा, "परमात्मा इसके अंदर है। अंदर जाने का

9. उस व्यक्ति ने हुज़ूर महाराज के निधन के बाद आकर महाराज कृपाल सिंह जी से क्षमा माँग ली थी।

तरीक़ा इसे बताया था कि साधन, युक्ति, जो तुम्हें बताई है, उसका अभ्यास, कमाई करोगे, तो परमात्मा मिलेगा, मगर इसने कमाई नहीं की। इसलिए जो चीज़ मिली थी, वह भी गुम हो गई।" इस प्रकार शुरू में हुज़ूर को घोर विरोध का सामना करना पड़ा। सारी घटनाएँ तो यहाँ नहीं दे सकते, केवल सैयद कसराँ का वृत्तांत यहाँ देकर हम इस वृत्तांत को समाप्त करते हैं।

सैयद कसराँ में मुख़ालिफ़त

महाराज कृपाल सिंह जी की जन्मभूमि, सैयद कसराँ में महाराज कृपाल सिंह जी, सरदार जोधसिंह, सरदार प्रेमसिंह, सरदार दलीप. सिंह, सरदार बेअंतसिंह, मास्टर नानकसिंह, डॉक्टर हीरासिंह– यह चंद सत्संगी थे। वहाँ बड़ी मुख़ालिफ़त थी। महाराज कृपाल सिंह जी और हुज़ूर महाराज जी को अलग–अलग समय पर कट्टरपंथियों के तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा। महाराज कृपाल सिंह जी को गुरुद्वारे में बुलाया गया, जो खचाखच भरा हुआ था। उनसे सिक्ख धर्म के बारे में अपने विचार प्रकट करने को कहा गया। आपने इस विषय पर एक प्रभावशाली भाषण दिया, जिसको सुनकर सब संतुष्ट हो गए। इसके बाद प्रश्न पूछे गए, जिनका संतोषजनक उत्तर दे दिया गया। आपने सिक्ख भाइयों से कहा कि इस विषय पर और अधिक बातचीत करनी हो, तो आप पाँच–सात 'ज्ञानियों' को इकट्ठा करें, मैं भी वहाँ आ जाऊँगा। वहाँ बैठकर सारे मतभेद दूर कर लेंगे। अतः सरदार दलीपसिंह के मकान पर सब इकट्ठे हुए। परंतु इससे पहले गुरुद्वारे में बड़े गरमागरम भाषण हुए और ब्यास जाने वालों के बहिष्कार का 'गुरमता' पारित किया गया। वहाँ एक व्यक्ति[10] ने प्रण किया कि सरदार कृपाल सिंह जी को मारकर रोटी खाऊँगा। आपने यह बात सुनी, तो रात को अकेले ही घर से निकल पड़े और एक–एक के घर गए, परंतु किसी को प्रहार करने की हिम्मत नहीं हुई। तय की गई योजना के अनुसार उस रात कई 'ज्ञानी' सरदार दलीपसिंह के घर एकत्र हुए और उन्होंने अपनी भूल को स्वीकार किया।

---

10. वह व्यक्ति बाद में लाहौर आया, तो कृपाल सिंह जी उसे घर ले गए, खाना खिलाया। वह रो पड़ा। कहने लगा, हम आपके साथ यह सुलूक करें और आप हमसे क्या बर्ताव कर रहे हैं!

श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज भी एक बार सैयद कसराँ पधारे। हुज़ूर के आगमन के समय इतनी कड़ी मुख़ालिफ़त थी कि सारा सामान, नमक तक सौ मील दूर रावलपिंडी से लाना पड़ा। हुज़ूर महाराज प्रातः भ्रमण करके अपने निवासस्थान को, जहाँ उन्हें ठहराया गया था, लौट रहे थे, तो एक चौराहे पर खड़े हो गए, जहाँ से एक रास्ता गुरुद्वारे को निकलता था। महाराज कृपाल सिंह जी और उनके दोनों भाई, सरदार प्रेमसिंह व सरदार जोधसिंह हुज़ूर के साथ थे। हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह! चलो गुरुद्वारे हो आएँ।" सरदार प्रेमसिंह जी ने कहा, "हुज़ूर वहाँ बड़ी मुख़ालिफ़त है, आप गुरुद्वारे न जाएँ।" फ़रमाया, "नहीं चलो।" वो कुछ और कहने वाले थे कि महाराज कृपाल सिंह जी ने बड़े भाई से कान में कहा, "आपको हुज़ूर महाराज साधारण मानव दिखाई देते हैं?" गुरुद्वारे पहुँचे, तो वहाँ बड़ी भीड़ थी, छत पर ही नहीं आस–पास पेड़ों पर भी लोग चढ़े हुए थे।

संत मर्यादा पुरुषोत्तम होते हैं। हुज़ूर ने दरबार साहिब को मत्था टेका और सत्संगत के बीच में बैठ गए। सैयद कसराँ के स्कूल का हॅडमास्टर सरदार गोपालसिंह, जो विरोधियों का मुखिया था, उठकर कहने लगा, "हमने मन में धारण किया था कि यदि आप पूर्ण महात्मा हैं, तो बिन बुलाए गुरुद्वारे चले आयेंगे। वह धारणा हमारी पूरी हुई, हमारा संशय दूर हो गया। हमारे कुछ प्रश्न हैं, जिन पर हम आपके विचार जानना चाहते हैं। प्रश्न यह हैं :

1. आप कौन हैं?
2. आपका इष्ट कौन हैं?
3. आप क्या गुरु कहलाते हैं?

हुज़ूर महाराज ने खड़े होकर कहा, "मुझे बड़ी ख़ुशी है कि आज पहली बार मुझसे पूछा गया है कि मैं कौन हूँ। इसका जवाब यह है कि मैं सिक्ख हूँ। सब जन्म–मरण की मर्यादा सिक्ख मत के अनुसार है। कई गुरुद्वारों का मैं प्रधान रहा और कइयों का मंत्री।"

"दूसरे प्रश्न का उत्तर यह कि है कि मेरा इष्ट गुरुग्रंथ साहिब हैं, मगर गुरु ग्रंथ साहिब की वाणी एक और वाणी की ख़बर देती है, जो सारे जहान की गुरु है। मैं उसको गुरु मानता हूँ," और हुज़ूर ने गुरुवाणी की यह तुकें प्रमाण में प्रस्तुत कीं :

गुर की बाणी सभ माहि समाणी।। आपि सुणी तै आपि वखाणी।।
– आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1075)

और,

बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ।।
– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰35)

और,

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहब सिउ लिव लाई।।
– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰1, पृ॰634)

कथन जारी रखते हुए हुज़ूर ने फ़रमाया, "तीसरे सवाल का जवाब यह है कि मैं अपने को सत्संग का झाड़ूबरदार समझता हूँ। कोई मुझे कुछ कह ले, यह उसकी मर्ज़ी।"

हॅडमास्टर साहब विरोध करने के लिए खड़े हुए। कहने लगे, "पहली बात जो आपने कही, वह ठीक है। दूसरी बात जो कही, वह भी ठीक है।" लोगों ने कहा, आप अच्छे विरोध करने खड़े हुए हो, हरेक बात का समर्थन करते चले जा रहे हो।

वहाँ एक प्रचारक था, लालसिंह नाम था उसका। उसने उठकर कहा, "पूरे गुरु की शान हमने आज देखी है।" और उसने भाई नंदलाल की ग़ज़लें, जो उन्होंने दसम् गुरु साहिब (श्री गुरु गोबिंदसिंह जी महाराज) की महिमा में कहीं थीं, वो सब हुज़ूर महाराज की महिमा में गाकर सुनाईं। इस प्रकार हुज़ूर महाराज की तालीम छोटे गाँवों और शहरों में फैली।

गद्दी के लिए विरोध

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज फ़रमाते थे, "संत किसी स्थान से बंधे नहीं होते। जो भी मालिक के भेजे हुए महात्मा आते हैं, वो दुनिया को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं। जो लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए उनके पास जाते हैं, उनको वह बताते हैं कि तुम ऐसा करोगे, तो प्रभु को मिल सकोगे। दुनियादार लोग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ व्यापार का धंधा बना लेते हैं। जब ऐसी दौलत ज़्यादा इकट्ठी हो जाती है, तो उन्हीं से माया के पुजारी पैदा हो जाते हैं, जिनकी तृप्ति नहीं होती। ऐसी स्थिति बन जाए, तो महात्मा वहाँ से किनारा कर लेते हैं और वहाँ गद्दियाँ

और महंतियाँ चलती रहती हैं। फिर वहाँ परमार्थाभिलाषियों की आत्मा को शांति नहीं मिल सकती।"

थोड़े शब्दों में हुज़ूर महाराज ने बड़ी सरलता और स्पष्टता से अध्यात्म–प्रचार का संपूर्ण इतिहास वर्णन कर दिया है, जो अपने आपको दोहराता चला आ रहा है। महापुरुष प्रभु से जुड़ने की पूँजी लोगों को देते हैं, किंतु माया के पुजारी अध्यात्म की अक्षुण्ण निधि को छोड़कर वहाँ भी माया की ठीकरियाँ बटोरते रहते हैं। हुज़ूर महाराज के समय में ही इस चीज़ की बुनियाद पड़नी शुरू हो गई थी कि घर की गद्दी घर ही में रहे। हुज़ूर ने अपने परिवार को सांसारिक दृष्टि से बहुत कुछ दे रखा था, कोई कमी नहीं रहने दी थी, परंतु वह दिलों का हाल जानते थे। अतः भरे सत्संगों में उन्होंने कहा, "सत्संग के रुपए और जायदाद से मेरे परिवार का कोई संबंध नहीं।" स्वयं ही यह ऐलान नहीं किया वरन् अपने बेटों से भी सबके सामने हामी भरवा ली, उनके बेटों ने भी वही वचन सबके सामने दुहराए।

विरोध की नींव तो उसी दिन पड़ गई थी, जब हुज़ूर महाराज ने अध्यात्म संबंधी महत्त्वपूर्ण कार्य महाराज कृपाल सिंह जी को सौंपना शुरू कर दिया था और जब हुज़ूर ने, अपने होते हुए, दो सौ से अधिक नर–नारियों को इनसे 'नाम' दिलवाया, तब तो इस बारे में कोई संशय ही नहीं रहा कि उनका विशेष कृपापात्र, उनका गुरुमुख बेटा कौन है।

शिकायती चिट्ठियों का षड्यंत्र

एक षड्यंत्र इनके ख़िलाफ़ लिखी जाने वाली शिकायती चिट्ठियों का था। अधिकांश पत्र एक ही स्थान से लिखे जाते थे, परंतु विभिन्न स्थानों से डाक में डाल दिए जाते थे। डेरे में हुज़ूर महाराज के साथ बैठकर इनका सत्संग करना विरोधियों को असह्य हो गया था। अतः कुछ महीनों के लिए उन्होंने इनका वहाँ सत्संग करना भी रुकवा दिया। हुज़ूर महाराज से यह एकांत में मिल न पाएँ, उसके लिए यह व्यवस्था की गई कि हुज़ूर महराज से मिलने का समय इतने लोगों को दे दिया जाता कि इनके लिए समय न बचे।

उन दिनों आपने हुज़ूर महाराज के प्रेम और विरह–व्याकुलता में बेशुमार कविताएँ लिखीं। कविता कहने का क्रम तो पहले से शुरू था, पर उन दिनों तो बाढ़–सी आ गई थी नज़्मों और ग़ज़लों की। हुज़ूर बड़े चाव

से इनकी कविताओं को सुनते। जो व्यक्ति इनका संदेश लेकर जाता, हुज़ूर उससे पूछते, "कुछ लाए हो?" तात्पर्य इनकी नई कविता से होता। हुज़ूर बड़े शौक़ से इन नज़्मों को पढ़वाकर सुनते। कई बार सुनते–सुनते आँख भर आती। मुख़ालिफ़त के तूफ़ान में हृदय के भावों को प्रीतम के पास पहुँचाने का एकमात्र साधन यह कविताएँ ही तो थीं। हुज़ूर महाराज के निजी सेवक मियां शादी भी इन कविताओं को सुनकर आनंदविभोर हो जाते।

सरदार भगतसिंह जी ने देखा कि हुज़ूर इनकी कविताओं को बड़े चाव से सुनते हैं, तो उन्होंने पेशेवर कवियों से कविताएँ लिखवाना शुरू कर दिया, जिन्हें वे स्वयं गाकर या दूसरों से गवाकर सुनाया करते। असल और नकल में बड़ा अंतर होता है। कविता भावों का वर्णन है, दिल पर गुज़री हालतों की तस्वीर है। महाराज कृपाल सिंह जी ने एक तुक में असल और नक़ल के फ़र्क़ को बड़े सुंदर और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। फ़रमाते हैं:

कहां शे'र मेरे कहां मुद्दई के
वह हैं शोले-शोले यह हैं पानी-पानी

आपकी पद्य रचनाओं में यह अवस्था प्रायः दिखाई देती है, जिसका संकेत इस शे'र में छिपा है।

लोगों के घरों में न जाने का आदेश

उन्हीं दिनों की बात है। हुज़ूर मॉन्टगुमरी गए। वहाँ से लौटते समय रास्ते में कार ख़राब हो गई। बस में बैठकर लाहौर आए। इससे पहले ख़लीफ़ा नेमतराय के हाथ यह संदेश भेजा, कृपाल सिंह से कहो कि सत्संगघर के अतिरिक्त और कहीं न जाए। हुज़ूर लाहौर पधारे, तो इन्होंने जाकर निवेदन किया, "हुज़ूर आपका संदेश मिल गया था, कोई विशेष कारण है?" उस समय हुज़ूर ने यह वचन कहे, "कोई पिता अपने बच्चे की बदनामी नहीं सुन सकता।"[11]

जब हुज़ूर महाराज ने लोगों के घरों में जाने पर प्रतिबंध लगा दिया, तो इन्हें बड़ा आराम हो गया, परंतु लोगों को, दीन–दुखियों अथवा रोगियों को इनसे जो लाभ मिलता था, वह बंद हो गया। वे हुज़ूर के पास पहुँचे और प्रार्थना की कि महाराज कृपाल सिंह जी को लोगों के घरों में जाने की छूट दे दें। हुज़ूर ने फ़रमाया, "नहीं, वह कहीं नहीं जाएगा।" वे लोगों के घरों

से होते हुए रात को नौ–नौ, दस–दस बजे घर पहुँचते थे, अब दफ़्तर से सीधे घर चले जाते। सत्संग हुआ, तो सत्संगघर जाकर प्रवचन कर आए, और बस। सारा समय बच गया। गुरु–आज्ञा पालन में सारा भेद है। महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं, "पिता की ख़ुशी उस बच्चे को मिलती है, जो हुक्म मानता है।" इसका प्रत्यक्ष स्वरूप उस समय दिखाई देता था, जब यह हुज़ूर महाराज के दर्शन कर रहे होते। एक व्यक्ति इस प्रेम–मिलन का दृश्य देखकर इनसे कहने लगा, "क्या बात है कि जब आप आते हैं, तो हुज़ूर का चेहरा ख़ुशी से लाल हो जाता है, दमक उठता है और ख़ुशी की किरणें चारों ओर बिखरती मालूम होती हैं।"

परीक्षा की घड़ियाँ

महाराज कृपाल सिंह फ़रमाया करते थे कि गुरु शिष्य की पूरी परीक्षा लेता है। इस संदर्भ में कई दृष्टांत आपके जीवन में मिलते हैं। एक बार गुरु दर्शन की प्यास बुझाने के लिए यह हुज़ूर महाराज के निवास–स्थान की छत पर जा खड़े हुए कि संभवतः कोई झलक सत्गुरु दयाल की मिल जाए। गर्मियों का मौसम था। नीचे ईंटों का फ़र्श तप रहा था, ऊपर आसमान से आग बरस रही थी। खड़े–खड़े सुबह से शाम हो गई, पर कुछ ऐसा विधान बना कि हुज़ूर कमरे से न निकल सके। शाम को बाहर निकले, सत्संगीजनों को, जो दर्शन करके वापस जाने को खड़े थे, प्रसाद दिया। इनको संबोधित कर कहने लगे, "कृपाल सिंह! प्रसाद ले ले।" उस समय इन्होंने यह नज़्म लिखकर हुज़ूर की सेवा में भेजी।

दुनिया रही दुनिया हमें पूछा न ख़ुदा ने

---

11. इन प्रेम–विभोर शब्दों में आपके लिए कितनी खुशियाँ भरी हुई थीं! 'पिता' और 'बच्चे' के शब्द बहुत सारयुक्त हैं। विशेषकर, उस परिस्थिति में हुज़ूर महाराज के 'बिन्दी पुत्रों' अर्थात उनकी संतान की ओर से नाना प्रकार के आरोप लगाए जा रहे थे। महाराज कृपाल सिंह जी हुज़ूर महाराज के कितने निकट थे, इसके बारे में उन्होंने अपने मुखारबिंद से कई सारगर्भित संकेत दिए। एक बार फ़रमाया? "कृपाल सिंह की रक्षा मैं इस तरह करता हूँ, जैसे कोई पिता अपनी कुआँरी कन्या की रक्षा करता है।" इसी प्रकार का एक और संकेत उन्होंने दिया, जब पंडित फ़कीरचंद जी ने पूछा कि अपने दो–चार ऐसे शिष्यों के नाम बताएँ, जिन्होंने आत्म–विद्या को समझा है। हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह," कुछ देर तक सोचते रहे, फिर वही नाम दुहरा दिया।

हुज़ूर महाराज ने कविता सुनी। फ़रमाया, "मैं हर वक़्त उसकी संभाल (रक्षा) कर रहा हूँ।" जनसाधारण इस अवस्था को क्या जान सकते हैं? यहाँ आँखों–आँखों का मामला था, आँखों–आँखों की बातचीत थी।

वह सारे दस्तनिगर तेरे, हम तो हैं चश्मनिगर तेरे
कर एक नज़र इनआम कि साकी रात गुज़रने वाली है

"वह याचक जिनकी नज़र तेरे हाथों पर है कि तेरे हाथों क्या मिलने वाला है। वह याचक जो तेरी आँखों को देखते हैं, दया–दृष्टि के प्रसाद के लिए, उस चीज़ के लिए जो आँख–आँख को दे जाती है।"

यहाँ दयामेहर की एक नज़र का सवाल था। गद्दी–पत्ती की अभिलाषा रखने वाले क्या जानें, यह किस चीज़ के याचक थे। महाराज कृपाल सिंह जी ने किसी से बात नहीं की कि उन पर क्या बीत रही है। अपने बड़े भाई सरदार जोधसिंह जी से भी कुछ नहीं कहा। इनका दृष्टिकोण यह था कि ख़ुदा की शिकायत ख़ुदा के रसूल से, प्रभु की शिकायत प्रभु–प्राप्त महात्मा से भी क्यों की जाए? अतः न तो हुज़ूर महाराज से बात करने का समय लिया, न किसी और से कुछ कहा। हुज़ूर उन दिनों डलहौज़ी गए हुए थे। सरदार जोधसिंह वहाँ जा रहे थे। बड़े भाई से आपने केवल इतना कहा कि आप डलहौज़ी जाएँ, तो अपनी ओर से हुज़ूर महाराज से पूछें कि मुझसे जाने या अनजाने में कोई भूल तो नहीं हुई?

सरदार जोधसिंह डलहौजी गए, तो हुज़ूर महाराज से अकेले में पूछा। हुज़ूर ने फ़रमाया, "न तो जाने, न अनजाने में कोई ग़लती उसने की है। किंतु मैं इस बात पर हैरान हूँ कि इस आदमी के सिर से ढेरों पानी गुज़र गया, एक बार भी इसने आकर मुझसे यह नहीं कहा कि बात ऐसी है, ऐसी नहीं।" सरदार जोधसिंह ने डलहौज़ी से वापस आकर यह बात इन्हें बताई और कहा कि आप हुज़ूर महाराज जी से ज़रूर मिलें। अतः जब हुज़ूर डलहौज़ी से वापस डेरा पहुँचे, तो यह हुज़ूर के पास गए। रात का वक़्त था, विनती की, "हुज़ूर दो–चार मिनट समय लेना चाहता हूँ।" फ़रमाया, "ज़रूर समय देंगे।" हुज़ूर ने सारे दरवाज़े बंद करा दिए। अकेले में समय दिया। इन्होंने हाथ जोड़ निवेदन किया, "हुज़ूर मैं अपनी सफ़ाई पेश करने नहीं आया। सिर्फ़ यह बताने आया हूँ कि मैं इसलिए आपके पास नहीं आया था, क्योंकि आप अंतर में बैठे मेरी हर बात देख रहे हैं। इस समय जो मनःस्थिति है, मन की जो अवस्था

है और आगे विचार–प्रवाह की जो दिशा है, उसको भी आप जानने वाले हैं।" बस इतनी बात ने पासा पलट दिया। विरोधी दल के एक–एक मुखिया का नाम लेकर हुज़ूर ने कहा, बुलाओ उसको और भर्त्सना की। आपने हाथ बाँध के विनती की, हुज़ूर मैं इस आशय से आपके पास नहीं आया।

अगले दिन सत्संग हुआ। नियमानुसार यह पिछली पंक्ति में बैठे थे। हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह! आगे आओ, सत्संग करो।" विरोधी जो नीचे बैठे थे, कहने लगे, नहीं हुज़ूर, हम तो आपका सत्संग सुनेंगे। उनके बार–बार ज़ोर देने पर भी हुज़ूर ने फ़रमाया, नहीं, कृपाल सिंह ही सत्संग करेगा और इन्हीं से सत्संग करवाया। जब भी यह डेरा ब्यास जाते, हुज़ूर महाराज अपने पास बिठाकर इन्हीं से सत्संग करवाते थे।

माँगे का उजाला

विरोधी इनकी मुख़ालिफ़त की धुन में कई बार विचित्र हरक़तें कर बैठते थे। हुज़ूर महाराज के पोते, सरदार चरनसिंह का विवाह था। राव शिवध्यानसिंह की लड़की के साथ रिश्ता तय हुआ। बारात उनकी जागीर पुसावा गई। बड़ी धूमधाम से शादी हुई। हुज़ूर महाराज ने महाराज कृपाल सिंह जी को 'लांवाँ' के बाद कुछ कहने का आदेश दिया। सरदार भगतसिंह जी भी वहाँ मौजूद थे। कहने लगे, आपस में सलाह करके मज़मून तैयार कर लेंगे। सरदार भगतसिंह ने बाद में इनसे पूछा, आपने क्या मज़मून सोचा है? इन्होंने पूरे विस्तार के साथ मज़मून उनको समझा दिया।

अगले दिन 'लांवाँ' के समय हुज़ूर महाराज ने इनकी ओर देखा, तो सरदार भगतसिंह कहने लगे, मैंने मज़मून तैयार कर लिया है, पहले मैं शुरू करता हूँ। भगतसिंह इनकी बताई हुई लाइनों पर तैयार किया हुआ भाषण पढ़ने लगे, परंतु आगे चलकर उलझ गए क्योंकि विषय की पूरी जानकारी उन्हें नहीं थी, दूसरे के मज़मून पर कितनी देर चलते! महाराज कृपाल सिंह जी ने बहुत कोशिश की कि सरदार भगतसिंह से आँख मिले, तो उन्हें इशारा दें, पर वह आँख ही न मिलाएँ (मिलाते, तो वह दुर्घटना न होती, जो बाद में हुई) बोलते–बोलते सहसा बेहोश होकर गिर पड़े और चार भाई उन्हें उठाकर ले गए। महाराज कृपाल सिंह जी जब उनसे मिलने गए, तो रोकर कहने लगे, मुझसे भूल हुई, मुझे क्षमा कर दो।

विदेश में प्रचार

हुज़ूर महाराज के दिव्य प्रसाद का, आत्म–ज्ञान के प्रचार–प्रसार का सिलसिला समुद्र पार देशों में भी फैला। पूर्व से पश्चिम तक, संसार के सभी देशों में 'नाम' की जो वर्षा हो रही है, उसकी शुरूआत हुज़ूर के समय में हो गई थी। अमरीका में डॉक्टर ब्रॉक पहला विदेशी था, जिसने वहाँ प्रचार शुरू किया। प्रचार कैसे शुरू हुआ? हुज़ूर महाराज के एक सत्संगी, भाई केहरसिंह अमरीका गए। गुरु देह नहीं, वह देह में क़ैद नहीं होता, एक समय में कई जगह काम करता है। तो केहरसिंह वहाँ हुज़ूर महाराज के बारे में बातचीत करते थे। एक दिन वो हुज़ूर की शिक्षा के बारे में लोगों को बता रहे थे, तो वहाँ एक अमरीकन महिला बैठी थी, जिसकी अंतर्दृष्टि खुली हुई थी। केहरसिंह बात कर रहे थे, तो उस महिला ने एक दिव्य–स्वरूप को उसके पीछे खड़े देखा– भव्य ज्योतिर्मय आकृति, दुग्ध–धवल दाढ़ी, मनमोहन स्वरूप! "तुम्हारे पीछे यह कौन खड़ा है?" उसने केहरसिंह से पूछा और उस स्वरूप का वर्णन किया। भाई केहरसिंह कहने लगे, "वो मेरे गुरु महाराज हैं।"

इस तरह अमरीका में प्रचार आरंभ हुआ। डॉक्टर ब्रॉक पहला अमरी. कन था, जो वहाँ प्रचार के लिए नियुक्त हुआ। फिर विभिन्न देशों से लोग आते रहे। वाइसरॉय के स्टाफ़ के कर्नल सॉन्डर्स साहब, मिस्टर मायर्स, डॉक्टर जॉनसन (जो डेरे में हुज़ूर के चरणों में आए और वहीं डेरे डाल दिए), बड़े सिद्धहस्त सर्जन थे, डेरे में कई सफल ऑपरेशन उन्होंने किए। कई पुस्तकें लिखीं जिनका ज़िक्र आगे आएगा। पंजाब के फ़ाइनांशियल कमिशनर मिस्टर गॉरबेट आदि स्विट्ज़रलैंड के डॉक्टर शिमट, अमरीका के डॉक्टर स्टोन प्रमुख व्यक्ति थे, जिन्होंने हुज़ूर से नाम लिया, और भी बहुत लोग थे।

विदेश से पत्र–व्यवहार का सिलसिला हुज़ूर महाराज के समय में शुरू हो चुका था। अध्यात्म संबंधी पत्र, जो अंतरीय अनुभव के बारे में होते, उनका उत्तर देने का कार्यभार हुज़ूर ने इन्हें (कृपाल सिंह जी को) सौंप रखा था। ऐसी चिट्ठियाँ हुज़ूर अपने पास रख छोड़ते थे[12], जब यह डेरे आते, तो इन्हें सौंप देते। पश्चिम के लोग अंधविश्वासी नहीं होते। उन पर कोई बात ठूंसी नहीं जा सकती। बड़े टेढ़े सवाल वह करते हैं, जिनका

उत्तर देना कोरे वाचक ज्ञानियों का काम नहीं। हुज़ूर बुद्धि के पहलवानों को, जो थोड़ी बातों[13] से नहीं समझ सकते, इनके पास भेज देते थे। इस प्रसंग में डॉक्टर श्मिट की पत्नी का वृत्तांत उल्लेखनीय है। डॉक्टर श्मिट अपनी जीवनसंगिनी को 'नाम' दिलवाने डेरा ब्यास लाए। उनकी तीव्र अभिलाषा थी कि पत्नी को 'नाम' मिल जाए, किंतु वह पूरी तसल्ली किए बिना 'नाम' लेने को तैयार नहीं थीं। डेरे में सरदार भगतसिंह, सरदार बहादुर जगतसिंह, प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल आदि से उसने बात की, पर कोई उसे कायल न कर सका।

हुज़ूर ने कृपाल सिंह जी से कहा कि वो दफ़्तर से एक सप्ताह का अवकाश ले लें, उसे समझाने के लिए। ये छुट्टी लेकर डेरा पहुँचे। डॉक्टर श्मिट ने इनसे प्रार्थना की कि आप मेरी धर्मपत्नी को समझाएँ कि वे 'नाम' ले ले। महाराज कृपाल सिंह जी ने मिसेज़ श्मिट से बात करते समय डॉ. श्मिट को भी पास बिठा लिया। मिसेज़ श्मिट ने पूछा, "What has brought you to the Dera?" अर्थात क्या चीज़ थी जो तुम्हें यहाँ डेरे में लाई? बड़ा स्पष्ट परंतु मौलिक प्रश्न था। संतों के दरबार में जाने वालों में से भी कितने हैं, जो इस प्रश्न का सही उत्तर दे सकते हैं? वहीं देंगे, जिन्होंने अध्यात्म की

---

12. एक बार महाराज कृपाल सिंह जी दो महीने की छुट्टी लेकर ऋषिकेश चले गए। वहाँ दो महीने का किराया पेशग़ी देकर एक मकान ले लिया कि बैठकर भजन करेंगे। उधर डेरे में हुज़ूर महाराज ने दो–तीन पत्रों के बारे में हिदायत की कि इन्हें रख छोड़ें, सरदार कृपाल सिंह जी एक–दो दिन में आयेंगे, उन्हें जवाब देने के लिए सौंप देना। लोगों ने कहा, वह तो दो महीने के लिए ऋषिकेश गए हुए हैं। हुज़ूर ने फ़रमाया, वह आ जाएगा। इधर ऋषिकेश में यह भजन में बैठे, तो हुज़ूर ने अंतर दिव्य–स्वरूप में आदेश दिया कि तत्काल डेरे चले आओ। आप उसी समय वहाँ से डेरा ब्यास चल दिए। मकान वाले ने पूछा आपने दो मास यहाँ ठहरना था। फ़रमाया, कुछ ऐसी ही बात है। अगले दिन डेरे के प्रबंधक इन्हें वहाँ देख चकित रह गए।

---

13. हुज़ूर महाराज फ़रमाया करते थे, "थोड़ी बातों से समझना हो, तो मेरे पास आओ, ज़्यादा बातों से समझना हो, तो कृपाल सिंह के पास जाओ। वह बंदूक के एक–एक पुर्ज़े को अलग–अलग करके और फिर दुबारा जोड़कर तुम्हें दिखा देगा।" चंद शब्दों में हुज़ूर ने इनके सत्संग की विशेषता का वर्णन कर दिया। विषय के एक–एक पहलू का सुविस्तार स्पष्टिकरण मन–शुद्धि के सारे मैदान पर हावी होर बात करना, फिर एस विषय के सारे पहलुओं और अलग–अलग अंशों को जोड़कर सुगठित रूप में प्रस्तुत करना– यह बंदूक के पुर्ज़ों को अलग–अलग करके और दोबारा जोड़कर दिखाना ही तो है।

उस निधि को पाया है, जो संतों से मिलती है। उनकी बात में सार भी होता है, असर भी। महाराज कृपाल सिंह जी ने खोलकर समझाया, तो वो बोली, "This is exactly what I want," कि मैं भी यही चीज़ चाहती हूँ।

दूसरा प्रश्न ज़्यादा टेढ़ा नहीं था। वह कहने लगी, "मेरे सूफ़ी गुरु हैं यूरोप में, उसमें मैं ज़्यादा आकर्षण महसूस करती हूँ। हुज़ूर महाराज में वह आकर्षण मैं क्यों नहीं पाती?" महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "मेरी ओर देखो।" आँखें चार हुईं। कहने लगे, मैं जो चाहूँ, वही बात तुम कहोगी। क्या तुम मेरी बात काट सकती हो?" उसने कहा, "नहीं।" आपने उसे समझाया, "तुम्हारा सूफ़ी गुरु तुम पर मानसिक शक्ति का प्रभाव डालता था, जिसका उदाहरण तुमने अभी देखा। संतों का यह क़ायदा नहीं। उनका प्रेम का मार्ग है। वह किसी पर दबाव नहीं डालते, सबको निर्णय करने के लिए खुला छोड़ देते हैं। आज तुम सत्संग में जाओ, तो एक काम करो। सब तरफ़ से चित्त–वृत्तियाँ हटाकर एकाग्रचित्त दर्शन करो, हुज़ूर की आँखों में देखती रहो। भाषा तुम समझती नहीं, जिसमें वो प्रवचन करते हैं। परंतु सत्संग–मंडल में केवल जबानी सत्संग नहीं होता, वहाँ radiation होती है, धारा चलती है, आत्मरस की। अध्यात्म–निधि आँखों के द्वारा दी जाती है।"

मिसेज शिमट गईं, सत्संग सुना। इनके आदेशानुसार अपलक नेत्रों से एकाग्रचित्त दर्शन करती रहीं। सत्संग से लौटीं तो महाराज कृपाल सिंह जी ने पूछा, "How did you find the Master today?" अर्थात! हुज़ूर आज तुम्हें कैसे लगे? बोली, "He was very attractive, very fascinating," कि उनमें बड़ा आकर्षण था, बड़े सुंदर लग रहे थे।

साहित्य रचना व प्रकाशन

हुज़ूर महाराज के समय में परमार्थ साहित्य में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई। सबसे बड़ा ग्रंथ, जो उस ज़माने में छपा, 'गुरुमत सिद्धांत' है, जिसे हुज़ूर महाराज के हुक्म पर महाराज कृपाल सिंह जी ने लिखा। इस महान ग्रंथ के दो भाग हुज़ूर के समय में छपे। तीसरे भाग के कई मज़मून, जो हुज़ूर ने पहले भागों की तरह सुने और स्वीकार किए, महाराज कृपाल सिंह जी के पास मौजूद थे। इस महान ग्रंथ के अतिरिक्त, कई और पुस्तकें लिखी गईं। साहित्य–रचना का जो कार्य उन दिनों हुआ, उसके पीछे संत कृपाल सिंह जी महाराज का हाथ था।

डॉक्टर जॉनसन ने 'Path of the Masters' ('संतों की शिक्षा') लिखी, जिसमें विश्व के प्रमुख धर्मों का विवेचन करते हुए संत–मत की श्रेष्ठता व्यक्त करने का प्रयत्न किया। इस पुस्तक की पांडुलिपि हुज़ूर महाराज की सेवा में प्रस्तुत की गई, तो उन्होंने उसकी तीन नकलें करवाकर एक सरदार बहादुर जगतसिंह, एक प्रोफ़ेसर जगमोहनलाल और एक महाराज कृपाल सिंह को पढ़ने के लिए दी कि इनमें कोई ऐसी बात तो नहीं लिखी, जो संतों की शिक्षा के विरुद्ध हो। प्रोफेसर जगमोहनलाल जी तो पांडुलिपि लेकर बैठ गए, न वापस की, न पढ़कर कोई विचार प्रकट किया। सरदार बहादुर जी ने पाँच–सात पृष्ठ पढ़ने के बाद कई एतराज़ किए, जिन्हें डॉक्टर जॉनसन ने स्वीकार नहीं किया।

महाराज कृपाल सिंह जी ने पांडुलिपि पढ़ी, तो उसमें कई त्रुटियाँ पाईं। सबसे बड़ा दोष यह था कि वो एक मिशनरी के दृष्टिकोण से लिखी गई थी। उसमें हरेक धर्म और मज़हब के बारे में लिखा था कि हिंदू नहीं जानते, मुसलमान नहीं जानते, ईसाई नहीं जानते आदि। संतों की शिक्षा के बारे में भी विचित्र बातें लिखी हुई थीं, जैसे दिव्य–मंडलों में हरेक मंडल का अपना धर्मराज है, जो कर्मानुसार फल देता है। महाराज कृपाल सिंह जी ने यह सारी बातें हुज़ूर की सेवा में प्रस्तुत कीं। हुज़ूर ने फ़रमाया, उसे जाकर समझा दो। यह गए और डॉक्टर जॉनसन से कहा, "I quite appreciate your splendid efforts in bringing out this manuscript. It appears you are not in the know of things, that is why you were unable to do full justice to the work," अर्थात "आपने यह किताब लिखकर बड़ा भारी काम किया है, किंतु पूरी जानकारी न होने से आप विषय से पूरा न्याय नहीं कर सके।" डॉक्टर जॉनसन ने कहा, "आप बताएँ, मैं आपका आभारी रहूँगा।"

महाराज कृपाल सिंह जी ने संत–मत के पक्ष में हिंदू धर्म, सिक्ख मत और इस्लाम के ग्रंथों से उद्धरण एकत्र करके डॉक्टर जॉनसन को दिए। आपके सुझावों के प्रकाश में डॉक्टर जॉनसन ने सारी किताब को दोबारा लिखा। ईसाइयत के बारे में डॉक्टर जॉनसन ने जो कुछ लिखा था, उस पर महाराज कृपाल सिंह जी ने उनसे कहा, "आपने ईसाइयत के बारे में बड़ा कठोर लहज़ा बरता है, कृपया इसे ठीक कीजिए।" डॉक्टर जॉनसन नहीं माने। कहने लगे, "मेरे पश्चिमी भाइयों को होश नहीं आएगा, यदि मैं

यह लहज़ा न बरतूँ।" यही कारण है कि पश्चिम में लोग डॉक्टर जॉनसन की पुस्तक के इस प्रकरण को पसंद नहीं करते।

डॉक्टर जॉनसन के देहावसान के बाद डॉक्टर श्मिट ने उपरोक्त पुस्तक की भूमिका लिखकर भेजी। सरदार बहादुर जगतसिंह और प्रोफ़ेसर जगमोहन लाल ने पढ़कर स्वीकृति दे दी। परंतु महाराज कृपाल सिंह जी ने उसमें तीन पृष्ठ और लिखकर जोड़ दिए, जिनमें सत्संग, सत्गुरु और सत्नाम की व्याख्या की गई थी। ख़ास बात उन्होंने यह लिखी कि पूरा गुरु अध्यात्म की निधि इस तरह दे सकता है, जैसे किसी की झोली मे फल डाल दिया जाए।

उन दिनों 'शब्द' या 'नाद' की महिमा पर गुरुवाणी सें तुकें इकट्ठी करके लगभग सौ पृष्ठ की एक पुस्तिका छापी गई थी। हुज़ूर महाराज ने कृपाल सिंह जी को आदेश दिया कि इन तुकों को सुविस्तार व्याख्या से बयान कर दो। महाराज कृपाल सिंह जी ने ग्रंथ साहिब का अध्ययन करके विभिन्न विषयों पर और पद इकट्ठे करके उसमें जोड़ दिए और उस पुस्तिका का नए सिरे से संकलन किया, जो दो हज़ार पृष्ठों में है। यह पुस्तक आजकल नए परिवर्धित स्वरूप में चल रही है। इसी विषय पर उन दिनों महाराज कृपाल सिंह जी ने 'Inner Voice' के नाम एक प्रामाणिक ग्रंथ की रचना की, जिसका digest (संक्षिप्त सार) कर्नल सॉन्डर्स के नाम से प्रकाशित किया गया है।

लाला नारायणदास जी 'रिंद' (इस पुस्तक के लेखक के पूज्य पिता) ने महाराज कृपाल सिंह जी के आदेश पर 'Sant Mat and the Bible' (संत–मत और बाइबिल) के नाम से एक पुस्तक अंग्रेज़ी भाषा में लिखी, जिसमें संत–मत और बाइबिल की शिक्षा पर समान विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने दो और पुस्तकें– ख़्वाजा हाफ़िज़ और शम्स तबरेज़ की वाणी का विषयानुसार चुनाव, उर्दू में अनुवाद करके प्रकाशित कीं। इन किताबों को लिखते समय महाराज कृपाल सिंह के साहित्यिक मार्ग–निर्देशन के अलावा उनकी सोहबत–संगति का भी लाभ उठाया। डॉक्टर जॉनसन की तरह उन्होंने पूरी किताब लिखने के बाद मशवरा नहीं लिया, वरन् जितने पृष्ठ वह लिखते, महाराज कृपाल सिंह जी को सुनाकर उनकी स्वीकृति लेने के लिए उनके निवास–स्थान पर ले जाते थे।

महर्षि शिवब्रतलाल वर्मन की किताबें

महर्षि शिवब्रतलाल वर्मन जी ने संत–मत के प्रचार में साहित्य प्रकाशन के सिलसिले में बड़ा काम किया है। उनका हुज़ूर महाराज से बड़ा प्यार[14] था। महाराज कृपाल सिंह जी नम्रता के प्रसंग में एक मुलाक़ात का अनुपम दृष्टांत देते हैं, जब यह दो महापुरुष पहली बार परी–महल लाहौर में मिले। हुज़ूर महाराज महर्षि जी के चरणों में पड़े, महर्षि जी हुज़ूर के चरणों में– कुछ समय यही होता रहा। महर्षि जी डेरा ब्यास आकर अक्सर ठहरते रहे। डेरे में अपने निवास के दौरान संत–मत के बारे में तीन पुस्तकें लिखकर पांडुलिपियाँ हुज़ूर महाराज की सेवा में ले गए और प्रार्थना की कि हुज़ूर उन्हें अपने नाम से छपवा दें। हुज़ूर ने यह पांडुलिपियाँ महाराज कृपाल सिंह जी को पढ़ने को दीं। पढ़ने के बाद उन्होंने निवेदन किया कि इन पुस्तकों में एक विशेष मत की छाप है, संतों की शिक्षा तो सार्वभौम है। अतः वह पांडुलिपियाँ वहीं पड़ी रही और कुछ समय पश्चात किसी अन्य स्थान पर उनके छपवाने का प्रबंध हो गया और वह वापस लौटा दी गईं।

इन पुस्तकों के बारे में महर्षि जी और हुज़ूर महाराज के दरम्यान बड़ी दिलचस्प बातचीत हुई। हुज़ूर ने तीनों पांडुलिपियाँ अपने हाथ में लीं, महाराज कृपाल सिंह जी को साथ लिया और लाला राजाराम के मकान पर गए जहाँ महर्षि जी ठहरे हुए थे। हुज़ूर ने जाते ही उनसे कहा, "महर्षि जी, 'राधास्वामी' शब्द को लोग पसंद नहीं करते। क्या ही अच्छा हो कि इस शब्द के स्थान पर कोई अन्य नाम दे दिया जाए, क्योंकि संतों की शिक्षा विश्वव्यापी है।" महर्षि जी ने कहा, "यह मेरे गुरु का नाम है, मैं इसे बदल नहीं सकता।" बातचीत हुई। महर्षि जी ने महाराज जी से कहा, "आप अपनी वाणी क्यों नहीं रचते?" हुज़ूर ने कहा, "चाचा प्रतापसिंह जी ने कहा था, आप वाणी न रचें।" इस पर महर्षि जी कहने लगे कि सत्संग–प्रवचन, जो आप करते हैं, यह वाणी ही तो है। संभवतः आपको कोई भय है। हुज़ूर ने महाराज कृपाल सिंह जी की ओर देखा। उन्होंने उत्तर में कहा, "हुज़ूर को

---

14. आगरे वालों ने जब हुज़ूर की मुखालिफ़त की, तो महर्षि शिवब्रतलाल जी ने जवाब में 'रमता राम' के नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसमें "दूध का दूध, पानी का पानी" के शीर्षक के अंतर्गत धारावाही लेख लिखे। दो–चार लेख ही निकले थे कि आगरे वालों ने मुखालिफ़त छोड़ दी।

कोई भय नहीं। पंजाब में इतना तीव्र विरोध होते हुए भी उन्होंने संतों की शिक्षा का प्रचार–प्रसार किया है। उनको किसी भी बात का कोई भय नहीं है। वाणी हुज़ूर इसलिए नहीं रचते कि यह वाणी भी लोग धर्मग्रंथ की तरह पूजने न लग जाएँ।" महर्षि जी सरदार कृपाल सिंह जी को संबोधन करके कहने लगे, "अरे भाई, तुम कौन हो रीति–रिवाज़ को मिटाने वाले?" महाराज कृपाल सिंह जी ने विनम्र भाव से उत्तर दिया, "संत अपने जीवनकाल में कोई ऐसी बात नहीं करते, जो रस्म बन जाए। उनके पीछे यदि रीति–रिवाज़ बन जाएँ, तो बन जाएँ।"

'गुरुमत सिद्धांत' का प्रकाशन

वर्तमान समय का महान धर्मग्रंथ 'गुरुमत सिद्धांत', जिसे महाराज कृपाल सिंह जी ने हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की आज्ञा से लिखा और जिसका एक–एक वाक्य हुज़ूर महाराज ने स्वयं सुनकर अपनी स्वीकृति प्रदान की, बड़े आकार के 2000 पृष्ठों पर फैला हुआ है। इसके दो भाग हैं। पहले भाग में 900 पृष्ठ हैं। उसमें संतों की शिक्षा ही को नहीं वरन् सारे प्रभु–प्राप्त महापुरुषों की शिक्षा को सिद्धांत रूप में प्रस्तुत किया गया है। दूसरा भाग, जो 1100 पृष्ठों का है, साधन–अभ्यास के संबंध में है और इस विषय पर सारगर्भित तत्त्वपूर्ण बातें और परमार्थ के संदर्भ में आवश्यक आदेश दिए गए हैं। इस महान ग्रंथ में विश्व के प्रमुख धर्मों और मतों का सार प्रस्तुत किया गया है। अलग–अलग विषयों को लेकर गुरुग्रंथ साहिब और अन्य धर्मग्रंथों के प्रमाण देकर उनकी सुविस्तार व्याख्या की गई है। अध्यात्म के विभिन्न विषयों– शब्द या नाम, गुरु का महत्त्व, प्रेम और और मस्ती, भजन–सुमिरन, साधु–संग, संतोष, अजपा जाप अथवा अकथ कथा, अमृत, हरिमंदिर, सेवा, नश्वर व अनश्वर, 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति', हरि इच्छा समर्पण, असार संसार, 'मूतु कबल अन्नमूतु' अर्थात जीवित–मृतक अवस्था या समाधि, आत्मा–परमात्मा का स्वरूप और उनके मिलाप का साधन आदि पर प्रकाश डाला गया है। सभी विषय अपने आप में संपूर्ण हैं और अनुभवी महापुरुषों की उक्तियाँ और धर्मग्रंथों के उद्धरण देकर विषय का सुरुचिपूर्ण ढंग से पूर्णतया स्पष्टिकरण किया गया है।

यह अध्यात्म संबंधी विषयों का विलक्षण हृदयस्पर्शी संकलन है। कहीं प्रेम का सागर ठाठें मार रहा है, कहीं प्रभु–वियोग में प्रेमातुर आत्मा का विरह गान है और कहीं आत्म–रस–भीनी हृदय वीणा की उल्लसित झंकार सुनाई देती है। कहीं क्रूर काल के आगे विवशता का रोना है, तो कहीं प्रेम के बीहड़ मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन है। कहीं जीवन सुरा पिलाने वाले आदि साक़ी के परम उपकारों का शुक्राना है, तो कहीं बेज़बानी की ज़बान और बेनिशानी के निशान पर पूरी बहस की गई है। एक स्थान पर सदाचरण की मोटी–मोटी बातों की व्याख्या मानव धर्म के सिद्धांतों का जीवंत स्वरूप प्रस्तुत कर रही है, तो दूसरे स्थान पर अंतर के गुप्त भेद सरल, सुगठित भाषा में व्यक्त किए गए हैं और चित्तवृत्तियों के निरोध, इंद्रिय दमन और साधना का आदेश दिया गया है। वास्तव में यह महान ग्रंथ अध्यात्म के अपार सागर में रोशनी का मीनार है, जिसके प्रकाश में आत्मा–परमात्मा के मिलन के मार्ग की सारी वेदना और उन्मादपूर्ण स्थितियाँ अपने वास्तविक स्वरूप में उजागर होने लगती हैं। इस ग्रंथ की बड़ी ख़ूबी यह है कि यह कुदरती रौ में, धारावाही प्रवाह में लिखी गई है। वर्णन शैली सरल, सुगठित, सारगर्भित, हृदयस्पर्शी और सुरुचिपूर्ण है। तर्क युक्तियुक्त और बोधगम्य, विचार–श्रेष्ठतम और अध्यात्म की अमर–जीवन धारा से आप्लावित हैं। वाणी पर संपूर्ण अधिकार और शैली के अटूट धारावाही प्रवाह का विलक्षण संयोग इस बात की गवाही देता है कि लेखक ने अंतरात्मा के रहस्योद्‌घाटन का व्यक्तिगत अनुभव पाया है। पंजाबी भाषा आठ सौ वर्षीय इतिहास में ऐसी किताबें नहीं लिखी गईं। आत्म–विद्या के इस अनमोल भंडार ने हुज़ूर महाराज के जीवनकाल में ही बहुत लोकप्रियता और ख्याति प्राप्ति की।

इस दुर्लभ ग्रंथ की शुरूआत एक छोटी–सी पुस्तिका से हुई, जो डेरे में मोटे अक्षरों में छपी हुई मिलती थी। उसमें गुरुवाणी की तुकों को छाँटकर चंद अलग–अलग विषयों के अंतर्गत उन्हें प्रस्तुत किया गया था। इन तुकों की कोई व्याख्या आदि नहीं की गई थी, न कोई प्रमाण ही प्रस्तुत किए गए थे। हुज़ूर ने वह पुस्तक महाराज कृपाल सिंह जी को दी कि उसकी पूर्णतम व्याख्या करके छपवा दें। उनके आदेश की पूर्ति के परिणामस्वरूप दो हज़ार पृष्ठों का यह महान ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित हुआ, जो 'गुरुमत सिद्धांत' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गुरु ग्रंथ साहिब के वह मज़मून, जो

उस छोटी–सी पुस्तिका में थे और अन्य सारे मज़मून, जो उसमें नहीं थे, अलग–अलग देकर उनका विषयानुसार विस्तृत वर्णन करके विश्व के सारे धर्मग्रंथों की वाणियों से प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है।

अदृश्य हाथों का लेखन

महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं कि इस ग्रंथ को लिखते समय कलम आपसे आप चलता था। ज़रा भी सोचने या मस्तिष्क पर ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। लगता था, जैसे कोई लिखवा रहा है और मैं लिखता चला जा रहा हूँ। कुछ पृष्ठ लिखने के बाद सत्गुरु दयाल हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज को सुनाकर उनकी स्वीकृति लेने के लिए जाया करते थे। कई बार वर्णन–शैली को देखकर लगता था मा´नो सत्गुरु दयाल ने स्वयं ही वह वाक्य लिखा है।

महाराज कृपाल सिंह जी रात नौ बजे इसे लिखना प्रारंभ करते थे और प्रातः पाँच बजे तक कलम लगातार लिखता चला जाता था। इनके कई मुलाक़ाती और मित्र, विशेषकर लाला राजाराम सर्राफ़ पास बैठे देखते रहते थे, देखते–देखते थककर सो जाते, रात को उठकर फिर देखते कि लिखने वाला हाथ निरंतर लिखता चला जा रहा है। वहाँ न सोचना है, न देखना है, समुद्र की लहरों के समान कलम एक निश्चित गति से चल रहा है, चलता जा रहा है।

एक बार लाला राजाराम सर्राफ़ पास बैठे थे और यह लिख रहे थे। उन्होंने देखा, इनका सारा शरीर सुन्न पड़ा है, केवल लिखने वाला हाथ हिल रहा है। बाक़ी शरीर मृतवत पड़ा है। 7-8 घंटे तक लगातार फ़लम चलता रहा। लिखने से निश्चिंत हुए, तो सारा शरीर अकड़ा हुआ था। कितनी ही देर मलने के पश्चात रक्त–प्रवाह ठीक हुआ और शरीर में जीवन और गति लौटी। लाला राजाराम ने पूछा, ″यह क्या बात है कि शरीर निश्चेत, निर्जीव–सा पड़ा है और हाथ लिखता चला जा रहा है।″ फ़रमाया, ″जीवित–मृतक अवस्था का वर्णन जो करता है, वह आप भी जीवित–मृतक बने, जीते–जी मरकर दिखाए।″

यह मन–बुद्धि के घाट की बातें नहीं। इस दुर्लभ ग्रंथ की पांडुलिपि रावलपिंडी में बीबी हरदेवी रात को ऊँची आवाज़ से पढ़ा करती

थीं। पढ़ते–पढ़ते रात्रि के 12-1 बज जाते। पड़ोस में डी.ए.वी. कॉलेज के प्रिंसिपल साहब रहते थे। वह अपने मकान में बैठे सुना करते। इस प्रकार पूरा ग्रंथ उन्होंने सुन लिया। एक दिन लाला राजाराम के घर आए और कहने लगे कि यह ग्रंथ जिस महापुरुष ने लिखा है, क्या उनके दर्शन करा सकते हैं? कहा, जब आयेंगे मिला दूँगा। महीना भर बाद महाराज कृपाल सिंह जी रावलपिंडी पधारे, तो प्रिंसिपल साहब को सूचना भेजी गई। जब मिले, तो चरणों में गिरे। कहने लगे, मेरा परम सौभाग्य है कि यह बीबी मेरे मकान के पास ऊँची आवाज़ से यह पुस्तक पढ़ती रही। मैंने इसका एक–एक शब्द सुना है। कोई माने या न माने, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप साक्षात् परमात्मा हैं।

फिर पढ़ो कृपाल सिंह!

जैसा कि पहले ज़िक्र आया, महाराज कृपाल सिंह जी 'गुरुमत सिद्धांत' की पांडुलिपि स्वीकृति के लिए हुज़ूर महाराज जी की सेवा में ले जाते थे। सुनने–सुनाने के दौरान कई रहस्य की बातें हो जाती थीं। एक समय का ज़िक्र है कि मज़मून जो यह सुना रहे थे, उसमें तीन–चार पृष्ठ ऐसे आए, जो विरह–विह्वलता की विभिन्न स्थितियों के बारे में थे। महापुरुष नश्वर देह छोड़ जाए, तो उसके पीछे शिष्य की क्या अवस्था होती है, इसका वर्णन था। वहाँ गुरु अंगद साहिब का ज़िक्र आया। यह फ़रमाते हैं :

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलिऐ।।
ध्रिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा।।

– आदि ग्रंथ (सिरी वार म॰4, पृ॰83)

इस प्रसंग में कई और महात्माओं का ज़िक्र आया। जरजरी साहिब एक महात्मा हुए हैं। उनके निधन के पश्चात उनका शिष्य गुरु की क़ब्र पर आया और यह कहते हुए क़ब्र पर लेट गया और जान दे दी।

बे यारे-ग़ार बूदन मुरदन हज़ार ऊला

– तारीख़े–तबरी

हुज़ूर ने यह वर्णन दो–तीन बार पढ़वाया। फिर कहा, "फिर पढ़ो कृपाल सिंह!" सुनकर कहने लगे, "फिर पढ़ो कृपाल सिंह!" महाराज कृपाल सिंह

फ़रमाते थे, शायद हुज़ूर मुझे बताना चाहते थे कि ऐ अभागे इंसान, यह समय तुझे भी देखना नसीब होगा। इस प्रकार की झाँकियाँ इस पुस्तक में जगह–जगह मिलती हैं, जिन पर लेखक के अपने जीवन की छाप लगी हुई है।

आने वाले समय का धर्म

'गुरुमत सिद्धांत' के एक पृष्ठ पर लिखा है कि आने वाले समय में इंसान का धर्म क्या होगा? उसमें नए युग में जो धर्म या मज़हब चल सकता है, उस पर प्रकाश डाला गया है। महाराज कृपाल सिंह जी जब यह पृष्ठ हुज़ूर महाराज को पढ़कर सुना रहे थे, तो कुछ लोगों ने आपत्ति की। कहने लगे, "हुज़ूर, यह भविष्यवाणी करता है।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "ठीक ही कहता है, यही मज़हब रहेगा। दूसरा कोई मज़हब रहने वाला नहीं।"

लेखक के नाम का झगड़ा

हुज़ूर ने पहले आवरण पृष्ठ पर अपना नाम देना स्वीकार कर लिया था और कहा था कि, "मेरे नाम के साथ 'दास' ज़रूर लिखा जाए।" जब सरदार भगतसिंह जी और अन्य लोग डेरे में आए, तो हुज़ूर महाराज से उन्होंने कहा, "यह किताब आपके नाम से नहीं जानी चाहिए। इस पर उसी का नाम होना चाहिए, जिसने यह पुस्तक लिखी है।" हुज़ूर महाराज बड़े मर्यादा पुरुषोत्तम थे। सरदार भगत सिंह और दूसरे लोगों को उन्होंने बुलावा भेजा। महाराज कृपाल सिंह जी को बुला लिया। फ़रमाया, "कृपाल सिंह! यह पुस्तक तुमने लिखी है, यह तुम्हारे नाम से जानी चाहिए।" महाराज कृपाल सिंह जी ने निवेदन किया, "निस्संदेह, मेरा ही क़लम इसे लिखने का गुनाहगार है, परंतु वह आपकी भेजी हुई धारा थी, जिसके सहारे यह ग्रंथ लिखा गया। इसलिए हुज़ूर इस ग्रंथ को अपने पवित्र नाम से जारी करें। यदि ऐसा न करना चाहें, तो किसी और के नाम पर ज़ारी कर दें।" यह कहकर पांडुलिपि हुज़ूर के चरणों में रख दी।

सरदार भगतसिंह ने कहा, "हुज़ूर आपका व्यक्तित्व हर प्रकार की कशमकश और विरोध से मुक्त है। इस पुस्तक का कड़ा विरोध होगा।" सरदार भगत सिंह ने सरदार गोपाल सिंह लद्दा के हाथ महाराज कृपाल सिंह

जी को कहला भेजा कि, "आप सच्चे गुरुमुख हैं, आप हठ न करें, पुस्तक अपने नाम से छपवा लें।" महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "इस बात का निर्णय हुज़ूर ही कर सकते हैं। जैसा वह हुक्म देंगे, कर दिया जाएगा।" सरदार गोपाल सिंह ने कहा, "आप मेरे साथ हुज़ूर के पास चलें।" आपने कहा, "चलो, मगर मैं बाहर खड़ा रहूँगा। तुम अंदर जाकर हुज़ूर महाराज से पूछ लो, जैसी वह आज्ञा करें, वैसा कर लेंगे।" वह अंदर गए, यह बाहर खड़े रहे। हुज़ूर पगड़ी बाँध रहे थे। हुज़ूर से यही निवेदन किया गया, तो फ़रमाने लगे, "पुस्तक मेरे नाम पर जाए, तो क्या हर्ज है?" उसने कहा, "हुज़ूर का पवित्र व्यक्तित्व बहसों और झगड़ों का विषय बन जाएगा।" फ़रमाया, "मैं सह लऊँ" (अर्थात मैं सहन कर लूँगा) और इस प्रकार पुस्तक को परम संत, पूर्ण धनी, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के पवित्र नाम से जारी किए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

हमें प्रचारक भेजने की आवश्यकता नहीं

'गुरुमत सिद्धांत' का पहला भाग 1935 में छपा था। यह अनमोल पुस्तक, हुज़ूर महाराज की सेवा में प्रस्तुत की गई, तो उन्होंने इसे उठा कर सिर पर रख लिया और यह वचन कहे, "अब हमें प्रचारक भेजने की आवश्कता नहीं रही। यह पुस्तक जहाँ भी पढ़ी जाएगी, सत्संग का प्रभाव स्थापित हो जाएगा।" हुज़ूर के आदेश पर इस पुस्तक की पांडुलिपि छपने से पहले ज्ञानी हीरासिंह 'दर्द' को भेजी गई, जो उस समय जेल में थे। उन्होंने पांडुलिपि जेल में पढ़ी। जेल से बाहर आए, तो प्रिंसिपल जोधसिंह जी से मिले और उनसे कहने लगे, "'गुरुमत निर्णय' आपने लिखा है, परंतु किसी बात का निर्णय नहीं किया। 'गुरुमत सिद्धांत' एक ऐसा ग्रंथ है, जिसमें प्रत्येक विषय का निर्णय किया गया है।" यह पुस्तक सिक्ख धर्म और दूसरे धर्मों के प्रमुख विद्वानों और धर्माचार्यों को भेजी गई, परंतु कोई भी इसकी किसी बात पर आपत्ति नहीं कर सका।

धर्म का सार-तत्त्व

हुज़ूर महाराज को धार्मिक समारोहों में सम्मिलित होने के निमंत्रण आते रहते थे। हुज़ूर अक़्सर सरदार कृपाल सिंह जी को वहाँ भेज देते।

इस संबंध में दो सभाएँ उल्लेखनीय हैं, जिनमें धर्म के यथार्थ स्वरूप पर प्रकाश डाला गया। इनमें एक समारोह झेलम में आर्य समाज की ओर से आयोजित किया गया, जिसमें विभिन्न समाजों के भाइयों ने इस विषय पर भाषण दिए कि 'मेरा धर्म मुझे क्यों प्रिय है।' वक्ताओं ने अपने–अपने समाज की परंपरा, रीति–रिवाज़, रहन–सहन के ढंग आदि का महत्त्व दर्शाने में अपनी सारी सामर्थ्य लगा दी। महाराज कृपाल सिंह जी ने अपने भाषण में कहा, "मज़हब, धर्म या पंथ के मा'ने हैं, रास्ता या मार्ग मज़हबे–इस्लाम के अनुसार, सरातुल–मुस्तकीम, वह सीधा रास्ता जिस पर चलकर मनुष्य अपने असली वतन, परमात्मा की गोद में पहुँच जाएँ। यह मंज़िल या आदर्श है, हरेक धर्म और मज़हब का। मज़हब के दो पहलू हैं। एक– वह जो बाहरी रीति–रिवाज़ से, धर्म–परंपराओं से संबंध रखता है। यह भूमि की तैयारी है। जप–तप, संयम, तीर्थ–व्रत, हवन–दान, ये सब चीज़ें इसमें आ जाती हैं। ये शुभ कर्म हैं, इनका शुभ फल मिलेगा। परंतु भगवान कृष्ण ने कहा है, 'पुण्य कर्म और पाप कर्म जीव को बाँधने के लिए एक समान हैं, जैसे लोहे की बेड़ी हो या सोने की बेड़ी।'[15] उद्देश्य केवल इतना है कि मनुष्य नेक–पाक, सदाचारी बने, एक दूसरे के काम आए, जिससे सांसारिक यात्रा सुखमय व्यतीत हो और उस आदर्श को प्राप्त करने में सहायता मिले, जो मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य और ध्येय है अर्थात मनुष्य अपने आपको जाने और प्रभु को पहचाने। यह मूलभूत शिक्षा है, सब धर्मों की।" महाराज कृपाल सिंह जी ने इस विषय की सुविस्तार व्याख्या की। इस अवसर पर किए गए भाषणों की एक पुस्तिका भी बाद में छपी थी।

दूसरा वाद–विवाद एस.पी.एस.के. हॉल, लाहौर में हुआ था। विषय था, "धर्म या मज़हब क्यों ज़रूरी है।" विभिन्न समाजों के भाई उस वाद–विवाद में सम्मिलित हुए। सिक्खों ने पाँच कक्कार का महत्त्व बताया। हिंदुओं ने चोटी और जनेऊ की उपयोगिता स्पष्ट की। मुसलमानों ने सुन्नत की और ऐसे ही दूसरी समाजों के अन्य भाइयों ने। इसके बाद सभा के

---

15. इस सम्बंध में कबीर साहिब कहते हैं :

पाप पुण्य हैं दोऊ बेरी। एक लोहे एक कंचन केरी।।
बेरी पाय एक दुख होई। कंचन ते सुख अधिक न सोई।।

— उग्रगीता, कबीर सागर (अध्याय 16)

संयोजक महोदय उठे। वे नास्तिक थे। उन्होंने कहा, "शादी का मामला है, उद्देश्य केवल इतना है कि अपने–अपने इष्ट को सामने रखकर पवित्र हाथों से, भाई सिक्ख धर्म का (ग्रंथी अथवा प्रचारक) हो, मुल्ला, पंडित, पादरी, कोई हो उसके द्वारा सौ दो–सौ व्यक्तियों के सामने लड़के–लड़की का नाता जोड़ दिया जाता है कि आज से इनका संबंध उचित है, ताकि बदकारी या भ्रष्टता न फैले।" यह रस्म हवनकुंड की अग्नि के सामने बैठकर कर ली जाए, कुरान शरीफ़ की आयतें पढ़कर पूरी कर ली जाए या गुरुग्रंथ साहिब के फेरे लेकर की जाए, क्या फ़र्क़ पड़ता है!" इस प्रकार दो–चार उदाहरण प्रस्तुत करके उसने सब पर पानी फेर दिया और निष्कर्ष निकाला कि समाजों की कोई आवश्यकता नहीं, न एक की, न दूसरे की।

महाराज कृपाल सिंह जी ने, जो अगली पंक्ति में बैठे थे कहा कि आपने जो कहा है, वह सब सही है। अब यदि 10-20 हज़ार आदमी आपके विचारों से सहमत हो जाएँ, तो आवश्यक है कि एक नया समाज ही बनाना होगा। समाज बनाने के बाद उसके नियम आदि भी बनाने होंगे। कुछ नए नियम भी बनेंगे, परंपराएँ बनेंगी। जिस बीमारी को आप दूर करना चाहते हैं, वह बीमारी फिर उत्पन्न हो जाएगी। समाजों को तोड़ने और नए समाज बनाने में व्यर्थ समय क्यों नष्ट किया जाए? क्यों न अपने–अपने समाज मे रहकर उस आदर्श को प्राप्त किया जाए, जो सब समाजों का सम्मिलित लक्ष्य और आदर्श है, जिसको प्राप्त करने के लिए किसी एक या दूसरे समाज में लोग प्रवेश पा चुके हैं।" नास्तिक ने उठकर कहा, "आपने ठीक कहा।"

प्रेम-पत्र

"गुरुमत सिद्धांत" में यदि अदृश्य हाथों का लेखन है, तो पत्र–व्यवहार में आप बीती का वर्णन है। हुज़ूर महाराज ने अपने प्रिय गुरुमुख और गुरुमुख ने गुरु को जो पत्र लिखे हैं, उनमें उस उच्चतम जीवन की झाँकी मिलती है, जिसका नमूना संत अपने जीवन में प्रस्तुत करते हैं। इन पत्रों में प्रेम का ऊँचे से ऊँचा उदाहरण और आत्मिक उभार हमें मिलता है, उन स्थितियों की झाँकी मिलती है, जिन्हें महसूस किया जा सकता है, वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रेम–पत्रों के इस जीवनदायक भंडार में से

कुछ पत्र यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनसे गुरु और गुरुमुख के संबंधों पर प्रकाश पड़ता है।

एक समय हुजूर डलहौज़ी में थे। तीन महीने वहाँ ठहरे, बाद में दो–तीन मास और ठहरने का संयोग बन गया। सबको पत्र भेजे गए कि हुजूर दो–तीन मास तक और डलहौज़ी में निवास करेंगे। महाराज कृपाल सिंह जी ने यह सुना, तो हुजूर को एक पत्र लिख भेजा, जिसमें हृदय की सारी व्यथा भर दी। लिखते हैं, "हुजूर आपकी अनुपस्थिति के तीन मास ज्यों–त्यों करके काटे। वह तो गुज़रे सो गुज़रे, अब आपका और प्रोगाम बन गया ठहरने का। लोंगों की तो बसंत है, हमारे लिए बस–अंत ही हो गया।"

हुजूर ने पत्र पढ़ा। डिप्टी हरनारायण को बुलाकर कहा, "मैं जा रहा हूँ।" विनती की, "हुजूर अभी–अभी आपने यहाँ और ठहरने का कार्यक्रम बनाया है। लोंगों को पत्र आदि भी भेजे जा चुके हैं।" फ़रमाया, "अब मैं यहाँ नहीं रह सकता। यह पत्र पढ़ो। मैं कैसे रह सकता हूँ।" हरनारायण जी ने उसी समय यह पत्र इन्हें लिखा :

मेरे प्रिय और माननीय सरदार साहिब,

राधास्वामी।

आपके जादू भरे पत्र ने जादू का सा असर किया। आपके प्रेम से हुज़ूर बड़े प्रभावित हुए और उनके नयन अश्रुपूर्ण हो गए। हुजूर 11 सितंबर को रवाना होकर रात को अमृतसर ठहरेंगे और 12 सितंबर को डेरा पहुँचेंगे। सूचनार्थ निवेदन है।

आपका सेवक,
हरनारायण
डलहौज़ी

9 सितंबर, 1942

प्रेम में शिष्ट–व्यवहार के क़ायदे–क़ानून, तरीक़े–सलीक़े अक्सर किनारे रह जाते हैं, परंतु संतों का प्रेम कुछ और ही चीज़ है। हुजूर महाराज को एक पत्र में आपने लिखा, "हुजूर, अपना प्रेम मुझे बख़्शें, मगर वह प्रेम बा–अदब हो।" सत्गुरु दयाल ने बार–बार वह पत्र पढ़ा और पढ़कर अपने हृदय पर रख लिया और फ़रमाया, "मुझे भी बा–अदब प्रेम ही चाहिए।"

जीवन का उच्चतम आदर्श

हुज़ूर महाराज ने अपने गुरुमुख को जो पत्र समय–समय पर लिखे, उनमें संतों के जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। महाराज कृपाल सिंह जी सत्गुरु दयाल के एक पत्र का ज़िक्र अपने सत्संग–प्रवचनों में अक्सर किया करते हैं। यह पत्र जून 1939 ई. को हुज़ूर ने इन्हें लिखा था। इस पत्र की पृष्ठभूमि यह है कि महाराज कृपाल सिंह जी ने हुज़ूर को एक पत्र लिखा, जिसमें सब कुछ छोड़ भजन–सुमिरन और प्रभु की याद में लीन रहने की अभिलाषा प्रकट की थी। हुज़ूर ने जवाब में यह पत्र इन्हें लिखा, जो जीवन में इनका मार्गदर्शक रहा।

बरख़ुरदार कृपाल सिंह जी,

प्रेम–पत्र आपका मिला। पढ़कर ख़ुशी हुई। बरख़ुदार, संतों की जागीर बे–आरामी है।

इश्क का मन्सब लिखा, जिस दम मेरी तकदीर में
आह की नक़दी मिली, सेहरा मिला जागीर में

नथ ख़सम हत्थ, किरत धक्के दे,
जहां दाना तहां खाना, नानका सच ए।

हम लोग मालिक की सेवा के लिए आए हैं। आप अपना भजन भी करो और परमार्थ को भी मुकम्मल रखो। मगर सेवा करना ज़रूरी है। तुम मेरी तरफ़ देख लो कि मैं सुबह से शाम तक साध–संगत की सेवा करता हूँ। अपना भजन किसी रोज़ बनता है, किसी रोज़ नहीं बनता। मगर हुज़ूर बाबा जी महाराज का हुक्म है कि सेवा का दर्जा भजन से कम नहीं और जो आप यह कहो कि दुनिया प्रेम और प्यार से इतनी तवज्जोह नहीं करती, जिस कदर चाहिए, हमने सत्संग की सेवा करके इसका कुछ मुआवज़ा नहीं माँगना। सत्संग में हर तरह के आदमी होते हैं। बाज़ प्रेमी आशिक़ तन–मन–धन कुरबान किए होते हैं और बाज सिर्फ़ बातूनी, निंदक और एबजू, तान–तशनी देने वाले होते हैं। जब वे लोग अपनी बुरी आदतों को नहीं छोड़ते, हम अपनी नेक आदत को क्यों छोड़ें? मैं तो आपको यही राय दूँगा कि सत्संग भी करो, सरकारी फ़र्ज़ भी पूरा करो और अपना भजन–सुमिरन भी मुकम्मल करो। मैं आपसे बहुत ख़ुश हूँ। आप तन–मन–धन से परमार्थ की सेवा कर रहे हो।

अज़– सावन सिंह

11.6.39

ईसाई धर्म का अध्ययन

लाहौर में सरकारी नौकरी के दौरान महाराज कृपाल सिंह जी को ईसाई धर्मग्रंथों के अध्ययन की बड़ी सुविधा और अवसर मिला। इनके मातेहत एक ईसाई सुपरिंटेंडेंट काम करता था, जो चर्च की लायब्रेरी का लायब्रेरियन था। उससे आपने कहा कि ईसाई धर्म के बारे में अच्छी से अच्छी किताब, जो उस पर प्रकाश डालती हो, ऐसी दो किताबें प्रति सप्ताह ले आया करो, मैं पढ़कर वापस कर दूँगा। बहुत पुरानी किताबें जो आज उपलब्ध नहीं हैं और मिलीं भी तो मुश्किल से मिलेंगी, उनका अध्ययन आपने किया, जिसके फलस्वरूप ईशु मसीह की शिक्षा और ईसाई मत के बारे में आपका ज्ञान इतना विस्तृत और व्यापक था कि ईसाइयों के बड़े–बड़े धर्माचार्यों को भी अपने मत के बारे में इतनी गूढ़ जानकारी न होगी। इस गूढ़ अध्ययन का परिणाम था कि पश्चिमी देशों में नाम का प्रचार करते समय आपने मसीही धर्मग्रंथों के उद्धरण प्रस्तुत किए, तो बड़े–बड़े विद्वान पादरियों ने इनके भाषण सुनकर ऐलान किया कि सारी उम्र हम ईसाइयत का प्रचार करते रहे, आज पहली बार हमें मालूम हुआ कि बाइबिल की तालीम क्या है।

एक दिन अपने ईसाई सुपरिंटेंडेंट से आपने कहा कि अपने बिशप से, जो सारे हिंदुस्तान में मसीही धर्म का सर्वश्रेष्ठ विद्वान समझा जाता था, उससे मिलकर पूछा कि गिरजे के गुंबद पर जो घंटा लगा रहता है, वह क्यों बजाया जाता है? उसने जाकर बिशप से पूछा, तो उसने कहा कि वह केवल लोगों को इकट्ठा करने के लिए बजाया जाता है। यह उत्तर सुनकर आपको महसूस हुआ कि समाजों के मुखिया और धर्माचार्य धर्म के अंतरीय पक्ष के बारे में कितने अनजान हैं। गिरजों में कोई कर्मचारी निश्चित समय पर घंटा बजाता है, हिंदुओं के मंदिरों में जो जाता है, वह स्वयं घंटा बजाता है। हरेक धर्म में घंटे का चिह्न मौजूद है, जो अंतरीय नाद का प्रतीक है। धर्मग्रंथों को हम पढ़ तो सकते हैं, परंतु उनके सही मा'ने हम नहीं समझ सकते, जब तक कोई अनुभवी पुरुष जिसने उस चीज़ को पाया है, जिसका ग्रंथों में ज़िक्र है, हमें खोलकर न समझाए।

लाला राजाराम का देहांत

हुज़ूर महाराज के चरणों में आने के बाद आपने दो बच्चों और दो बड़े भाइयों की मौत देखी और अपने प्रेमी भक्त लाला राजाराम सर्राफ़ को विदा किया। लाला राजाराम की मृत्यु के समय आप उनके पास नहीं थे, किन्तु आठ दिन पहले दो कविताओं द्वारा उन्हें पहले ही मौत की सूचना दे दी थी। कविताएँ यह हैं :

बंदे उसी रंग में रहना, जिस रंग राखे राखनहार
वह चाहे तो भीख मंगा दे, वह चाहे तो तख़्त बिठा दे
मुँह से कुछ नहीं कहना, उसी रंग में रहना, जिस रंग राखे राखनहार
सुख में उसको भूल न जाना, दुख आवे तो न घबराना
खुशी-खुशी दुख सहना, उसी रंग में रहना, जिस रंग राखे राखनहार
भगवन को तू मीत बना ले, स्वास-स्वास का गीत बना ले
यह है जीवन गहना, उसी रंग में रहना, जिस रंग राखे राखनहार

दूसरी कविता, जिसमें स्पष्ट संकेत था, उसका टीप का बंद था,

बंदे उम्र रही थोड़ी, भज हरि नाम भज हरि नाम

लाला राजाराम ने यह कविताएँ पढ़ने के बाद कहा, "बाबूजी (वह इन्हें प्यार से बाबू जी कहते थे) की नज़्मों में साफ़ इशारा है कि मेरी ज़िंदगी के दिन पूरे हो गए। मित्र हो, तो ऐसा, जो समय पर मौत की ख़बर दे दे। लाला राजाराम ने उसी समय हुज़ूर महाराज के नाम विभिन्न सत्संग–केंद्रों पर तार दिए कि हुज़ूर यहाँ आकर अपने हाथों से मुझे विदा करें। पालमपुर (कांगड़ा) के क़रीब कहूटा में हुज़ूर को राजाराम जी का तार मिला। हुज़ूर उसी समय कार पर रावलपिंडी रवाना हो गए। यह 1945 ई. की बात है। गर्मी का मौसम था। रास्तें में आंधी–झक्कड़ चलते रहे। शाम को चार बजे हुज़ूर रावलपिंडी पहुँचे। लोगों ने कहा, "हुज़ूर, इस तूफ़ानी सफ़र में आपको बहुत असुविधा हुई।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "यह तो आंधी–तूफ़ान थे, अगर शोलों से गुज़रना पड़ता, तब भी मैं आता। इससे मेरा पुराना संबंध है।"

लाला राजाराम मकान की तीसरी मंज़िल पर रहते थे। हुज़ूर सीढ़ियाँ तय करके वहाँ पहुँचे। कुशल समाचार पूछने के बाद हुज़ूर ने पूछा, "सारे काम ख़त्म कर लिए या अभी कुछ करना बाक़ी है?" निवेदन किया,

"रजिस्टरी के सिलसिले में थोड़ा काम बाक़ी है, वह भी पूरा हो जाएगा। जिसका देना था दे दिया— जो याद था वह भी, जो नहीं याद था वह भी।" हुज़ूर देर तक वहाँ बैठे रहे। कमरे में बीबी हरदेवी और राजाराम जी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। रात नौ बजे हुज़ूर फिर वहाँ पधारे। राजाराम जी ने विनती की, "हुज़ूर, इस तुच्छ सेवक के लिए आपको इतनी सीढ़ियाँ तय करके आना पड़ता है।" हुज़ूर ने बड़े प्यार से कहा, "मुझे ग़ैर न समझों, राजाराम।" वसीयत के काग़ज़ उस वक़्त मुकम्मल हो चुके थे। जाते समय हुज़ूर ने बीबी हरदेवी से कहा कि आवश्यकता पड़े तो मुझे ख़बर दे देना, मैं आ जाऊँगा।"

पूरे गुरु की संभाल

प्रातः चार बजे लाला राजाराम के दर्द उठा। बीबी हरदेवी से कहा, "हुज़ूर, सच्चे पातशाह से विनती करना कि तशरीफ़ ले आएँ।" बीबी वहाँ गई, तो हुज़ूर दस्तार बांध रहे थे। सुबह पाँच बजे हुज़ूर पधारे और लाला राजाराम की चारपाई पर आकर बैठ गए। पीठ पर प्यार से हाथ फेरा। फ़रमाया, "कोई बात करनी हो, मन में कोई इच्छा हो, तो कहो।" कहने लगे, "बड़े ज़ोर का 'शब्द' आ रहा है, संभाला नहीं जाता। इतनी तेज़ रोशनी है कि बर्दाशत नहीं होती।" फिर बोले, "मैं कितना भाग्यवान हूँ कि आँख बंद करता हूँ, तो अंतर में हुज़ूर खड़े हैं, आँख खोलता हूँ, तो बाहर खड़े हैं।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "सारे काम ख़त्म कर लिए कि कोई बाक़ी है?" कहने लगे, "मै तैयार हूँ। केवल एक इच्छा है। हुज़ूर ने नाश्ता नहीं किया। थोड़ा दूध मेरे हाथों से ले लें, मेरे सामने दूध पिएँ।" हुज़ूर ने दूध पीकर गिलास में दो घूँट छोड़ दिए। उसमें से एक घूँट लाला राजाराम ने लिया और गिलास बीबी हरदेवी को दे दिया कि तू भी पी ले, फिर यह तेरे क़ाबू नहीं आएगा। हुज़ूर ने हँस कर कहा, "चिन्ता न करो।" इस प्रकार आठ बज गए।

लाला राजाराम इतनी ख़ुशी से मौत की तैयारी कर रहे थे, जैसे कोई शादी की तैयारी करता है। संगत से कह दिया था कि कोई सत्संगी खाना खाए बिना न जाए। लाला राजाराम की ओर से हुज़ूर ने स्वयं यह ऐलान किया। आठ बजे हुज़ूर मेहता साहब की कोठी को रवाना हो गए। जाते समय आदेश दे गए कि पौने बारह बजे मुझे लेने आ जाना। हुज़ूर

कार में बैठकर जाने लगे, तो लाला राजाराम अंतिम दर्शनों के लिए बड़ी मुश्किल से उठकर बरामदे में आ गए। हुज़ूर ने कार रुकवाकर दर्शन दिए। राजाराम जी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा, "जैसा गुरु मुझे मिला है, ईश्वर करे सबको मिले। सब पर ऐसी दया हो, जैसी दया मुझ पर हो रही है।" बीबी हरदेवी से कहने लगे, "भला हो तेरा, जो मुझे ऐसे गुरु के चरणों में लाई।" (लाला राजाराम आर्य समाज के प्रमुख नेता थे। चिरकाल तक वे उसके प्रधान रहे।)

ग्यारह बजे वह शौच गए, आकर लेट गए। कुछ समय पश्चात बीबी हरदेवी से बोले, "अब केवल सुमिरन कर।" बीबी ने कहा, "वही कर रही हूँ।" कहने लगे, "हुज़ूर आ गए हैं। फ़रमाते हैं, अब बात न कर।" साढ़े ग्यारह बजे चौकड़ी मारकर बैठ गए। उंगलियाँ नीली पड़ने लगीं। कहने लगे, "मैं जा रहा हूँ। हुज़ूर कह रहे हैं, कोई बात करनी हो, तो कर लो। अब ख़ुशी से मुझे विदा करो। मैं किसी ग़ैर के साथ नहीं, हुज़ूर के साथ जा रहा हूँ।" बीबी हरदेवी ने धनराज वकील से कहा, "मोटर साइकल पर जाकर हुज़ूर को सूचना दे दो।" वह नहीं गया। इतने में लाला राजाराम बोले, "हुज़ूर खड़े हैं, नमस्कार कर।" बीबी ने कहा, "कहाँ हैं?" कहने लगे, "वे सामने खड़े हैं।" बीबी ने कहा, "झौला?? तो मुझे भी पड़ रहा है। " फिर बोले, "अच्छा मैं जाता हूँ। मेरे जाने के बाद आध घंटे तक किसी को नहीं बताना, बैठकर सुमिरन करती रहना।" बीबी हरदेवी पति का हाथ पकड़े सुमिरन करती रही। मृतक के मुख पर वह आभा थी कि आँख नहीं ठहरती थी। चेहरा लाल–सुर्ख़ हो रहा था। हुज़ूर वहाँ पहुँचे, तो धनराज पर बहुत नाराज़ हुए कि मुझे सूचना क्यों नहीं दी?

दाह संस्कार के लिए चार बजे का समय निश्चित हुआ। शहर में ख़बर पहुँची, तो सारे बाज़ार बंद हो गए। सर्वमान्य थे, कोई भेदभाव मन में नहीं था। सबको दान देते थे। सब समाजों की कीर्तन मंडलियाँ अपना–अपना बोर्ड लगा जलूस बनाकर एकत्र हो गईं। मृतक शरीर को नहला–धुलाकर बड़े सत्संग घर में लिटा दिया गया। मृत्यु के समय लाला राजाराम की चौकड़ी लगी हुई थी। योगी–जन हमेशा बैठकर समाधि लेते हैं। हुज़ूर ने आकर दोनों हाथ उनके सिर पर रख दिए। फ़रमाया, "मेरा रोम–रोम इस पर प्रसन्न है।"

हुज़ूर ने जुलूस के साथ पैदल चलने का आग्रह किया। तीन–चार मील का रास्ता था। बीबी हरदेवी और संगत के ज़ोर देने पर हुज़ूर केवल आर्य समाज मंदिर तक पैदल गए। आर्य समाज के प्रधान ने, जो राजाराम जी के बाद प्रधान बने थे, श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए कहा, "लाला राजाराम हमारे पास एक हीरा था। जब वह समाज को छोड़ कर गया, तो हमारे मन में कई शंकाएँ थीं, परंतु हमने देखा कि वह ऐसे गुरु की शरण में गया, जिसके अंदर कोई भेद–भाव नहीं, जिसे सबसे प्यार है, सब समाजों के लिए आदर–भाव है। आर्य समाज का यह हीरा उपयुक्त स्थान पर पहुँचा, वह अंगूठी कानगीना बनकर चमका।"

दाहकरण संस्कार के बाद सत्संग के लिए हुज़ूर पर बड़ा ज़ोर डाला गया, लेकिन वे नहीं माने। फ़रमाया, "जिस काम के लिए मैं आया था, वह काम पूरा करके जा रहा हूँ। मैं केवल एक व्यक्ति के लिए रावलपिंडी आता था। अब मैं यहाँ नहीं आऊँगा।" (यह अंतिम अवसर था हुज़ूर का रावलपिंडी जाने का। बाद में पाकिस्तान बन गया)।

बड़े भाइयों का देहावसान

महाराज कृपाल सिंह जी के भाई, सरदार जोधसिंह जी तो परमार्थ की खोज में इनके साथी थे। दूसरे भाई, सरदार प्रेमसिंह जी थे, जिनका इलाके में बड़ा रोब और दबदबा था। दोनों भाई इनसे बड़े थे। भाइयों का आपस में बड़ा प्यार था। सरदार जोधसिंह लाला राजाराम से पहले स्वर्गवास हो चुके थे। उन्होंने महाराज कृपाल सिंह जी से वचन ले लिया था कि मरते समय वो उनके पास होंगे। जब वह बीमार पड़े, तो आप छुट्टी लेकर उनकी सेवा के लिए रावलपिंडी पहुँचे। सरदार जोधसिंह जी ने बीमारी की छुट्टी ले रखी थी, उसके चार दिन बाक़ी थे, परंतु इनकी छुट्टी ख़त्म हो गई थी। जोधसिंह जी ने पूछा, "मैं और छुट्टी ले लूँ?" आपने कहा, "नहीं। इसकी ज़रूरत नहीं पड़ेगी (साफ़ इशारा था कि ज़िंदगी के तीन–चार दिन ही बाक़ी रह गए हैं)।" आपको ड्यूटी पर उपस्थित होना था, इसलिए भाई से विदा ली और लाहौर चले आए। जाते समय भाई से कह गए कि आप लाहौर आएँ, तो कार में सफ़र करें। सुबह चलें और शाम को लाहौर पहुँच जाएँ, रात को सफ़र न करें।

ऐसा संयोग हुआ कि सरदार जोधसिंह जी को रात को सफ़र करना पड़ गया और वह भी ट्रेन में। कार के लिए पेट्रोल न मिला और दिन ढल गया। अतः रात की गाड़ी से लाहौर चल दिए। गाड़ी लालामूसा स्टेशन पर पहुँची थी कि सहसा हालत बिगड़ गई। उनके मुख से अनायास यह शब्द निकले, "वाह कृपाल! इधर न उधर, बीच में लाकर छोड़ दिया।" उधर लाहौर में आप अंतर में सत्गुरु दयाल से प्रार्थना कर रहे थे कि भाई साहब ग़लती कर बैठे हैं, हुज़ूर दया करें। यहाँ तक आने का समय दे दें। सत्गुरु दयाल ने प्रार्थना स्वीकार की, सरदार जोधसिंह की हालत संभलने लगी, लाहौर पहुँचे। आप स्टेशन पर लेने आए हुए थे। कार पर बिठाया, तो छोटे भाई के गले से लिपटकर कहने लगे, अब सारे गिले ख़त्म हो गए और कहते ही वहीं कार में प्राण त्याग दिए।

हुज़ूर महाराज को डेरे में ख़बर मिली, तो वहीं से कार पर लाहौर आए और राम गली में इनके मकान पर पहुँचे। महाराज कृपाल सिंह जी ने मृतक शरीर की ओर संकेत करते हुए कहा, "ख़ाली मकान पड़ा है। जाने वाला इसमें से जा चुका है।" सरदार जोधसिंह जी के बच्चों को ख़बर भेज दी गई थी। उनके आने का इंतज़ार था। नौ बजे रात तक श्मशान भूमि में उनकी प्रतीक्षा होती रही। हुज़ूर वहीं बैठे रहे। जब उनके बच्चे वहाँ पहुँचे, तो हुज़ूर ने महाराज कृपाल सिंह जी से कहा, "अब आग देने की अंतिम सेवा भी तुम्हीं करो।" आपने चिता को आग दी। दाहकरण के बाद हुज़ूर वापस डेरा लौट गए। उस समय रात के ग्यारह बज चुके थे, फिर भी हुज़ूर महाराज लाहौर रुके नहीं।

सरदार प्रेमसिंह जी सबसे बड़े भाई थे। अंतिम बीमारी के समय वो रावलपिंडी में थे। महाराज कृपाल सिंह लाहौर से रावलपिंडी रवाना हुए। गाड़ी प्रातः पाँच बजे वहाँ पहुँच जाती थी, पर वह कई घंटे लेट हो गई। उधर सरदार प्रेमसिंह दरवाज़े पर आँख लगाए बैठे थे, बार–बार पूछते, "पाल नहीं आया?" दोपहर डेढ़ बजे के क़रीब आप रावलपिंडी पहुँचे। बच्चे स्टेशन लेने आए हुए थे। उनसे पूछा, "रिश्तेदारों को तार दे दिया है?" कहने लगे, "जी नहीं, रस्ते में तार देते हुए घर गए। भाई के पास बैठे। पूछा, "मन में कोई इच्छा तो नहीं?" कहने लगे, "मैं बिल्कुल तैयार हूँ।" साढ़े तीन बजे उनसे कहने लगे, बाहर का ख़्याल छोड़ दो और चलने को

तैयार हो जाओ। थोड़ी देर में बड़ी शांति से उन्होंने प्राण त्याग दिए। मरते समय मुख पर तेज था कि लोग देखकर हैरान थे।

बच्चों की मृत्यु

महाराज कृपाल सिंह जी को दो छोटे बच्चों की मौत भी देखनी पड़ी। एक की तीन वर्ष की अवस्था में पेशावर में, दूसरे की आठ वर्ष की आयु में रावलपिंडी में मृत्यु हुई। लाला राजाराम सर्राफ़ बच्चे की मृत्यु पर ही आपसे मिले थे और ऐसे मिले कि ज़िंदगी भर साथ रहे।

रावलपिंडी में जिस बच्चे की मौत हुई, उसका क़ायदा था कि घर में जो भी चीज़ बनती, उस पर हाथ डाल देता, कि मुझे दो। आप उसे कहते, "भई, मैं जानता हूँ, पर धीरज से खा।" जिस दिन उसने देहत्याग करना था, आप उसे बाज़ार ले गए। जो चीज़ माँगी, उसे दे दी, लेना–देना ख़त्म हुआ। घर आकर उसी रात उसने प्राण त्याग दिए। लोग यह देखकर हैरान थे कि बच्चे की मौत का इन पर ज़रा भी असर नहीं हुआ। यही बात लाला राजाराम को इनके क़रीब लाने का कारण बनी।

पेशावर में इनका तीन वर्ष का बच्चा बीमार पड़ा, तो पत्नी से कहने लगे, जो बड़े से बड़ा डॉक्टर तुम कहो, इसके इलाज के लिए, बुला दूँ। यह न कहना इलाज में कसर रह गई थी। डॉक्टर बुलाए गए, इलाज किया। एक दिन खड़े–खड़े अपने आपसे बात कर रहे थे कि यह सब धोखा ही है। इलाज पर व्यर्थ रुपया खोना है। बड़े भाई सरदार प्रेमसिंह जी पीछे खड़े थे। कहने लगे, "यह क्या कह रहे हो?" कहा, "कुछ नहीं।" शाम को बच्चे को दोनों हाथों से उठाया। उसने आँख मूंद ली, जैसे कि सो गया हो, बिल्कुल शांत।

नौकरी पेंशन और प्रभु-सेवा का व्रत

छत्तीस वर्ष सरकारी नौकरी के बाद फ़रवरी 1947 ई. में आप रिटायर हुए। नौकरी के ज़माने में अफ़सर और मातहत दोनों में सर्वप्रिय थे। अफ़सर आपकी सलाह की क़द्र करते थे और मातहत आपसे परामर्श किए बिना कोई काम न करते थे। मातहत आपको अपना आत्मीय, सच्चा हितैषी और बुज़ुर्ग मानते थे। नौकरी से रिटायर होने के बाद लोग प्रायः साल–दो–साल

के लिए नौकरी की अवधि बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं, परंतु महाराज कृपाल सिंह जी को इस चीज़ से कोई दिलचस्पी नहीं थी। अतः कंट्रोलर स्वयं इनकी नौकरी की अवधि बढ़ाने की योजना लेकर आया। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "आपका बहुत–बहुत धन्यवाद! पर मैं यह सुझाव स्वीकार नहीं कर सकता। मैंने दुनिया का बहुत काम कर लिया। अब मेरा सारा जीवन प्रभु और उसके जीवों की सेवा के लिए अर्पित है।" कंट्रोलर कहने लगा, "लेकिन पेंशन में आपका गुज़ारा कैसे होगा?" आपने जवाब दिया, "मैं अपने आपको हालात के मुताबिक ढाल लूँगा।" कंट्रोलर यह बात सुनकर बहुत प्रभावित हुआ। वह कहने लगा, "मैं जानता हूँ आप एक फ़िलॉसफ़र हैं। आप शौक़ से प्रभु–सेवा का कार्य करें। मेरी शुभ भावना आपके साथ है।"

रिटायर होने के बाद आपके पेंशन के काग़ज़ात बनने जा रहे थे, तो महकमे का सर्वोच्च अधिकारी, एकाऊंटेंट जनरल भी वहाँ आया हुआ था। उसने आपको बुलाकर अपने पास बिठाया और आपकी सेवाओं की प्रशंसा करते हुए कहने लगा, "We had a wonderful man like you in our department," अर्थात आप एक असाधारण व्यक्ति हमारे महकमे में थे। सरकारी नौकरी के दौरान महकमे के नियमों पर आपने दो किताबें भी लिखी थीं।

गुरु और गुरुमुख के मामलात

पिता–पूत की, गुरु और गुरुमुख के मामलात की यह कहानी है, जिसका रहस्य कोई भेदी ही जान सकता है, जिसे वह दृष्टि प्रदान करे। 'Son knows the Father and others whom the son reveals,' अर्थात बच्चा पिता को जानता है, और दूसरे वह लोग, जिनको वह दिखाए, उनका साक्षात्कार कराए। – पवित्र बाइबिल (मत्ती 11:27)

वह प्रभु–सत्ता, जो गगन से धरती पर उतरती है, गिरे हुओं को उठाने के लिए, देह के बंधन से विमुक्त करके पिता की गोद में पहुँचाने के लिए, मानव–देह में व्याप्त होती है और पिता–पूत की शक्ल में आप ही अपनी कहानी दोहराती चली जाती है। मानवीय प्रयत्नों को इसमें दख़ल नहीं। यह चुनाव परमात्मा की ओर से है। आपके जीवन में हर बात में, हर स्थान पर इसका प्रमाण मिलता है। अतः महाराज कृपाल सिंह जी जब हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में आए, तो जगह–जगह पर इस बारे में संकेत मिलते हैं।

महाराज कृपाल सिंह जी जब गुरु–आज्ञा का पालन करते हुए दस–दस, बारह–बारह घंटे भजन करके दिव्य–मंजिलों को शीघ्रातिशीघ्र तय करने में लगे हुए थे, तो उन्हें अंतर में बाबा जयमल सिंह जी महाराज के दर्शन हुए। बाबा जी ने थपकी देते हुए कहा, "तुम्हें हम संत बना देंगे।" शुरू के दिनों की बात है।

चोगा और दुलाई की देन

यह उन दिनों का वृत्तांत है, जब हुज़ूर महाराज ने अपने जीवन–काल में दो–सौ से ऊपर नर–नारियों को डेरे में इनसे 'नाम' दिलवाया। एक दिन हुज़ूर ने इन्हें बुलाया। यह गए। हुज़ूर ने बीबी रली को नीचे भेजकर तूश का कश्मीरी चोग़ा मँगवाया। पहले आप पहना, फिर उतारकर मेहरभरी दृष्टि डालकर वह चोग़ा इन्हें दे दिया। फिर एक दिन बुलाया और एक बहुमूल्य दुलाई, नीचे बिछाने वाली, इन्हें दी, जिस पर टिकलियाँ–सी लगी हुई थीं। उस दुलाई को पहले अपने सिर पर रखा, मेहर भरी नज़र डाली और इनको सौंप दी। प्रकट है कि हुज़ूर महाराज का यह प्रसाद आध्यात्मिक देन थी।

भविष्य की झाँकी

महाराज कृपाल सिंह जी ने पश्चिमी देशों के नामदान का जो सिलसिला शुरू किया, जिसके फलस्वरूप परम संत श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की शिक्षा और उनकी अपार दयामेहर की सुगंधि सारे संसार में फैली और अब भी फैल रही है, इस सारे काम की झाँकी उन्होंने पहले ही देख ली थी। एक दिन अभ्यास में बैठे हुए आपने अंतर में यह दृश्य देखा कि एक बहुत बड़ा स्टेडियम है। वहाँ अर्ध–चंद्राकार में सीढ़ियोंदार कुर्सियों पर विश्व के विभिन्न देशों के अमीर–वज़ीर और उच्च शासनाधिकारी बैठे हुए हैं। एक कुर्सी पर श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज विराजमान हैं और यह लाउड–स्पीकर के सामने खड़े हुए भाषण कर रहे हैं। यह हुज़ूर महाराज जी के जीवनकाल की घटना है। जब इस दृश्य के बारे में हुज़ूर महाराज को बताया तो फ़रमाने लगे, "ऐसा ही होगा, कृपाल सिंह।"

'मैं अपनी जगह इसे दूँगा'

इस प्रसंग में एक महत्त्वपूर्ण घटना इनके जीवन में आती है। फ़रवरी 1947 ई. में डिप्टी असिस्टेंट कंट्रोलर ऑफ़ मिलिटरी एकाउंट्स के पद पर रिटायर हुए, तो देहरादून में ज़मीन देखने के लिए गए, ताकि किसी एकांत जगह पर, जो इनके जीवन के मिशन अर्थात भजन–सुमिरन और परमार्थ के लिए उपयुक्त स्थान हो, मकान बनवाया जाए। बाबा बचित्तरसिंह पी.सी.एस. आपके साथ थे। वापस डेरा आए, तो हुज़ूर ने पूछा, "कहाँ गए थे?" बचित्तरसिंह ने कहा, "देहरादून मकान के लिए ज़मीन देखने गए थे।" कहने लगे, "कोई ज़रूरत नहीं, मकान बनाने की। मैं इसे अपना यह मकान रहने को दूँगा। इसके बच्चे उसी तरह आकर इसे मिल जाया करेंगे, जैसे मेरे बच्चे मुझे आकर मिल जाते हैं।" यह स्पष्ट संकेत था, हुज़ूर का कि अपने पीछे आध्यात्मिक काम को जारी रखने के लिए मैंने सरदार कृपाल सिंह जी को चुना है।

भर-भर झोली प्रसाद

इसी संदर्भ में डेरे का एक अनुपम दृश्य आँखों के सामने उभरता है। हुज़ूर महाराज सरदार जोधसिंह की कोठी के ऊपर छत पर पधारे। वहाँ माल्टों के बहुत से टोकरे बरामदे में पड़े हुए थे। बढ़िया रैड ब्लड माल्टे थे, वह। महाराज कृपाल सिंह जी, उनके बड़े भाई सरदार जोधसिंह जी, लाला राजाराम सर्राफ़ रावलपिंडी वाले और कई और प्रमुख व्यक्ति वहाँ उपस्थित थे। संध्या का समय था, यह उसी समय डेरे में पहुँचे थे। सरदार जोधसिंह जी ने मत्था टेका, हुज़ूर ने उनके सिर पर हाथ रखा। महाराज कृपाल सिंह जी ने मत्था टेका, दोनों हाथ इनके सिर पर रख दिए। हुज़ूर ने प्रसाद बाँटना शुरू किया। जब इनकी बारी आई, तो यह भी झोली फैलाकर सामने खड़े हो गए। आँखें चार हुईं। हुज़ूर इनको देखें, यह हुज़ूर को देखें, दर्शन की तन्मयता में तन–बदन की सुधि न रही। हुज़ूर दोनों हाथों से माल्टे भर–भरकर झोली में डालते जाते। झोली भरकर माल्टे नीचे गिरते जाते, वो और डालते जाते। यह सिलसिला देर तक चला। यह उस अपार दयामेहर की झलक थी, जो पिता–पुत्र ने झोलियाँ भर–भरकर लुटाई और जो आज सारे संसार को दिव्य ज्योति से मालामाल कर रही है।

यह उनकी ख़ुशबू है

हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में बैठकर, इन्होंने जो परमार्थ लाभ उठाया और दुनिया को इनके हाथों उसका जो हिस्सा मिल रहा है, उसका ज़िक्र अपने सत्संगों में यह इन शब्दों में करते हैं, "बात इतनी है कि मुझे हुजूर के चरणों में रहना नसीब हुआ। यह उनकी विशेष कृपा थी। उनके चरणों में बैठकर परमार्थ लाभ मैंने उठाया, थोड़ी समझ उन्होंने बख़्शी। पास बिठा–बिठाकर सत्संग कराते, बच्चों की तरह समझाया करते। फिर उन्होंने फ़रमाया, 'यह काम आगे तुम्हें ही करना है।' तो यह उनकी दया से लोगों को परमार्थ लाभ मिल रहा है। मैं तो आप ही की तरह एक इंसान हूँ। मेरी इतनी ख़ुशकिस्मती थी कि उनके चरणों में बैठना नसीब हुआ। मिट्टी थी। वह हमाम में मिल गई। किसी ने सूँघा। बड़ी ख़ुशबूदार थी। पूछा मिट्टी से, अरे भई, तू तो बड़ी ख़ुशबूदार है, तू कौन है, क्या है? क्या तू कस्तूरी है? बड़ी सुगंधि आ रही है, तुझसे। कहने लगी, मैं तो वही तुच्छ मिट्टी हूँ। मगर कुछ काल मुझे महकते फूलों में रहना नसीब हो गया था। इससे मुझमें भी ख़ुशबू समा गई। अरे भई, हुजूर के चरणों में बैठकर इस तरह, जैसे हम सब बैठे हैं, हुजूर बिठाकर सबक पढ़ाया करते थे। उनके चरणों में बैठकर जो समझ में आया, वही मैं लोगों को पेश कर रहा हूँ। ख़ुशबू मेरी नहीं, उनकी ही यह ख़ुशबू है। यदि किसी को कुछ मिल रहा है, पुराने या नए भाइयों को, वह सब उनकी दया से है।"

हुजूर के जीवन के बड़े सबक़

(i) ब्रह्मचर्य : श्री हुजूर महाराज के अंदर ब्रह्मचर्य का उत्तम गुण हम पाते हैं। समय की परंपरा के अनुसार बारह वर्ष की अवस्था में आपका विवाह कर दिया गया। उन दिनों छः–छः, आठ–आठ साल के बाद मुकलावा भेजने की रीति थी अर्थात लड़की शादी के बाद बरसों अपने मायके में रहती थी। चुनाँचे हुजूर की पहली शादी के बाद नौ साल तक मुकलावा नहीं आया। मुकलावा आने में अभी बीस दिन बाक़ी थे कि पत्नी का देहांत हो गया। आप उस समय 21 वर्ष के थे। नया रिश्ता तय होने में 3-4 वर्ष लग गए। इस प्रकार दूसरी शादी तक 25 वर्ष का ब्रह्मचर्य पूरा हो गया। तीस वर्ष तक की सरकारी नौकरी के दौरान कुल 3 महीने पत्नी उनके पास रहीं। बाबाजी

महाराज के चरणों में जाने के कुछ समय के पश्चात गृहस्थ से किनारा कर लिया था। संत जीवों के उद्धार का काम संभालते हैं, तो दुनियादारी के संबंध छोड़ देते हैं। बाबा जी महाराज ने जीवों के उद्धार का काम आपको सौंपने का निर्णय किया, तो श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने भी महाराज कृपाल सिंह जी की पत्नी को बहुत पहले से यह हुक्म दिया था कि वह महाराज कृपाल सिंह जी को पति भाव[16] से न देखें, बल्कि कुल मालिक का रूप समझें। बाबा जी की दया से उन्होंने इस हुक्म का पालन किया। यह ब्रह्मचर्य का प्रताप था कि 80-90 वर्ष की आयु में अठारह–अठारह घंटे बे–थकान काम करते चले जाते थे। उनके साथ क़दम मिलाकर चलना कठिन था। लाखों के समूहों में शेर की तरह गरजते थे। गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य के बारे में अपने जीवन से सारगर्भित संकेत वह देते थे, जिनमें उनके अपने जीवन का प्रतिबिंब दृष्टिगोचर होता था। प्रायः एक व्यक्ति का ज़िक्र किया करते थे, जिसने हुज़ूर से कहा, मेरे पाँच बच्चे हैं और जीवन में पाँच बार गृहस्थ का ता'ल्लुक मैंने किया है।

(ii) गृहस्थ जीवन : हुज़ूर ने गृहस्थ जीवन का ऊँचा आदर्श अपने जीवन में प्रस्तुत किया है। एक ऐसा नमूना दिखाया है, जिसके कारण गृहस्थाश्रम सारे आश्रमों से उत्तम माना गया है। पच्चीस वर्ष का पूर्ण ब्रह्मचर्य था, और फिर पचास साल तक पूर्ण ज्योति के धनी रहे। संसार में रहते हुए और सारे कर्तव्य पूर्ण करते हुए, सब बंधनों से मुक्त थे। शुरू से ही त्याग की प्रवृत्ति थी। लेकिन माता–पिता की इकलौती संतान होने के कारण उनकी सेवा के विचार से त्याग नहीं किया, परंतु संसार में रहते हुए भी त्याग का जीवन था। आपके तीन बच्चे हुए, जिनमें एक भरी जवानी में मर गया। आप फ़रमाते थे, "बेटे की मौत के बाद मैंने अपने दिल पर नज़र मारकर देखा कि कोई दुख तो नहीं माना, बेटे की मौत पर। माश के दाने पर जो थोड़ी सफ़ेदी होती है, उतना भी दुख इस मौत का मेरे दिल पर नहीं था।" शाही और फ़क़ीरी दोनों शानें थीं। शहंशाहों के शहंशाह और फ़क़ीरों के फ़क़ीर थे। फ़रमाते थे, "मुझे गृहस्थी देखना हो तो सिरसा आओ, मेरी फ़क़ीरी देखनी हो तो डेरे चले आओ।"

16. श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने भी महाराज कृपाल सिंह जी की पत्नी को बहुत पहले से यह हुक्म दिया था कि वे महाराज कृपाल सिंह जी को पति भाव से न देखें।

महाराज कृपाल सिंह जी को एक बार कुछ दिन हुज़ूर के पास सिरसा रहने का संयोग हुआ। हुज़ूर ने बेटों को हुक्म दिया कि इनकी अच्छी तरह ख़ातिर करो। महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं कि मुझे इतना खिलाया और वह आदर–सत्कार किया कि उनकी इस मेहमानदारी के कारण मैं जल्दी ही वापस चला आया। शाम को क़स्बे के लोग हुज़ूर महाराज की ड्योढ़ी पर इकट्ठे होते। "सरदार साहब, हमें यह चाहिए, हमें वह चाहिए।" हुज़ूर फ़रमाते, "हाँ भई, ले लो, यह भी ले लो, वह भी ले लो।" जो भी कुछ कोई माँगता, देते चले जाते। हर एक की ज़रूरत को बड़ी दरियादिली से पूरा करते। सिकंदरपुर में बहुत लोग हुज़ूर के दर्शन को जाते थे। सबका पूरा आदर–सत्कार और मेहमान–नवाज़ी होती थी।

(iii) इल्म का शौक़ : हुज़ूर महाराज को सारी आयु अध्ययन का बड़ा शौक़ रहा। आपने विभिन्न धर्मों और मज़हबों के ग्रंथों का अध्ययन किया। आपकी निजी लाइब्रेरी में सब धर्मों की अनमोल पुस्तकें भरी पड़ी थीं। हर एक पुस्तक में हुज़ूर के अपने हाथ की निशानदेही की हुई मिलती है। ऐसे–ऐसे दुर्लभ ग्रंथ हुज़ूर ने इकट्ठे किए, जो छपने में भी नहीं आए थे। उनमें कई ऐसी पुस्तकें थीं, जिनको समाज वालों ने गुप्त रखा हुआ था। उनकी पांडुलिपियों को निकालकर उनकी नक़ल करवाकर हुज़ूर ने अपनी लाइब्रेरी में रखा हुआ था। इनकी अप्रकाशित पुस्तकों में महात्मा चरणदास के ग्रंथ, प्रणामी मत के दुर्लभ ग्रंथ, फ़ारसी ग्रंथों के उद्धरण नक़ल कराके रखे हुए और कई दूसरी पुस्तकें शामिल थीं। एक पुस्तक 'फ़तूहाते मक्की' के लिए हिंदुस्तान, अरब व ईरान आदि में तलाश किया गया। लेकिन वह कहीं न मिली। महाराज कृपाल सिंह जी ने वह पुस्तक मिस्र से मँगवाकर हुज़ूर की सेवा में प्रस्तुत की। हुज़ूर महाराज ने मुसलमान फ़क़ीरों, मौलाना रूम, ख़्वाजा हाफ़िज़, शम्स तबरेज़, मुजद्दद अल्फ़सानी आदि के कलामों को पढ़ा, कुरान शरीफ़ की तालीम को समझा, वेदांती महात्माओं से वेद–शास्त्रों की जानकारी प्राप्त की। एक बौद्ध भिक्षु से बुद्ध–मत और जैन–मत की पुस्तकें पढ़ी, अंजील का अध्ययन किया और उसकी शिक्षाओं के बारें में पादरियों से बातचीत करके आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया।

सत्य एक ही है, परंतु यह सारे धर्मग्रंथ, जिनमें सत्य का वर्णन है, हमारे लिए sealed books, मोहरबंद किताबें हैं। अतः हम उन्हें पढ़ तो सकते हैं, परंतु उनके सही अर्थ को नहीं समझ सकते, जब तक कोई अनुभवी पुरुष, जिसने उस सत्य को प्राप्त किया है, जो उसका व्यक्तिगत अनुभव रखता है, इन ग्रंथों का अर्थ खोलकर न समझाए। हुज़ूर महाराज ने धर्मग्रंथों की शिक्षा को समान विचारों के रूप में प्रस्तुत किया। उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी महाराज कृपाल सिंह जी को भी शुरू ही से धर्मग्रंथों के अध्ययन में बड़ी रुचि रही है, जिसे श्री हुज़ूर महाराज जी की संगति ने और भी उभार दिया। महाराज कृपाल सिंह जी ने संतों–महात्माओं की वाणियों और सूफ़ियों के कलामों के अतिरिक्त western thought अर्थात पश्चिम के धर्माचार्यों के विचारों का भी गूढ़ अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त तीन–सौ से अधिक महापुरुषों के जीवन–वृत्तांत पढ़े हैं। मुलतान की 'शांति जीवन लाइब्रेरी' की सारी पुस्तकें, जो पश्चिमी विचारों पर आधारित थीं, आपने पढ़ डाली। श्री हुज़ूर महाराज जी ने अपनी लाइब्रेरी की देखभाल का कार्यभार इनको सौंप रखा था। वह फ़रमाते थे, "कृपाल सिंह, यह लाइब्रेरी मैं बना रहा हूँ, तुम इसे व्यवस्थित ढंग से चलाना।" इस सारी खोज और अनुसंधान–कार्य का निचोड़ 'गुरुमत सिद्धांत' के रूप में प्रकट हुआ, जिसे महाराज कृपाल सिंह जी ने लिखा और श्री हुज़ूर महाराज ने सुना और उस पर अपनी स्वीकृति प्रदान की थी और अपने प्रिय गुरुमुख के अनुरोध पर उसे अपने पवित्र नाम से छपवाने का सम्मान प्रदान किया था।

(iv) नम्रता और मृदुभाषिता : गुरुवाणी में आया है, *"मिठतु नीवीं नानका गुण चंगियाईयां ततु"* – आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰470) अर्थात नम्रता और मृदुभाषिता सारे गुणों का सार है। हुज़ूर इस तुक में प्रस्तुत आदर्श का जीवित उदाहरण थे। अपने आपको हमेशा दास या गुनहगार बंदा वह कहते थे। कई बार नम्रता से ऐसे–ऐसे शब्द अपने बारे में प्रयोग करते थे कि सुनने वाला कानों पर हाथ रख लेता था। सादा रहन–सहन था, परंतु हर बात से शाही जलाल[17] टपकता था।

17. एक बार हुज़ूर सहज–स्वभाव में बैठे थे। किसी अवस्था में बैठे हों, उनकी निराली शान थी। चौकड़ी मारे हुए, घुटनों पर मुट्ठियाँ बांधे हुए, जैसे हर चीज़ हाथों में ही है, कब्ज़े में है। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "हुज़ूर, आपकी हर अदा बादशाहों वाली है।"

हुज़ूर महाराज की बीमारी की बात है। महाराज कृपाल सिंह जी सेवा में थे। फ़रमाया, "कृपाल सिंह! हुज़ूर स्वामी जी महाराज की विनती पढ़कर सुनाओ,

गुरु मैं गुनहगार अति भारी।।

– सार बचन, पद्य (बचन 29, शब्द 3)

वाणी आपने पढ़नी शुरू की। इस विनती की हरेक तुक में शिष्य अपनी अयोग्यता और नालायक़ी का रोना रोता है और गुरु से क्षमा–याचना करता है। महाराज कृपाल सिंह जी पढ़ते जाते थे और हुज़ूर सच्चे पादशाह की आँखो से छम–छम आँसू बहते जाते थे। वह महापुरुष जिसके दर्शन मात्र से दिल की सारी मलिनता धुल जाती थी, जिसकी दृष्टि मात्र से सुरत (आत्मा) पिंड को छोड़कर दिव्य–मंडलों पर विचरने लगती थी, गुरु के दरबार में गुनाहगार बनकर खड़ा था। नम्रता का कितना ऊँचा आदर्श हमारे समक्ष उन्होंने प्रस्तुत किया है।

(v) हुज़ूर की व्यस्तता : हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि मन को कभी ख़ाली न रहने दो। हुज़ूर का सारा जीवन ही व्यस्तता का जीवन था। काम को पूजा समझकर किया करते थे। सुबह से शाम तक कार्य–व्यस्त रहते। जब देखो, कुछ न कुछ करते दिखाई देते– सत्संग या परमार्थ की चर्चा, अध्ययन या भजन। दोपहर के समय जब लोग समझते थे कि हुज़ूर आराम कर रहे होंगे, उस समय वह महापुरुषों की वाणियों का अध्ययन कर रहे होते। सत्संगत की सेवा में भूख–प्यास उड़ जाती थी। अपने आराम का ज़रा भी ख़्याल नहीं करते थे। चुनाँचे एक पत्र में अपने उत्तराधिकारी को हुज़ूर ने लिखा, "बरख़ुरदार कृपाल सिंह, बे–आरामी हम संतों की जागीर है।" एक समय जून–जुलाई के मौसम में जब तेज़ गर्मी पड़ रही थी, हुज़ूर डेरे में थे। सेवा में निवेदन किया कि हुज़ूर डलहौज़ी ठहरिए, वहाँ आपकी कोठी है। यहाँ बहुत गर्मी पड़ रही है। वहाँ क्यों नहीं चले जाते? हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह लोग समझते हैं मैं वहाँ ठंडी हवाएँ लेने जाता हूँ। मैं तो इसलिए जाता हूँ कि भारत भर से अमीर तबके लोग वहाँ जाते हैं। उनमें कई जिज्ञासु भी होते हैं, उनका काम हो जाए।" ईसा मसीह से भी यह सवाल पूछा गया था कि तुम इधर–उधर मारे–मारे क्यों फिरते हो? उन्होंने जवाब दिया था कि मेरी बहुत–सी भेड़ें खो गई हैं। मैं उन्हें खोजता फिरता हूँ।

सत्संगत हुज़ूर को जान से भी प्रिय थी। फ़रमाते थे, "संगत मुझे पहले है, मेरे बच्चे पीछे हैं।" बाहर दौरे पर जाते, तो संगत के आराम की चिंता पहले करते। शुरू–शुरू में जब हुज़ूर ने नौकरी से रिटायर हो. कर स्थाई रूप से डेरे में निवास किया, उन दिनों भी बहुत बड़ी संख्या में लोग बाहर से दर्शन करने और सत्संग सुनने के लिए वहाँ जाया करते थे। आते–जाते रास्ते में नाला पार करना पड़ता था। अंधेरे में, विशेषकर बरसात के मौसम में, इस नाले के कारण बाहर से आने वालों को बड़ी कठिनाई होती थी। हुज़ूर ने डेरे वालों और आस–पास के गाँवों के लोगों से कहा कि मिल–जुलकर नाले का कुछ हिस्सा पाट दो, ताकि लोगों का कष्ट दूर हो जाए। लोगों ने कहा, "हाँ जी, कर लेंगे।" लेकिन बाद में ढीले पड़ गए। दो–तीन बार हुज़ूर ने स्मरण भी दिलाया, लेकिन किसी ने भी उद्यम नहीं किया। आख़िर एक दिन रात के आख़िरी पहर तीन बजे के लगभग, जब लोग गहरी नींद सोए पड़े थे, हुज़ूर महाराज ने कुदाल और फावड़ा कंधे पर रखा, टोकरी हाथ में ली और अकेले ही चल पड़े। एक किसान ने हुज़ूर की मस्त चाल से उन्हें पहचान लिया और अपने दो–एक साथियों को दिखाया। होते–होते समाचार सारे क्षेत्र में फैल गया। लोग टोकरी, फावड़े आदि लेकर दौड़े। हुज़ूर ने अभी चंद टोकरियाँ ही डाली थीं कि लोगों ने उन्हें अलग कर दिया। दो–तीन सौ आदमी नाला पाटने के काम में जुट गए और नाला पाटकर लोगों के गुज़रने के लिए रास्ता बना दिया।

(vi) समता भाव : महापुरुषों का हृदय बड़ा विशाल होता है। उनकी नज़र परमात्मा की नज़र होती है। वह सबसे प्रेम करते हैं। वह बाहरी शक्लों–बनावटों को नहीं देखते कि यह हिंदू है, यह मुसलमान है, यह सिक्ख है, यह ईसाई है। उनकी नज़र में इंसान–इंसान सब एक हैं। सब आत्मा देहधारी हैं। आत्मा परमात्मा की अंश है। परमात्मा महाचेतनता का एक सागर है, आत्मा उस अपार जीवन–सागर की एक बूँद है। हुज़ूर महाराज फ़रमाया करते थे कि परमात्मा ने तो इंसान बनाए हैं। उसने मोहरें लगाकर नहीं भेजा कि आप कौन हैं? फ़रमाया, "अगर परमात्मा हिंदू है, तो मैं हिंदू हूँ, मुसलमान है तो मैं मुसलमान हूँ। जाति–पाँति तो हमारी ही बनाई हुई हैं, आत्मा की जाति वही है, जो परमात्मा की जाति है।"

संत–महात्माओं ने, विशेषकर हुज़ूर ने, बाहरी रीति–रिवाज़ को विशेष महत्त्व नहीं दिया। वह कहते थे, "जिस समाज में तुम हो, वह समाज तुम्हें मुबारक। अपनी–अपनी समाजों में रहो, अपने–अपने रीति–रिवाज़ रखो। सत्य को पाओ, जो सब समाजों का आदर्श है। समाज–धर्म की परंपराएँ और कर्मकांड इत्यादि भूमि की तैयारी के लिए हैं, उनसे लाभ उठाओ। नेक–पाक, सदाचारी बनो और साथ ही अपनी आत्मा को प्रभु से जोड़ो, जो सब समाजों का सम्मिलित आदर्श है, जिसकी ख़ातिर तुम किसी एक या दूसरे समाज में प्रवेश पाए हुए हो। किसी भी समाज में रहकर तुम यह काम कर सकते हो।" वह फ़रमाया करते थे, "नाम की दौलत सबके अंदर है, हिंदू निकाल ले उसकी है, मुसलमान निकाल ले उसकी है, ईसाई निकाल ले उसकी है। अध्यात्म या रूहानियत किसी विशेष समाज या मज़हब का एकाधिकार नहीं है। सब समाज मुझे प्रिय हैं, मुसलमान भी प्रिय हैं। तुम किसी भी समाज के हो, मुझे तुमसे प्यार है।" सत्गुरु की यही निशानी है :

नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ जो सभसै लए मिलाइ जीउ।

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰1, पृ॰72)

वह सबको मिलाकर बैठते थे। उनके चरणों में सब समाजों, क़ौमों और फ़िरक़ों के लोग जाते थे। वहाँ जाकर किसी को यह आभास नहीं रहता था कि कौन हिंदू है, कौन मुसलमान है। साथ में कौन बैठा है, यह भी होश किसी को नहीं रहता था। वहाँ बैठे सब लोग एकता के रंग में रंग जाते थे।

एक समय कुछ आर्यसमाजी भाई हुज़ूर के पास गए कि महाराज, लंगर में यह जाति–पाँति का भेदभाव उड़ा दो। हुज़ूर फ़रमाने लगे, "भाई, हमारे सत्संग में कोई जाति–पाँति का भेदभाव नहीं है। किसी देश, किसी जाति या किसी धर्म का भी व्यक्ति हो, जहाँ चाहे जाकर बैठ जाए। हरेक समाज का भाई यहाँ आ सकता है। लंगर भी पकता तो एक ही जगह है, परंतु आप लोगों के मन में जो यह भेदभाव है, यह राजपूत है, यह जाट है, यह फ़लाना है, इन जकड़ों के कारण जिन तंगदिल लोगों को एक–दूसरे से घृणा है, उनकी ख़ातिर लंगर में अलग–अलग बिठाकर खाना खिला देते हैं, ताकि ऐसे लोग भी जो जाति–पाँति की जकड़ से अभी मुक्त नहीं हुए हैं, आध्यात्मिक निधि से वंचित न रह जाएँ। यह ऊँच–नीच का भेद आप मिटा दें, हमारा तो पहले से ही मिटा हुआ है।" फिर हुज़ूर महाराज को यह कहा

गया कि महाराज, आप कोई नया समाज बना लो। फ़रमाया, "कुएँ आगे ही बहुत हैं और कुआँ लगाने की क्या ज़रूरत है? मतलब तो पानी से ही है।"

महापुरुष समाजों को न तो तोड़ते हैं और न नया समाज बनाते हैं। वह सब समाजों और क़ौमों को अपना समझते हैं। सब समाजों को पुष्टि प्रदान करते हैं। पुसावा के राव शिवध्यानसिंह जी, जब हुज़ूर महाराज के चरणों में आए, तो अपने साथ अपने ठाकुर[18] भी लाए, जिनकी पूजा करना नित्य-नियम था। हुज़ूर महाराज ने राव साहब को ठाकुरों के लिए एक अलग कमरा दिया था। सत्संग सुनने के बाद जब तत्त्व को समझा और 'नाम' लिया, तो ठाकुर दृष्टि से उतर गए। गुड्डे-गुड्डी के ब्याह शादी के खेल लड़कियाँ तभी तक खेलती हैं, जब तक उनकी अपनी शादी नहीं होती। शादी के बाद गुड़ियों का खेल कौन खेलता है! राव साहब हुज़ूर के पास गए कि महाराज इन ठाकुरों का क्या करूँ? हुज़ूर ने फ़रमाया, "तुम्हारी ठाकुर पूजा सफल हुई, तुमको 'नाम' मिल गया। अब इन्हें सत्कार सहित अपनी रीति और विधि के अनुसार जल प्रवाह कर दो।" इसी प्रकार एक बार डेरे में एक मुसलमान सत्संगी का देहांत हो गया। उसके घर में भी सभी सत्संगी थे। उन्होंने हुज़ूर से निवेदन किया कि हम मृतक शरीर का दाह-संस्कार करना चाहते हैं। हुज़ूर ने बड़ी सख़्ती के साथ मना किया। फ़रमाया, "तुम्हारी शरीयत (समाज-धर्म मर्यादा) में मुर्दों को दफ़नाने का क़ानून है। शरीयत के विरुद्ध कोई काम न करो।" चुनाँचे हुज़ूर ने स्वयं जाकर कफ़न-दफ़न का प्रबंध किया और जनाज़े में सम्मिलित हुए।

एक बार हुज़ूर मुलतान तशरीफ़ ले गए। उनके जाने से पहले वहाँ हिंदू-मुस्लिम दंगा हो चुका था। आप वहाँ गए, उपदेश दिया। लोगों ने

---

18. इसी प्रकार का एक उदाहरण महाराज कृपाल सिंह जी के समय का भी है। रोहतक के एक बूढ़े वकील, मधोक साहब ने आपसे 'नाम' लिया। वह कुंभक करते थे और योग-विद्या में बड़े माहिर थे। ठाकुरों की पूजा करते थे। महाराज कृपाल सिंह जी उनके घर गए, तो देखा कि ठाकुरों की मूर्तियों पर गर्दा जमा हुआ है, उनके ऊपर महाराज कृपाल सिंह जी की बहुत बड़े आकार की एक तस्वीर रखी हुई है। पूछा, "यह क्या है?" कहने लगे, "यह सबसे बड़ा ठाकुर है।" इन वकील साहब का देहांत हो चुका है, बड़े प्रेमी-सत्संगी थे। एक दिन दस हज़ार के नोट लेकर चरणों में रख दिए, महाराज जी ने वापस कर दिए। फिर वसीयत में सारे रुपए महाराज जी के नाम लिखा गए, लेकिन उन्होंने वह रुपए लेने से इंकार कर दिया (यह वृत्तांत राव साहब ने स्वयं सुनाया था)।

सुना तो कहने लगे, "महाराज आप पहले आ जाते, तो यह हिंदू–मुस्लिम दंगा न होता।" यह दंगे–फ़िसाद ग़लत प्रचार का दुष्परिणाम हैं। अनुभवी पुरुषों की कमी के कारण ही यह सारे झगड़े और फ़िसाद के सामान बने। पेड–प्रचार[19] कहो, पेट–प्रचार कहो, उसमें सिवाए इसके कि हम ऊँचे हैं, तुम नीचे हो और क्या निकलेगा? कबीर साहिब ने कहा, *"सभी भुलानो पेट के धंधा।"* किसी शरीयत में, समाज में रहकर जो काम करना था अर्थात अपने आपको जानना और परमात्मा को पाना, जो कि सब समाजों का आदर्श है, वह काम तो करते नहीं, जकड़ों और बंधनों में रह जाते हैं।

चाले थे हरि मिलन कउ बीचै अटकिओ चीतु।।

– आदि ग्रंथ (सलोक कबीर, पृ°1369)

किसी समाज में दाख़िल हुए थे, प्रभु को पाने के लिए। वह उद्देश्य, वह लक्ष्य किनारे रह गया। हम समाजों के बनाने में रह गए। किसी समाज में रहना एक बरक़त है, सौभाग्य है, परंतु जकड़ों में रह जाने से हमने उस परम लक्ष्य को भुला दिया, जिसके लिए हम किसी एक या दूसरे समाज में दाख़िल हुए थे। ऐसी स्थिति चतुराई और दुविधा का कारण बन जाती है। गुरु नानक साहिब ने फ़रमाया है :

जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए सो अंमृत गुर पाही जीउ।।
छोडहु वेसु भेख चतुराई दुबिधा इहु फलु नाही जीउ।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म°1, पृ°598)

अनुभवी पुरुष जोड़ने आते हैं, तोड़ने नहीं, वह सब समाजों की पुष्टि करते हैं :

तू बराए वसल करदन आमदी, ने बराए फ़सल करदन आमदी।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.173)

महापुरुष जब आते हैं, सबको मिलाकर बैठते हैं। उनका ख़ास मिशन, कार्य है– जीवों को चेताना, उन्हें प्रभु से जोड़ना। लोग उन्हें

19. प्राचीन काल मे प्रचार का अधिकार केवल अनुभवी पुरुषों को था। 25 वर्ष तक ब्रह्मचर्य, जिसमें वेद–शास्त्रों का अध्ययन किया जाता, फिर वेद–शास्त्रों के ज्ञाता होने के बाद गृहस्थाश्रम में जाते। एक–दो बच्चे होने के बाद जंगलों की राह लेते अर्थात वानप्रस्थ। जंगलों में जाकर सत्य को प्राप्त करने के लिए साधन करते। फिर अनुभव प्राप्त करने के पश्चात सन्यास लेकर जगह–जगह घूमकर प्रचार करते थे।

बुरा–भला भी कहते हैं। उनका निजी स्वार्थ कोई नहीं होता। वह कहते हैं, 'Truth,' हक़ीक़त अर्थात सत्य, जो चला आ रहा है, वह क़ायम रहे। इसमें यदि उनका सर्वस्व भी चला जाए, तो कोई चिंता नहीं। उन्होंने मालिक की याद में जो पाया, उसे वे लोगों में बाँटते हैं और लुटाते चले जाते हैं। कहीं फूल मिलते हैं, कहीं पत्थर। सत्य को फैलाने में हमेशा विरोध हुआ करता है। अतः हुज़ूर महाराज को भी शुरू में घोर विरोध का सामना करना पड़ा, जिसका वर्णन पहले आ चुका है। महापुरुष विरोध पर ध्यान नहीं देते। उनकी दृष्टि में सब मनुष्य–जाति एक कुटुंब है, कुनबा है परमात्मा का।

बनी आदम आअज़ाए यक दीगर अन्द,
किह् दर आफ़्रीनश ज़ यक जौहर अन्द।

— शेख़ सादी, गुलिस्तान (पृ.42)

क़ाफ़िर हो या मोमिन, आस्तिक हो या नास्तिक, पापी हो या पुण्यवान, वह सबसे प्रेम करते हैं। हुज़ूर के जीवन का एक दृष्टांत इस संदर्भ में सामने आता है। जिन दिनों हुज़ूर मरी पहाड़ पर एस.डी.ओ. लगे हुए थे, उन दिनों की बात है। आप अपनी कोठी पर नहीं थे, कहीं बाहर गए हुए थे कि पीछे से कोई नास्तिक, जो तपेदिक का रोगी था, निवास के लिए जगह ढूँढता हुआ वहाँ आया। डॉक्टरों ने उसके लिए मरी पहाड़ की रिहायश बताई थी। वह सारी कोठियों में फिरा, पर किसी ने उसको जगह नहीं दी। एक तो तपेदिक का रोगी, दूसरे नास्तिक, सबने इंकार कर दिया। वह व्यक्ति हुज़ूर की कोठी पर पहुँचा। वहाँ सरदार गज्जासिंह मौजूद थे। उन्होंने भी जवाब दिया, हमारे पास जगह नहीं। वह व्यक्ति निराश लौट रहा था कि हुज़ूर ड्यूटी से वापस आ गए। उन्होंने दूर से देखा कि कोई आदमी कोठी से वापस जा रहा है। सरदार गज्जासिंह से पूछा, "यह कौन था?" उन्होंने बताया, "यह तपेदिक का रोगी है, किसी ने उसे जगह नहीं दी क्योंकि वह नास्तिक है।" हुज़ूर ने पूछा, "तुमने क्या जवाब दिया?" गज्जासिंह ने कहा, "मैंने भी इंकार कर दिया है क्योंकि वह नास्तिक है।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "देख गज्जासिंह, इसमें आत्मा है कि नहीं?" गज्जासिंह बोला, "हाँ, है।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "आत्मा परमात्मा की अंश है। अगर उसे

यह बात मालूम नहीं, हमें तो मालूम है, हम तो जानते हैं।" हुज़ूर ने उस व्यक्ति को रहने की जगह दे दी।

पाकिस्तान बनने के दिनों में जब दोनों ओर लूट–मार का बाज़ार गर्म था, हुज़ूर ने तीन–सौ के क़रीब मुसलमानों को डेरे में आश्रय दिया और उन्हें सुरक्षित पाकिस्तान भेजने का प्रबंध किया। हुज़ूर अमृतसर जा रहे थे, तो पाकिस्तानी फ़ौज की सुरक्षा में रिफ़्यूजी मुसलमान, हिंदुस्तान से पाकिस्तान जा रहे थे। मेजर शिवसिंह हुज़ूर महाराज के साथ थे। उन्होंने बहुत रोका, लेकिन हुज़ूर ने पाकिस्तानी मिलिटरी की पंक्तियों के बीच में जाकर कार खड़ी करवा दी और पाकिस्तानी कमांडर से कहा, "मेरे पास तीन–सौ मुसलमान भाई हैं, उन्हें सुरक्षा से वापस वतन पहुँचा दो। देखना हमारे मुसलमान भाइयों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

हुज़ूर के ज्योतिर्मय व्यक्तित्व का प्रभाव

संतों के व्यक्तित्व के सौंदर्य और दिव्य आभा का वर्णन कौन कर सकता है! उनकी शिक्षा से ग्रंथ भरे पड़े हैं। लेकिन उनका सही अर्थ भी हम नहीं समझ सकते, जब तक कोई अनुभवी पुरुष, जिसने उस गति को प्राप्त कर लिया, खोलकर न समझाए। संतों के व्यक्तित्व में, उनके रंग–रूप–आकार में, उनकी हर अदा में उस अनंत, अपार, अकथनीय प्रभु–सत्ता की अभिव्यक्ति होती है, जो सब खंडों–ब्रह्मंडों को बनाने वाली है और उनको लिए खड़ी है। परमात्मा प्रेम है, संत सदेह–प्रेम होते हैं। भाषा और लेखन को यह शक्ति ही नहीं दी गई कि वह प्रेम की अवस्था का वर्णन कर सके। हुज़ूर की शक्ल–सूरत निराली थी। उनको देखकर कुदरती परमात्मा की याद आ जाती थी। जो भी उन्हें पहली बार देखता अनायास पुकार उठता, "क्या निराली शान है!" सुरतिवंत होने के कारण सत्संग में बैठे लोगों की अंतरात्मा को आकृष्ट करते थे। लाखों के जन–समूह में कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती थी। उनमें आध्यात्मिक सौंदर्य था, जो दिलों को अपनी ओर आकर्षित करता था। वह दिव्य सुरा से उन्मादित नयन, वह ज्योतिपूर्ण मुख–मंडल, जो गुलाब के फूल की तरह सदैव खिला रहता था, वह उन्नत ललाट जिस पर तीन–तीन ज्योति लट–लट करती नज़र आती थी। जैसे–माथे पर लाल चमकता हुआ तिलक लगा हो, वह बब्बर शेर–सी आँखें, वह

भृकुटि रेखा, दाहिने कपोल पर वह काला तिल, जिसको देखकर बे–अख़्त्यार दिल पुकार उठता था।

बख़ाले-हिन्दुवश बख़्शम समरक़ंदो-बुख़ारा रा।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.30)

अर्थात तेरे कपोल पर जो काला तिल है, उस पर समरक़ंद और बुख़ारा का मैं राज्य न्यौछावर कर दूँ। यह उनकी लंबी नूरानी सफ़ेद दाढ़ी, सफ़ेद दस्तार, श्वेत वस्त्र और उनमें से छन–छनकर निकलती प्रेम की, अध्यात्म की किरणें, जो सारे मंडल को आध्यात्मिक प्रकाश से जगमगा देती थीं, हृदय की सारी मलिनता और कालिख को धो देती थीं– प्यार भरी वे निगाहें, जो माँ के प्यार के समान दिलों में उतर जाती थीं– वह छड़ी हाथ में लेकर मस्ती से चलना– वह उनकी चकोर जैसी मद–भरी चाल जिन्होंने देखी है, वही जानते हैं।

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।।

– रामचरितमानस (बालकांड दोहा 229, चौपाई 1)

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि आँखें, जिन्होंने तुझे देखा, उनके पास ज़बान नहीं वर्णन करने को और ज़बान, जो बयान करने वाली है, उसके आँखें नहीं। यह देखने का मज़मून है, और देखने–देखने में अंतर है। किसी को वह इंसान नज़र आते, किसी को देवता और किसी को परमात्मा। किसी को उनके दिव्य मुख–मंडल पर लट–लट करती नूर की किरणें फूटती नज़र आती। जितनी–जितनी जिसकी एकाग्रता थी, उतनी–उतनी झलक उसे मिलती थी, उस दिव्य–सौंदर्य की, उस प्रभु–सत्ता की, जो उनके मानव शरीर में प्रकट थी और जिस पर लोग परवाने की तरह न्यौछावर होते थे।

जहां हुस्न नहीं, इश्क़ भी पैदा नहीं होता
बुलबुल गुले-दीवार पर शैदा नहीं होती

वे 'नाम–सदेह' थे।

नाम मिलै मनु तृपतीऐ

– आदि ग्रंथ (सिरी म॰3, पृ॰40)

उनको देखकर सब भूख–प्यास उड़ जाती थी। बच्चा जब माँ के सामने आए, तो उसके तन–मन में ठंडक की धारा–सी चलती है। हुज़ूर

के जीवनकाल में, जब कभी वहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त होता, वह ठंडक नसीब होती थी।

तनु मनु होइ निहालु जा गुरु देखा सामृणे।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰758)

श्री गुरु रामदास भी फ़रमाते हैं, "जब मैं उस प्रीतम को, सत्गुरु को देखता हूँ, तो मेरे तन–मन में ठंडक–सी पड़ जाती है।" यह एक ऐसा अनुभव है कि जिस पर यह अवस्था बीत चुकी है, वही इसे जान सकता है। *"घायल की गति घायल जाने, और न जाने कोय।"* – मीराबाई की शब्दावली (2, शब्द3, पृ॰4) जिसको किसी ऐसे महापुरुष के चरणों में बैठने का अवसर प्राप्त हुआ है, वही इस अवस्था को जान सकता है। हुज़ूर के चरणों में वह ठंडक महसूस होती थी। दूर से पगड़ी का कोना भी नज़र आ जाए, तो सिर से लेकर पाँव तक ठंडक की लहर दौड़ जाती। जब उनके सामने जाते, फ़रमाते– "सुनाओ, आ गए!" दिल हरा–भरा हो जाता। ऐसे महापुरुष के चरणों में जाने से, जिनके अंतर मालिक के नशे की धारा चलती है, क्यों न ठंडक महसूस होगी? कई लोग हुज़ूर से आँखें चार होने पर खड़े के खड़े रह गए। वह उनमें समा गए, सारा शरीर उनका सुन्न पड़ गया। जितना–जितना उस महापुरुष ने अपना परिचय दिया, अपना–आप दिखाया उतना–उतना ही हम उन्हें देख सके। पर जैसे वह थे, उस यथार्थ स्वरूप में किसने उन्हें देखा।

शुनीदा अम् किह् जमाले तो दीदा अंद बसे।
वले आंचुनां किह् तोई आंचुनां नदीद कसे।

अर्थात हे सत्गुरु, हज़ारों लोगों ने तेरी भव्य छवि देखी, लेकिन जैसा तू था, वैसा किसी ने तुझे नहीं देखा। किसने देखा? जिसको उसने आँख दी, देखने की। ईसा मसीह के जीवन का एक दृष्टांत है। एक बार आपने बारह शिष्यों को बुलाकर पूछा, "बताओ मैं कौन हूँ?" किसी ने कहा, तू जोज़फ़ का बेटा है, किसी ने कहा, तू नासरा का रहने वाला है। किसी ने कुछ कहा, तो किसी ने कुछ। जब पीटर से पूछा गया, तब उसने कहा, "तू मसीहा है, जीवित ख़ुदा का बेटा।" यह जवाब सुन मसीह ने फ़रमाया, "यह बात, जो तूने कही है, किसी मानवीय बुद्धि के

सहारे नहीं कही है, वरन् मेरे पिता ने तुझसे यह कहलवाया है।" कितने लोग थे, जिन्होंने साइमन की तरह उसे ख़ुदा के बेटे के रूप में देखा या सदेह–ब्रह्म देखा। उसी ने देखा, जिसको उसने अपना–आप दिखाया और वही उसे जान सकता है, और जिस हद तक वर्णन किया जा सकता है, बयान कर सकता है। अतः संतों की कहानी, संतों की अपनी ज़बानी ही बयान होती चली आई है, क्योंकि यह मन–बुद्धि के परे का मज़मून है। कोई गुरुमुख ही इसे बयान कर सकता है, जिसके अंतर गुरु बोलता है, जो गुरु का मुख बन गया है।

वह (गुरुमुख) मन–बुद्धि के घाट पर नहीं बोलता। जैसी मालिक की धारा चलती है, वह बयान करता चला जाता है। 'Out of the abundance of heart a man speaks' अर्थात अंतर की जो अवस्था है, मुख से जो शब्द निकलते हैं, उसी रंग में रंगे हुए निकलते हैं। जिस महापुरुष की याद में ठंडक है, आनंद है, उसके वर्णन में, ज़िक्र में भी ठंडक और उभार मिलना चाहिए। शब्द, चाहे कैसे ही उन्हें घड़ा जाए, बैट्री की प्लेट के समान बेजान हैं। बैट्री चार्ज हो जाए, तो उसमें से करंट निकलता है। ऐसे ही वह शब्द, जो अनंत जीवन–स्रोत से निकले हैं, वही जीवनदायक उभार दे जाते हैं। अध्यात्म का आदि–अंत, संतों का व्यक्तित्व ही तो है।

'Word was made flesh and dwelt among us.'

शब्द सदेह हुआ और हमारे समक्ष बसा।

— पवित्र बाइबिल (जॉन 1:14)

वह 'शब्द' कहो, 'नाम' कहो, 'व्यक्त प्रभु–सत्ता' कहो, सदेह हो गई और हम मनुष्यों के बीच में आकर रहने लगी। सहजातीयता प्रकृति का प्रमुख गुण है। इंसान का उस्ताद इंसान ही हो सकता है। हम मानवता के स्तर से संतों को देखते हैं। फिर जैसे–जैसे उनकी दयामेहर और सोहबत–संगति के प्रताप से हमारी दृष्टि ऊँची होती जाती है, उतना–उतना हम उनकी महानता को समझते जाते हैं। होते–होते यह अवस्था बनती है, वही हमें चलते–फिरते परमात्मा नज़र आने लगते हैं। यह कहानी कहाँ से शुरू हुई? व्यक्तित्व से। और जब इंसान के चोले में वह परमात्मा दिखाई देने लगता है, तो उस मानव–देह की क़ीमत और भी बढ़ जाती है।

यह बात महापुरुषों की वाणी से स्पष्ट होती है, उनके वचनों से, जिन्होंने उस गति को प्राप्त किया।

दीनो दुनिया दर कमंदे आं परी रुख़सारे मा।
हरदो आलम क़ीमते यक तारे मूए यारे मा।

शिष्य जब गुरु की शान को बाहिर्मुखी और अंतर्मुख, दोनों हालतों में देखता है, तो उसको अंतर में रंग या नशा आता है। वह मिकनातीसी ताक़त उसको खेंचती है। वह उसे किसी और रंग में देखता है, जिसमें आम दुनिया उसको नहीं देख रही। ऐसे महात्मा दुनिया में आते रहे, दुनिया ने उन्हें अपने स्तर से देखा। जिनकी आँखें खुलीं, जिनको अंतर्मुख अपने आपकी सूझत हुई, जिनके हृदय में प्रभु को प्राप्त करने के लिए तीव्र अभिलाषा हुई, उनके अंतर तड़प और विरह–विह्वलता का संचार हुआ, उनको इस रास्ते में जब उनकी दयामेहर से अंतर्मुख शांति मिली, तो उसकी प्रशंसा में अनायास ही उनकी अंतरात्मा से वह शब्द निकले, जो आम लोगों के दिलों से निकल नहीं सकते।

भाई नंदलाल साहिब दशम गुरु साहिब के समय में हुए, बड़े विद्वान थे। गुरु साहिब से जब उनको अनुभव की संपत्ति मिली, आँख खुली, मालिक को चलते–फिरते किसी मानवीय प्रकाश–स्तंभ पर काम करते देखा, तो उनकी प्रशंसा कर रहे हैं कि वह परी रुख़सार, मेरा गुरु जो है, उसके अंतर एक सौंदर्य की आभा है, अध्यात्म की। जहाँ सौंदर्य होगा, आकर्षण भी होगा। जहाँ कोई ख़ूबसूरती न हो, वहाँ लगन, इश्क़ और प्रेम भी पैदा नहीं होता। दीवार पर फूल बने हों, तो बुलबुल वहाँ चहचहाती नहीं। वहीं वह चहचहाएगी, जहाँ सचमुच के फूल खिल रहे हों। ऐसे ही जहाँ आध्यात्मिकता का विकास किसी मानव घट पर हो रहा हो, वहाँ वह उसको अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और अनायास उसकी लगन लग जाती है। तो फ़रमाते हैं, दीन और दुनिया, लोक–परलोक, दोनों ही उसकी कमंद में बँधे पड़े हैं। दुनिया के लिहाज़ से वह सदाचारी है, ब्रह्मचारी है, नेक–पाक है, अहिंसा को, सत् को धारण किए हुए है। उसके अंतर में सबके लिए प्रेम है, दया–भाव है। उसका जीवन निष्काम–सेवा के निमित्त है। यह तो हुआ सांसारिक, व्यावहारिक दृष्टि से। आध्यात्मिक दृष्टि से वह प्रकाश–स्तंभ है, जिस पर अध्यात्म रूपी सूर्य उदय

होकर संसार को प्रकाशमय कर रहा है। वह हर पहलू में पूर्ण है। ऐसा कोई पुरुष देखने में आए, तो स्वाभाविक है कि इंसान के दिल में उभार पैदा होता है। वह चाहता है, सब कुछ उस पर कुर्बान कर दूँ। तो कहते हैं कि वह जो मेरा है, मेरा प्रीतम है, जी करता है उसके एक–एक बाल पर लोक–परलोक दोनों को न्यौछावर कर दूँ। आगे कहते हैं :

मा नमे आरेम ताबे गमजए मिजगाने ऊ,
यक निगाहे जाँफिज़ायश बस बुवद दरकारे-मा।

— दीवाने–गोया (ग़ज़ल 2, पृ.10)

कहते हैं, उस मानव घट में अध्यात्म का विकास हो रहा है। उसमें दिव्य–किरणें निकल रही हैं। जब वह आँख की पलकों को ऊपर–नीचे करता है, तो मैं उसकी ता'ब नहीं ला सकता। उसकी दयामेहर की एक दृष्टि मेरे लिए काफ़ी है। मेरा दीन, मेरी दुनिया, मेरा ख़ुदा, सब कुछ उसी में आ गया। मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं कि एक शराबी अगर प्याले में शराब छलकती हुई देखे, तो उसकी रूह, आत्मा, कई बार ऊँची–नीची होती है। ऐसे ही गुरु को देखकर मेरी अंतरात्मा में ज्वार–भाटा पैदा होता है। हज़रत बाहू साहिब इसी प्रसंग में कहते हैं कि यदि मेरा रोम–रोम आँख बन जाए और इतनी सारी आँखों के साथ मैं अपने गुरु को, मुर्शिद को देखता रहूँ, फिर भी, *"मुर्शिद वेख नां रज्जा हू।"* फिर भी मुझे संतुष्टि नहीं होती। उसको देखकर नए से नया रंग आता है। कारण? इंसान के अंदर परमात्मा मौजूद है। हमारी आत्मा की वह आत्मा है, हमारा जीवनाधार है। उसके बिना हम जी ही नहीं सकते। वह प्रभु–सत्ता है तो सबमें, लेकिन कहीं प्रकट है, कहीं गुप्त है।

सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय।।

— कबीर साखी संग्रह (सेवक और दास का अंग 27, पृ.20)

कहते हैं, जिस मानव देह में वह प्रकट हो चुका है, वह बलिहारी जाने योग्य है। बिजली का बल्ब है, ख़ाली बल्ब ही अगर शीशे का लगा रहे, तो वह कुछ नहीं। जब उसमें बिजली की किरणें निकलती हैं, तो वह सबको अपनी ओर खेंच लेता है। उस समय देखने वाले का ध्यान शीशे की ओर

नहीं जाता वरन् बिजली की ओर जाता है, जो उसमें चमक रही है। शीशा है भी या नहीं, उसका भी भान नहीं रहता। ऐसे ही यह हालत है कि जिस हृदय में वह मालिक प्रकट हो चुका है, उसका नाम है संत, उसका नाम है गुरु। सामाजिक परंपरा के बंधनों से डरने वाले लोग कहते हैं :

बंदगाने ख़ुदा ख़ुदा न बाशान्द,
लेकिन ज़े ख़ुदा जुदा न बाशान्द।
– ख़्वाजा हाफ़िज़

अर्थात ख़ुदा के बंदे ख़ुदा नहीं होते, लेकिन ख़ुदा से जुदा भी नहीं होते। उधर से कान नहीं पकड़ा, तो इधर से पकड़ लिया। जिसकी आँख खुली है, निःशंक होकर कहता है :

मन ख़ुदारा आशक़ारा दीदा अम्,
दर सूरते इन्सां ख़ुदारा दीदा अम्।
– भाई नन्द लाल 'गोया'

अर्थात मैंने ख़ुदा को प्रकट रूप में, मानव के रूप में चलते–फिरते देखा है। यही गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं :

हरि जीउ नामु परिओ रामदासु।
– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰5, पृ॰612)

अर्थात हरि का नाम ही रामदास है। रामदास इंसान नहीं, उसमें तो वह प्रभु बोल रहा है।

जैसी मै आवै ख़सम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो।।
– आदि ग्रंथ (तिलंग म॰1, पृ॰722)

अर्थात जिसके अंदर यह चेतना नहीं जागी, वह महात्मा कहाँ है? महात्मा तो वही है, जो प्रभु में अभेद हो गया। वह देखता है, वह प्रभु–सत्ता काम कर रही है, उसमें। वह कहता है :

मेरा कीआ कछू न होइ।। करि है रामु होइ है सो होइ।।
– आदि ग्रंथ (भैरउ नामदेव, पृ.1165)

यह नामदेव जी कह रहे हैं। इसी संदर्भ में गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

ज्यो बोलावहि त्यों नानक दास बोलै।।

— जनम साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

बुल्लेशाह थे, शाह इनायत के पास गए। आमों का बाग़ था। दृष्टि–साधन उन्होंने सिद्ध किया हुआ था। आम तोड़े, जेब में डाल लिए। शाह इनायत ऊपर से आ गए। कहने लगे, "अरे भाई, तुम मेरे चोर हो।" बोले, "महाराज, मैंने तोड़ा नहीं।" शाह इनायत कहने लगे, "मैं भी देख रहा हूँ, तुमने तोड़ा नहीं। जिस तरह तोड़ा है, वह भी मैं जानता हूँ,"अर्थात पहले दिन बुल्लेशाह, इनायत शाह को धोखा देना चाहते थे। लेकिन जब आँखें खुलीं, तो वही बुल्लेशाह कहने लगे :

मौला आदमी बण आया।।

कि वह इंसान नहीं, ख़ुदा ही इंसान के जामे में चलकर आ गया है। यह उन लोगों की अवस्था है, जिनकी अंतर की आँख खुली है और वह उस स्तर से देख रहे हैं। हम मन–बुद्धि के घाट से देख रहे हैं :

तू सुलतान कहा हउ मीआ तेरी कवन वडाई।।

— आदि ग्रंथ (बिलावलु म॰1, पृ॰795)

अर्थात ऐ मालिक, तू बादशाह है, हम तुझे मियाँ–मियाँ कहकर पुकारते हैं। यह तेरी प्रशंसा है कि अप्रशंसा, आदर है कि अनादर? मगर हम अपने स्तर से ही तो वर्णन कर सकते हैं। इसी प्रसंग में एक उदाहरण है। एक डिप्टी कमिश्नर थे, किसी गाँव में पड़ताल करने के लिए चले गए। वहाँ से लौटते हुए, गाँव के चौधरी ने उन्हें कहा, "साहब बहादुर, हम तेरे लिए प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा तुझे पटवारी बना दे।" उनके लिए पटवारी ही बड़ी चीज़ है। यह नहीं जानते कि कई पटवारी उसके दर पर मारे–मारे फिरते हैं! जिनकी आँख नहीं खुली, ऐसे महापुरुषों को वे कुराहिया अर्थात पथभ्रष्ट कहते रहते हैं। गुरु नानक साहिब जिस ज़माने में दुनिया में आए, तो पढ़े–लिखे विद्वानों और पंडितों ने कहा कि यह लोगों को पथभ्रष्ट करता है, यह कुराहिया है। उनको नगर में आने नहीं दिया। तो अपना–अपना स्तर है, देखने का। कहते हैं :

क़दरे लाले ऊ बजुज़ आशिक़ न दानद हेच कस,
क़ीमते-याक़ूत दानद चश्मे-गौहर बारे-मा।

— दीवाने–गोया (ग़ज़ल 2, पृ.11)

अर्थात जो उसका चाहने वाला है, वही उसकी क़ीमत भी डाल सकता है। या मेरी आँखों से छलकते हुए, जो आँसुओं के मोती हैं, उनमें झाँककर देखो, तो याकूत की क़ीमत को जान सकोगे। वह ख़ुश्क़ फ़िलासफ़ियों से तो नहीं देखा जा सकेगा। केवल प्रेम–भरी दृष्टि से ही उसे देखो। *"लैला रा बचश्मे–मजनूं बायद दीद।"* लैला को देखना हो, तो मजनूं की आँखों में बैठकर देखो। अरे भई, इन महापुरुषों की शान को देखना हो, तो भक्तजनों की आँखों में प्रवेश करके देखो। वह किसी और ही रंग में नज़र आयेंगे।

डेरा ब्यास का वृत्तांत है। हुजूर महाराज के सत्संग में अमीर लोग आगे बैठते थे। महाराज कृपाल सिंह सबसे पिछली पंक्ति में बैठा करते थे। एक बार एक अमीर आदमी उनके पास आ बैठा। कोई काम था, इनसे। दूसरे दिन फिर आकर वहीं बैठ गया। कृपाल सिंह जी ने कहा, "आपकी जगह तो आगे है, पीछे क्यों आ गए।" कहने लगा, "यहाँ हुजूर की शक्ल कुछ और ही नज़र आती है।" मतलब यह है कि उसे सही नज़र से देखो, तभी उसका यथार्थ स्वरूप दिखाई देगा। जिसको प्रभु ने आँख ही नहीं दी, वह क्या देखेगा! मुईनुद्दीन चिश्ती ने फ़रमाया है कि उसको अगर देखना है, तो अक्ल की आँखों से न देखो, प्रेम की आँखों से देखो, तभी वह दिखाई देगा। प्रेम आत्मा का गुण है, और बुद्धि मन का जो मनुष्य बुद्धि के दायरे में है, वह उसको, जो बुद्धि से ऊपर है, कैसे देख सकते हैं? तो कहते हैं :

हर नफ़स गोया बायदे नरगिसे मख़्मूरे ऊ।
बादा हाए शौक मी नोशद दिले हुशियारे मा।

अर्थात उसकी नज़र नशे से भरी हुई है। कहते हैं, गोया (यह उनका उपनाम भी है) मेरा दिल हर वक़्त उसी नशे को याद कर रहा है। जिसने भी एक बार उसे देखा, वह सारी उम्र के लिए अपने आपसे गया। दुनिया की मिसाल है कि आँख का मारा कहीं का नहीं रहता। जिस आँख में प्रभु हमें दिख रहा है, उसकी दृष्टि जिस पर पड़े, वह फिर कहाँ का रह जाएगा! तो कहते हैं, मेरा जो दिल है, हर साँस के साथ, हर घड़ी, हर मिनट, हर सैकेंड, उसकी नशीली नज़र की याद में लीन है। उसकी नर्गिस समान मस्त आँखों से प्रेम–सुरा पी–पीकर मेरा मन नशे में चूर हो रहा है। लेखनी को यह शक्ति कहाँ कि वह गुरु की महिमा कर सके!

हुज़ूर के व्यक्तित्व का आकर्षण

हुज़ूर महाराज के व्यक्तित्व में एक ख़ास असर था। उनमें प्रभु–सत्ता काम कर रही थी। जो उन्हें देखता था, उस प्रभाव को अनुभव करता था। जिन्होंने उस मानव घट में प्रभु–सत्ता की झाँकी देखी, उनके हृदय में स्वतः ऐसे भाव उभर आते थे। महाराज कृपाल सिंह जी की एक कविता है :

आँख पाती है ज़िया सावन तेरे दीदार से,
रूह पाती है फ़िज़ा प्यारे तेरे प्यार से।

कि हे सत्गुरु, तेरा दर्शन करने से आँखों की ज्योति बढ़ती है। तू प्रेम का छलकता हुआ प्याला है। तुझे प्रेम करने से आत्म–विकास होता है, उभार मिलता है। गुरुवाणी में आया है :

सुभर भरे प्रेम रस रंगि।। उपजै चाउ साध कै संगि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰289)

आगे फ़रमाते हैं :

याद आती है तेरी सावन मुझे शाम-ओ-सहर,
तेरा हर नक़्श-ए-क़दम है, ग़ैरते शम्स-ओ-कमर।

अर्थात हर पल, हर घड़ी और हर क्षण तेरी याद आती है। तेरे हरेक पद–चिह्न पर सूर्य, चंद्रमा नतमस्तक हैं।

रहबर-ए-राह-ए-निजात है तू सबके वास्ते,
प्रेम का सोमा है तू हर दिल के वास्ते।

अर्थात तू हरेक हृदय के लिए प्रेम का स्रोत है। सबको मुक्ति–पथ दिखाने वाला है। एक और कविता में अपने दिल का उभार इस तरह पेश करते हैं :

है दवा-ए-रंज-ओ-अलम उपदेश मेरे सावन का,
मस्त हो जाते हैं सभी ले ले नाम मेरे सावन का।

अर्थात हे सत्गुरु, तेरा उपदेश सारे दुखों का इलाज है।

सरब रोग का अउखदु नामु।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰274)

तेरा नाम लेकर सब निजानंद की अवस्था को पा लेते हैं।

हुस्न का इक बह्र-ए-बेपायां मेरे सत्गुरु तू है,
नूर का बढ़ता हुआ तूफां मेरे सत्गुरु तू है।

तू सौंदर्य का अपार सागर है, ज्योति का तूफ़ान उठा रहा है।

तू मुजस्सम नूर है सारे जहां के वास्ते,
तू चराग़-ए-बज़्म है कौन-ओ-मकां के वास्ते।

तू सदेह ज्योति है। महापुरुषों को 'प्रकाश पुत्र' कहा है। जब आते हैं, संसार को रोशनी दे जाते हैं।

दिलदही की जान, बह्र-ए-हुस्न और कान-ए-कमाल,
बर्क़ से भी तेज़ है तेरी कुबक रफ़्तार चाल।

आकर्षण की तू जान है, सौंदर्य का ठाठें मारता सागर है, गुणों की खान है। चकोर–सी तेरी मस्त चाल दिल पर बिजली से भी तेज़ असर करती है। महापुरुषों की कई निशानियाँ हैं, जिनमें एक यह भी है कि उनकी चाल चकोर जैसी होती है। उनके चेहरे पर तिल होता है। हुज़ूर के मुखमंडल पर बड़ा सुंदर तिल था।

नाज़की कुरबान है सौ जान से बलिहार है,
हां बहारे रूए सावन ग़ैरते गुलज़ार है।

अर्थात तू इतना नाज़ुक़ है कि नज़ाक़त भी तुझ पर कुर्बान है। हुज़ूर के सुंदर शरीर का अंग–अंग, आँख, होंठ, हाथ, यहाँ तक कि पाँव भी बड़े नाज़ुक थे। उनकी प्रेम–भरी याद में लोग बैठते थे, तो उनके दिल खिल जाते थे, सब दुनिया भूल जाती थी। प्रकृति का संपूर्ण विकास था, वहाँ।

दिलबरी फिर सादगी, तमकनत फिर जांफिज़ा,
रूह परवर, दिलकुशा, सावन की है हरेक अदा।

एक तो दिल छीन लेना, फिर सादा लिबास में एक रोब, दबदबा– वह भी जान को उभारने वाला। हुज़ूर का बड़ा दबदबा था, लेकिन वह दिल को खेंचता था। नतीजा यह था कि दिल भी खिंचा जाता था, पास भी नहीं जा सकता था। भय और भाव, दोनों उनके पास जाकर उपजते थे। उनकी

हरेक अदा से दिल और रूह दोनों को ख़ुराक मिलती थी, जिसके बारे में ईशु मसीह कहते हैं, "मैं आत्मा की रोटी हूँ। यह रोटी सतलोक से आती है। जो मुझे खायेंगे और पीयेंगे, वह अमर जीवन को पा जायेंगे।" – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 6:35) शिष्य को गुरु की हर अदा से यह ख़ुराक़ मिलती है :

सुरमगीं वह मस्त आँख, सुरमगीं ओ कैफ बार,
तसव्वुर में बलाएं जिनकी आबिद बार-बार।

अर्थात हरि–रस–भीने तेरे मदमाते नयन देखने वालों को मस्त कर देते हैं। भक्तजन मनन और चिंतन में बलिहार जाते हैं, तुझ पर।

मरकज़े उश्शाक है तू, सरचश्मए हुब्बो-करार,
दर्द मन्दों की दवा है, बेकसों का ग़मगुसार।

अर्थात तू प्रेमीजनों की श्रद्धा और भक्ति का केंद्र है, निराश्रितों का आश्रय है, दीन–दुखियों की दवा है। पाकिस्तान बनने के दिनों में पीड़ित हुज़ूर के पास जाते, तो वह प्यार से उन्हें कहते, "अच्छा भई, कोई बात नहीं। चिंता न कर।" बस दो लफ़्ज़ों से घायल हृदय पर मल्हम–सी लग जाती, टूटे दिल जुड़ जाते। महापुरुषों के वचन सत्तायुक्त होते हैं। वे असर रखते हैं :

महवरे अस्मत है तू और पैकरे शर्मो-हया,
राहे इसियां में गुनहगारों का तू है रहनुमा।

अर्थात तू पवित्रता की मूर्ति है, लाज और संकोच तेरा शृंगार है। तेरे चरणों में जाकर पापियों को पाप भूल जाता है। हुज़ूर के मंडल में विस्मृति का यह प्रभाव था कि तन–बदन की सुधि न रहती थी।

देखकर प्यारे तुझे यह दिल में आता है ख़्याल,
तुझ पे कुदरत कर चुकी है ख़त्म अपना सब कमाल।

अर्थात कुदरत की हर ख़ूबी तुझमें मौजूद है। सृष्टि में स्रष्टा की कुछ झलक होती ही है। सृष्टा स्वयं सदेह हो जाए, सृष्टि बनकर आ जाए, तो क्या कहना!

तेरी हर तक़रीर प्यारे बर्क़े बातिल-सोज़ है,
जो भी है उपदेश तेरा वह सबक़ आमोज़ है।

कहते हैं, तेरे प्रवचन से सारे भ्रम दूर हो जाते हैं और सत्य स्पष्ट हो जाता है :

बर्क़ से भी ज़ूद-असर तेरी हरेक गुफ़तार है,
ख़ल्क़ तुझपर इसलिए कुरबान है बलिहार है।

अर्थात तेरी हर बात दिल पर असर करती है। हुज़ूर के वचन सीधे दिल में उतर जाते थे। थोड़े शब्दों में सारे धर्मग्रंथों का सार प्रस्तुत कर देते। चंद सरल शब्दों में बड़ी जटिल समस्याओं को सुलझाकर रख देते थे।

तेरा हर उपदेश अमृत है ज़माने के लिए,
तू यहाँ आया था ख़ालिक़ से मिलाने के लिए।

महापुरुषों के मिशन का, कार्य का वर्णन है।

बे तरह खिंच जाता है जो देख है पाता तुझे,
ग़ैर ग़ैरियत में भी हर जा है अपनाता तुझे।

अपने तो अपने, अपरिचित व्यक्ति भी उन्हें देख अनायास पुकार उठते, क्या दिव्य छवि है!

ज़िंदगी में यादे सावन दिल से क्योंकर जाएगी,
सूरत-ए-सावन पेश-अज़-मर्ग भी लौट आएगी।

जो अंत समय सामने आकर खड़ा हो जाएगा, उसे कैसे भूल सकता हूँ? शिष्य छोड़ जाए तो जाए, गुरु नहीं छोड़ता।

कौन सा दिल है जो उस शम्मा का परवाना न हो,
कौन ज़ाहिद है जो उस मूरत का दीवाना न हो।

जो भेदी हैं, पारखी हैं अध्यात्म के, वे तो खिंचे जाते हैं। नशेबाज़ नशेबाज़ को पहचान जाते हैं। तंगदिल आलिमों का यह काम नहीं। स्वामीजी महाराज कहते हैं :

हे विद्या तू बड़ी अविद्या। संतन की तैं क़दर न जानी।।
– सार बचन, पद्य (बचन 24, शब्द 3)

जब भी महापुरुष आए, तंगदिल आलिमों ने, पंडितों ने उनका विरोध किया। आँख खुली होती, तो वह ऐसा क्यों करते? महापुरुष जब आए,

उनका विरोध होता रहा, परंतु वह किसी बात का बुरा नहीं मानते, सबका भला चाहते हैं। क्राइस्ट को सूली पर चढ़ाया गया, तो उन्होंने प्रार्थना की, "हे परम पिता! इनको क्षमा कर दे। इनको पता ही नहीं यह क्या कर रहे हैं।" – पवित्र बाइबिल (लूका 23:34)

गुरु भक्ति के बिना यह मंज़िल तय नहीं होती। क्राइस्ट कहते हैं, "मैं अँगूर का पेड़ हूँ, तुम मेरी टहनियाँ हों। जब तक टहनियाँ पेड़ से जुड़ी रहेंगी, वह फले–फूलेंगी, इसलिए मेरे बिना तुम्हारा जीवन नहीं।" – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 15:5) प्रभु को पाने के लिए पहला क़दम गुरु है, Godman अर्थात God (प्रभु) + man (इंसान)। शिष्य Guruman अर्थात गुरुमुख बन जाए, तो प्रभु उसमें आप ही आ गया। गुरु देह नहीं, वह प्रभु–सत्ता है, जो मानवदेह में काम करती है।

ब्रह्म बोले काया के ओले। काया बिना ब्रह्म क्या बोले।

– कबीर साहिब

पहले देह से सिलसिला चलता है। सहजातीयता स्वाभाविक गुण है। हम उसको (गुरु को) देखते हैं, उसकी आँखों में झलक देखते हैं, प्रभु–सत्ता की। उसमें लीन होकर पिंड, अंड, ब्रह्मंड सब भूल जाते हैं। आगे चलकर यह अवस्था बन जाती है कि गुरु और शिष्य का भेद मिट जाता है। सेंट पॉल कहता है, "यह मैं हूँ, नहीं, यह मैं नहीं। यह क्राइस्ट है, जो मुझ में निवास करता है।" – पवित्र बाइबिल (गलातियों 2:20)

अमीर ख़ुसरो कहते हैं, "मैं तू बन गया, तू मैं बन गया, मैं तन बन गया, तू मेरी जान बन गया, ताकि लोग यह न कहें, मैं और हूँ तू और है।"

मन तू शुदम तू मन शुदी, मन तन शुदम तू जां शुदी,
ता कस नगोयद बअद अज़ी मन दीगरम तू दीगरी।

– अमीर ख़ुसरो (पृ॰112)

हाफ़िज़ साहिब कहते हैं, "मेरा हृदय उस प्रीतम से, गुरु से, इतना परिपूर्ण हो गया है, भर गया है कि मैं यह भूल गया हूँ कि यह मैं हूँ या वह है।"

चुनां पुर शुद फ़ज़ाए सीना अज़ दोस्त,
किह् फ़िक्रे-ख़्वेश गुमशुद अज़ ज़मीरम।

– दीवाने–हाफ़िज़ (पृ॰329)

एक और जगह कहते हैं कि मेरी पैबंद गुरु से लग गई। अब मैं अभय हो गया।

फ़ाश मी गोश्म ओ अज़ गुफ़्ता-ए ख़ुद दिल शादम,
बंदा-ए इश्क़म ओ अज़ हर दो जहां आज़ादम।

– दीवाने–हाफ़िज़ (पृ॰318)

जो अमृत सागर में डूब गया, उसे मरने का क्या डर है? सब महापुरुषों ने ऐसे संकेत दिए हैं। जो गुरु में समा गया, वह प्रभु में समा गया।

हुज़ूर के जलाल और जमाल की झाँकियाँ

यहाँ हम हुज़ूर महाराज के जीवन से उनके व्यक्तित्व के जलाल और जमाल अर्थात भव्य और सौम्य की कुछ झाँकियाँ प्रस्तुत करते हैं। हुज़ूर रावलपिंडी तशरीफ़ ले गए। वहाँ से ट्रेन पर वापस आ रहे थे। ट्रेन अभी रावलपिंडी स्टेशन पर खड़ी थी कि एक बूढ़ा मुसलमान स्टेशन पर अँगूर ख़रीदने लगा। यह गाड़ी में बैठे नज़र आए। भव्य आभा से परिपूर्ण चेहरा, दुग्ध–धवल नूरानी दाढ़ी। दिल से आवाज़ निकली, "अल्लाह अल्लाह! क्या ख़ुदा का नूर है।" चलते–चलते पास आ गया। अँगूर पेश किए, महाराज लीजिए। हुज़ूर हँस पड़े। अँगूरों को हाथ लगा दिया। कहने लगे, "अच्छा भाई, पहुँच गए?" इतने में गार्ड ने व्हिसल दी, वह भागकर गाड़ी पर चढ़ गया। बस इतनी ही मुलाक़ात हुई।

वह मुसलमान कस्बा मटोर का रहने वाला था। वहाँ गाँव में जाकर उसने शोर मचा दिया कि मैंने एक ऐसी नूरानी सूरत देखी है, जिसकी दुनिया में कोई मिसाल नहीं मिलती। श्री परमानंद, सरदार बलवंतसिंह आदि प्रेमी सत्संगी उस गाँव में रहते थे। बलवंतसिंह ने उसकी बात सुनकर पूछा, "कहीं वह हमारे गुरु महाराज तो नहीं थे?" यह कहकर उसने हुज़ूर की फ़ोटो उसे दिखाई, जिसे देखकर वह पुकार उठा— "हाँ, यही बुजुर्ग थे, जिनका दीदार मैंने किया है।" इस घटना के साल भर बाद उसका अंत समय आ गया। उसने बलवंतसिंह को बुला भेजा। कहने लगा, "आपके मुर्शिद आए हैं। कहते हैं, साथ ले जाऊँगा।" प्यार भरी दृष्टि से भाव सहित उसने हुज़ूर को देखा था। उनकी एक नज़र पड़ी, अंत समय संभाल का कारण बन गया। बताओ, कितनी भारी बरक़त है!

रेल–यात्रा की इस प्रकार की एक और घटना है। हुज़ूर फ्रंटियर मेल पर सफ़र कर रहे थे। रावलपिंडी के रास्ते में मानकवाला और रावलपिंडी के दरम्यान गाड़ी जा रही थी। फ्रंटियर मेल की गति कम से कम 40 मील की होती है। हुज़ूर ने बाहर मुँह किया। नीचे एक ऊँटवाला था, उसने देखा। "बड़ी ख़ूबसूरती है, बड़ा सौंदर्य है," बस इतना ही कहा। कितनी देर दर्शन हुए होंगे? एक ऊँट की रफ़्तार और 40 मील की रफ़्तार में कितना संस्कार पड़ा होगा? मगर पड़ा। वह मुसलमान क़ौम से था। इस घटना के चार वर्ष बाद, जब उसका अंत समय आया, तो कहने लगा, "नूरानी सूरत के एक सफ़ेद दाढ़ी वाले बुजुर्ग मुझे लेने आए हैं। चलती ट्रेन में मैंने मात्र एक झलक उनकी देखी थी।" समर्थ पुरुष की एक नज़र पड़ी हो, तो कहीं नहीं जा सकता।

पाकिस्तान जब बना, तो उन दिनों लोग डेरे आते। किसी के घर वाले मारे गए, किसी का सब कुछ लुट गया, सब तबाह हो गया। लोग बहुत हमदर्दी करते, लेकिन दिल न ठहरता था। हुज़ूर के पास जाते। वह हाथ उठाकर कहते, "घबरा नहीं, मालिक और देगा।" बस! इन दो शब्दों से टूटे दिलों पर मरहम लग जाती। हुज़ूर के व्यक्तित्व के जलाल और जमाल के वर्णन में, उनकी दिव्य सामर्थ्य की झाँकियाँ इस तरह सम्मिलित हैं, संबद्ध हैं एक–दूसरे से कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। उनके स्वरूप में जो आकर्षण था, जो चीज़ खेंचती थी दिलों को, वह कुल मालिक की ताक़त ही तो थी। उन आँखों से प्रभु झाँकता था। *"यह आँखें हैं धुर घर की।"* – सार बचन क्राइस्ट ने कहा है, 'Eyes are the window to the soul,' , अर्थात आँखें, रूह की, आत्मा की खिड़कियाँ हैं। जिस रंग में आत्मा रंगी है, आँखों से वह रंग झलकता है। मालिक के रंग में रंगी वह दया–दृष्टि जिस पर भी पड़ी, उसके रोग–संताप दूर हो गए।

कुछ ही सालों पहले की बात है कि एक सज्जन– ख़ुशदिल नाम है उनका– लाइफ़ इंश्योरेन्स का कॉर्पोरेशन दिल्ली के कर्मचारी हैं, रेडियो पर संगीत का कार्यक्रम भी दिया करते हैं। उन्हें ऐसी बीमारी लगी कि जीवन से निराश हो गए, चिकित्सक हार गए। वह यह निर्णय नहीं कर सके कि क्या रोग है? उसके भाई–भाभी यहीं दिल्ली में रहते थे और हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के नामलेवा अर्थात दीक्षित थे। भाभी ने देवर से

कहा, "मरना–जीना तो भगवान के हाथ में है, जो थोड़े दिन का जीवन रह गया है, प्रभु की याद करो।" फिर कहने लगी, "27 जुलाई (हुजूर का जन्मदिन) का समारोह क़रीब है। सत्संग सुनो, हुजूर दया करेंगे।" भाई–भावज के साथ वह 27 जुलाई के भंडारे में शामिल हुआ। वहीं हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की फिल्म दिखाई जा रही था। ख़ुशदिल कहता है, "मैंने फिल्म देखा, भव्य आभा से दमकता हुआ हुजूर का मुखमंडल था। उसके दर्शन किए, आकर्षण हुआ। तन–बदन की सुधि भूल गया, फिल्म के पर्दे पर हुजूर से आँखें चार हुईं।[20] दर्शन पहले भी किए थे, बचपन में। लेकिन उस समय होश न था। अब जो आँखें चार हुईं, तो लगा, जैसे हुजूर फ़रमा रहे हैं, 'घबरा नहीं, तूं राज़ी हो जाएँगा,' और मुझे लगा जैसे मेरे सारे दुख–दरिद्र दूर हो गए।" अगले दिन इंश्योरेन्स कार्पोरेशन के बड़े डॉक्टर ने निरीक्षण किया। कहने लगा, "तुम्हें हरपीज़ की बीमारी है। शुक्र है, वक़्त पर आ गए। अगर एक दिन बाद आते, तो रोग असाध्य हो चुका होता।" मैंने कहा, "मुझे मालूम है, मैं ठीक हो जाऊँगा। मुझे अब कोई ख़तरा नहीं," और वह ठीक हो गया।

ईशु मसीह के बारे में ज़िक्र आता है कि उन्होंने एक वेश्या, मेरी मैग्डेलीन के सारे पाप क्षमा कर दिए थे। यह घटना इस प्रकार है। ईशु अपने प्रिय शिष्य साइमन पीटर के यहाँ आए हुए थे। नगर के बड़े–बड़े लोग उनके पास बैठे हुए थे। एक वेश्या, मेरी मैग्डलीन भी वहाँ चली आई। महात्मा की शक्ल निराली होती है। हज़ारों में बैठे हुए वह अलग ही दिखाई देते हैं। उसने ईशु को देखा। आँखें चार हुईं। आकर्षण हुआ, पास चली आई, ईशु मसीह के चरणों पर गिरकर रोने लगी। इतना रोई कि उनके पाँव भीग गए। फिर अपने बालों से चरण पोंछ डाले। मसीह ने कहा, 'Do no more' – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 8:11) कि अब आगे और पाप न करना। उसके सर पर हाथ रख दिया और कहा, "देवी, मैंने तुझे क्षमा किया, क्योंकि तूने बड़ा प्रेम किया है।"

---

20. ऐसी घटनाएँ होती रहती थीं। सितम्बर 1968 की बात है कि महाराज कृपाल सिंह जी के एक सत्संगी बर्मा साहिब इंजीनियर, एक मिनिस्टर साहिब को लाए। सत्संग सुनने के बादए मिनिस्टर साहिब कहने लगे, "महाराज जी की आँखें अन्तरात्मा में धँसती मालूम होती थीं।"

लोगों की अपनी–अपनी दृष्टि होती है। साइमन ने सोचा, महात्मा होते हुए भी यह एक वेश्या से याराना रखते हैं। ईशु ने देखा कि यह डोल गया है। आख़िर मैंने ही इसे उठाना है। कहने लगे, "साइमन, अगर किसी ने एक से पाँच रुपए लेने हों और दूसरे से पचास रुपए और वह दोनों का कर्ज़ माफ़ कर दे, तो किस पर ज़्यादा उपकार किया?" साइमन ने बेपरवाही से कहा, "जिसको पचास रुपये माफ़ कर दिए।" ईशु ने कहा, "मैं तेरे पास आया। तूने मेरे पाँव नहीं धोए। इसने आँसुओं से मेरे पाँव धोए, अपने बालों से उन्हें साफ़ किया। इसलिए मैंने इसको क्षमा कर दिया।" गुरु बख़्शे या प्रभु बख़्शे, गॉड बख़्शे या गॉडमैन। दूसरा कौन क्षमा कर सकता है?

हुज़ूर की दयामेहर के ऐसे सैकड़ों दृष्टांत दिए जा सकते हैं। दिल्ली की घटना है। हुज़ूर सत्संग कर रहे थे। सत्संग के बाद एक स्त्री हाथ बाँधे खड़ी हो गई और फूट–फूटकर रोने लगी। कहने लगी, "सच्चे पातशाह, मैं बड़ी पापिन हूँ। मेरा जीवन बहुत गंदा है। तूने मुझमें क्या देखा, जो मेरे घट में निवास किया। अपने दिव्य स्वरूप के दर्शन दिए। मैं पापिन इस योग्य न थी।" हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया, "अब तो मैं तेरे अंतर आ गया हूँ। अब मेरी लाज रख। इस घर को साफ़–सुथरा रख।"

हुज़ूर के व्यक्तित्व के जलाल और जमाल में उनकी सामर्थ्य की, दिव्य ज्योति की, जो उस बल्ब में रोशन थी, झलक दिखाई देती थी। वह सदेह–ज्योति थे। दुनिया को ज्योतिर्मय कर गए। उनकी सामर्थ्य और संभाल एक पृथक विषय है, जिस पर ग्रंथ लिखे जा सकते हैं। यहाँ मोटे–मोटे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

समर्थ गुरु

फलदार पेड़ की टहनियाँ सदा झुकती रहती हैं। नम्रता संतों का शृंगार है। परमात्मा का रूप होते हुए भी वह हमेशा अपने को गुनहगार बंदा, सबका दास और सेवक ही कहते हैं। परंतु कभी–कभी मौज में आकर अपने बारे में स्पष्ट संकेत भी दे जाते हैं कि वह क्या होते हैं।[21] यदि अपने बारे में स्वयं ही न बताएँ, तो हम मन–बुद्धि के घाट पर विचरने वाले अल्पमति जीव उन्हें कैसे जान सकते हैं? हुज़ूर के जीवन का एक उदाहरण महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संगों में प्रायः दिया करते हैं। फ़रमाते हैं, "रात

का समय था। मैं और डॉक्टर जॉनसन हुज़ूर के चरणों में बैठे थे। अन्य कोई व्यक्ति वहाँ पर न था। डॉक्टर जॉनसन ने पूछा, "शिष्य को गुरु से माँगना चाहिए कि नहीं?" हुज़ूर ने फ़रमाया, "शिष्य तो हर वक़्त माँगता ही है, कुछ न कुछ माँगता ही रहेगा गुरु से।" कुछ देर ख़ामोशी रही, फिर यह वचन फ़रमाए, "जब हम दुनिया में आते हैं, तो अपना स्टाफ़ (काम करने वाला) हम साथ लाते हैं। एक जगह काम हो जाता है, तो हमें दूसरी ओर भेज दिया जाता है।" इन शब्दों में संकेत मिलता है कि वे क्या थे और उनका मिशन अर्थात जीवन–कार्य क्या था।[22] इस कथन से स्पष्ट है कि संतजन प्रभु के भेजे हुए ही दुनिया में आते हैं, और यह पहला अवसर न था, हुज़ूर का दुनिया में आने का। इस कथन में यह भी संकेत मिलता है कि वह जिस कार्य को लेकर संसार में आए, उसमें हमेशा सफल रहे और उस कार्य को पूरा करने के लिए अपने कर्मचारी भी साथ लाते रहे और सबसे बड़ी बात यह है कि वे बने–बनाए दुनिया में आते हैं, जिसका प्रमाण

---

21. दशम गुरु साहिब ने भी 'दसम ग्रंथ' (बचितर नाटक, पृ. 54-57) में अपने पिछले जीवन और दुनिया में अपने कार्य का संपूर्ण विवरण दिया है। फ़रमाते हैं :

अब मै अपनी कथा बखानो।। तप साधत जिह बिधि मुहि आनो।
हेमकुंट परबत है जहाँ।। सपत स्रिंग शोभित हैं तहाँ।।

वहाँ बड़ी तपस्या की। आगे कहते हैं :

इह बिधि करत तपसिआ भयो।। द्वै ते एक रूप ह्वै गयो।।
तिन जो करि अलख की सेवा।। ता ते भए प्रसंनि गुरुदेवा।।
तिन प्रभ जब आइस मुहि दीआ।। तब हम जनम कलू महि लीआ।।
चित न भयो हमरो आवन कहि।। चुभी रही स्रुति प्रभ चरनन महि।।
जिउ तिउ प्रभ हम को समझायो।। इम किह कै इह लोकि पठायो।।

आगे लंबा–चौड़ा बयान है कि दुनिया किस तरह पथभ्रष्ट हो रही है। जो धर्म का प्रचार करने आए थे, वह प्रभु को छोड़कर अपनी ही पूजा कराने में लग गए। लोगों ने पत्थरों की पूजा शुरू कर दी। परमात्मा का भेदी ही कोई न रहा। अध्यात्म लुप्त–प्राय होकर रह गया। दुनिया बहिर्मुखी कर्मकांड और मत–मतांतरों में बंधकर रह गई। तो क्या हुक्म दिया प्रभु ने?

मैं अपना सुत तोहि निवाजा।। पंथ प्रचुर करबे कहु साजा।।
जाहि तहां तै धरमु चलाइ।। कबुधि करन ते लोक हटाइ।।

आगे लंबा–चौड़ा वर्णन है, जिसमें प्रभु से मिलने और जिस काम के लिए उन्हें भेजा गया, उसका ब्यौरा दिया गया है, जिससे संतों के कार्य पर प्रकाश पड़ता है।

हुज़ूर के जीवन में जगह–जगह पर मिलता है। आख़िर क्या बात थी उनमें कि बाबाजी उन्हें ढूँढने ब्यास से चलकर मरी की पहाड़ियों पर आए। इस संदर्भ में यहाँ हुज़ूर के जीवन की एक ही घटना का वर्णन करना पर्याप्त होगा। उन दिनों की बात है, जब वह कोहमरी में एस.डी.ओ. लगे हुए थे। फ़रमाते थे, एक दिन ड्यूटी से वापस आते हुए बड़ी अलौकिक सुगंधि मुझे आने लगी। आगे गया तो देखा, एक फ़क़ीर बैठा था, जिसके शरीर से वह सुगंधि प्रसारित हो रही थी। मुझे देख वह हँसा। कहने लगा, "तुम आ गए?" Receptive अर्थात अलौकिक संस्कार होने के कारण दूर से ख़ुशबू का अनुभव उन्हें हुआ। आख़िर कोई हस्ती थी, जिसे जीवों के उद्धार का काम सौंपा गया, कोई ताक़त थी, जिसने निर्मम, क्रूर, हत्यारे डाकुओं की अकड़ी गर्दनों को झुका दिया, बड़े–बड़े गुणी–ज्ञानियों को नौसिखिया विद्यार्थी बनाकर रख दिया।

इस प्रसंग में करतारसिंह नाबीना का उदाहरण सामने आता है। बड़े नामी फ़िलॉस्फ़र थे, बुद्धि के बहुत बड़े पहलवान। वाद–विवाद में किसी को टिकने नहीं देते थे। वह सत्संग में आ गए। हुज़ूर ने उन्हें आगे बिठा लिया। सत्संग सुना। उसके बाद कहने लगे, "महाराज मैं वह हूँ, जिसने बड़ी–बड़ी सभाओं में लोगों को शास्त्रार्थ में हरा दिया। ऐसा हराया कि वह मुँह दिखाने योग्य नहीं रहे। आज पहला दिन है कि मैं बच्चा बनकर अध्यापक के चरणों में बैठा हूँ।" अमरीका से डॉक्टर जॉनसन आए। हुज़ूर के चरणों में पहुँचे, तो कहने लगे, पहले मैं प्रचारक बनकर आया था, उपदेश देने के लिए। अब उपदेश लेने के लिए आया हूँ। आयु भर वह हुज़ूर के चरणों में रहा। कई पुस्तकें लिखीं। हुज़ूर

22. गुरु अर्जन साहिब के पास रबाबी आए। उनके वहाँ लड़की की शादी थी। निवेदन किया कि आपके सिक्खों (शिष्यों) से एक–एक टका भी मिल जाए, तो हमारा कार्य सिद्ध हो जाए। फ़रमाया, "ले देंगे।" दो–तीन दिन व्यतीत हो गए। उन्होंने कहा, महाराज शादी की तिथि आ गई है। टके दिलवाइए। फ़रमाया, "कल ले जाना।" दूसरे दिन साढ़े चार टके उनके हवाले कर दिए। कहने लगे, "महाराज यह क्या?" फ़रमाया, "पहले सिक्ख थे गुरु नानक साहिब, दूसरे अंगद साहिब, तीसरे गुरु अमरदास साहिब, चौथे गुरु रामदास साहिब और आधा टका मेरा। मैं भी आधा सिक्ख हूँ।" रबाबी क्रोध में आकर कहने लगे कि हमारे द्वारा ही गुरु नानक साहिब का इतना नाम हुआ, अन्यथा कौन जानता था? उन्होंने निंदा शुरू कर दी। जब भीड़ पड़ी, लगे क्षमा माँगने। गुरु अर्जुन साहिब ने फ़रमाया, "जितनी निंदा की है, उतनी ही स्तुति करो, तुम्हारे सब दुख–दरिद्र दूर हो जायेंगे।"

ने प्रचार के लिए उसे अमरीका भेजना चाहा। परंतु गुरु चरणों की ठंडी छाँव को छोड़कर वापस जाना उसे स्वीकार न हुआ।

संतों का दरबार क्षमा का है

हुज़ूर के ज़माने में भयानक आकृति का एक डाकू था– उद्धमसिंह उसका नाम था। जो लोग हुज़ूर के पास जाते, उन्हें पकड़कर नदी में गोते देता था। संयोग से एक दिन हुज़ूर के सत्संग में आ गया। सत्संग सुना, होश आ गया। उसके बाद उसका नियम था कि मुँह पर कपड़ा रखकर तीन–तीन, चार–चार घंटे निरंतर स्तुति करता चला जाता। हुज़ूर मना करते कि अब बस भी कर। वह हाथ जोड़कर कहता, "सच्चे पादशाह, इस रसना ने आपकी बड़ी निंदा की है। आपके पवित्र नाम से इसकी मैल धो रहा हूँ।" सुनी–सुनाई पर नाचने वाले कई निंदक हुज़ूर के डेरे आए। सत्संग सुनकर जब होश आता, तो क्षमा माँगते कि हुज़ूर हमने बड़ी निंदा की है आपकी। हुज़ूर फ़रमाते, "मेरे तक नहीं पहुँची, भाई," और दयामेहर से उन्हें निहाल कर देते।

नानक संतसंगि निंदक भी तरै।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰279)

संतों का दरबार क्षमा का दरबार है। वह जीवों को बंधन से छुड़ाने आते हैं। वहाँ पापी या पुण्यवान का हिसाब नहीं। गुरु अर्जन साहिब की संगत में विधिचंद आदि डाकू थे। बादशाह के पास शिकायत गई कि गुरु अर्जन साहिब ने डाकू रखे हुए हैं। तहक़ीक़ात करने पर जवाब दिया गया कि वह कभी डाकू होंगे, अब तो वे महात्मा हैं। हुज़ूर अपने मुखारविंद से फ़रमाया करते थे, "धोबी के पास तेली का कपड़ा भी धुलने के लिये आता है, हलवाई का भी। कभी उसने धोने से इंकार किया है! उसका रोज़ का काम है। उसे अपनी सामर्थ्य पर विश्वास है। वह जानता है, कपड़े में सफ़ेदी है, एक भट्ठी नहीं, दो भट्ठी देकर निकाल लूँगा।" हुज़ूर के पास कई डाकू आए, जो उनकी दयामेहर के प्रताप से महात्मा बन गए।

गुनाहगारों पर असीम दयामेहर के प्रसंग में एक और डाकू का वृत्तांत सामने आता है। पुलिस उसका पीछा कर रही थी। वह जान बचाकर डेरे में आ गया और हुज़ूर के निवास–स्थान की ड्योढ़ी में जाकर खड़ा हो गया।

प्यास के मारे गला ख़ुश्क हो रहा था। हुज़ूर के निज सेवक गांधी से पानी माँगा। पानी पिया। इतने में हुज़ूर ने ऊपर से दर्शन दिया। आँखें चार हुईं। उस दिव्य–सौंदर्य को देखकर डाकू नतमस्तक हो गया। भाव सहित चरणों में नमस्कार किया। थोड़ी देर बाद मैदान साफ़ पाकर चला गया। कुछ काल पश्चात उस डाकू का अंत समय आ गया। घरवालों से कहने लगा, "मेरे अंतर में बड़े ज़ोरों की बहस चल रही है। यमदूत कहते हैं, इसे हम ले जायेंगे और वह महात्मा, जिनकी झलक मैंने एक बार ब्यास में देखी थी, कहते हैं, नहीं यह रूह हमारी है, यह हमारी शरण में आया था। हम इसे नहीं छोड़ेंगे। यमराज के दूत उस महापुरुष के आगे विवश खड़े हैं।"

ये सामर्थ्य की झाँकियाँ हैं। दावे के साथ हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि पूरे गुरु से 'नाम' लेकर भी यदि यमों के साथ जाना है, तो ऐसे नाम और गुरु दोनों को हमारा दूर से सलाम। फ़रमाते थे, "नाम केवल पाँच अक्षरों का बताना नहीं। यह तो चरखा कातने वाली एक लड़की भी बता सकती है। सवाल तो संभाल का है, पूँजी देने का है।"[23]

संतन मो कउ पूंजी सउपी तउ उतरिआ मन का धोखा।।
धरम राइ अब कहा करैगो जउ फटिओ सगलो लेखा।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म॰5, पृ॰614)

एक बार किसी ने कहा, महाराज, अमुक व्यक्ति नाम देने के समय चोरी से सुन गया। फ़रमाने लगे, "कपास के खेत में कुत्ता गुज़र आए, तो क्या उसने कपड़े सिला लेने हैं?" 'नाम' तवज्जोह है, अक्षर नहीं।[23] हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि गुरु जब 'नाम' देता है, तो शिष्य के अंतर में हो बैठता है और उस समय तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक उसे सत्पुरुष की गोद में न पहुँचा दे। दरयाओं, जंगलों और बियाबानों[24], हर जगह, वह उसके साथ रहता है। मरकर भी साथ रहता है, आगे दिव्य–मंडलों में भी मार्गदर्शन करता है। शिष्य छोड़ जाए तो छोड़ जाए, गुरु साथ नहीं छोड़ता। कई बार लोग कहते, हुज़ूर अपना 'नाम' वापस ले लो। फ़रमाते,

23. महाराज कृपाल सिंह जी ने जब 'नाम' देना शुरू किया, उन दिनों की बात है कि एक छोटे बच्चे को धुन पर बिठाया गया। वह चोरी से 'नाम' के पाँच अक्षर भी सुन गया था। वह सुमिरन तो करता था, परंतु रोशनी नहीं आती थी। जब तक महाराज जी ने बिठाकर तवज्जोह नहीं दी, उसे रोशनी नहीं आई।

"नाम देकर वापस[25] नहीं लिया जाता। तुम छोड़ जाओ, तो छोड़ जाओ, मैं नहीं छोडूँगा।" एक समय हुजूर महाराज कृपाल सिंह जी के गाँव, सैयद कसराँ तशरीफ़ ले गए। उन दिनों बड़ी मुख़ालिफ़त हो रही थी। यहाँ तक की नमक भी 100 मील दूर से लेने जाना पड़ा। सत्संग हुआ, तो वहाँ के हॅडमास्टर साहिब महाराज कृपाल सिंह जी और एक–दो और सत्संगियों की ओर संकेत कर कहने लगे, "इनको आपने 'नाम' दे दिया, यह तो अच्छा किया। ये अधिकारी लोग हैं। पर आप तो, जो कोई भी आपके पास आता है, उसी को 'नाम' दे देते हैं। अधिकारी तो होना चाहिए।" हुजूर ने फ़रमाया, "अधिकारी की बात जो आप करते हैं, अधिकारी तो मैं भी नहीं (विनम्रता देखिए)। बाक़ी यदि एक अमीर अपनी दौलत मुफ़्त लुटाना चाहता है, तो तुम्हें क्या एतराज़ है?" अधिकारी के विषय में फ़रमाया करते थे, "एक बार भी जो भाव–सहित आकर बैठ जाता है, इतना ही काफ़ी है, क्योंकि घोर कलयुग का समय है। 'नाम' लेने से ही कोई सत्संगी नहीं बन जाता।

24. इस प्रसंग में बीबी हरदेवी का एक दृष्टांत है। हुजूर एक घटना सुनाते समय एक जैंटलमैन की बीबी का संकेत दिया करते थे और बीबी की ओर देखकर ख़ूब हँसा करते। जंगलों और बियाबानों में, हर जगह वह उसके साथ रहता है, मरकर भी साथ। क़िस्सा यों है कि बीबी हरदेवी हुजूर के दर्शन के लिए ब्यास स्टेशन पर उतरी, तो गाड़ी लेट होने के कारण रात के 11: 30 बज चुके थे। रास्ता ख़तरनाक था, लेकिन गुरु का नाम लेकर वह अकेली ही डेरे की ओर चल पड़ी। सामान की पोटली सिर पर रखी। जूता काटता था। उसे कमर में लपेट लिया। अंधेरी रात, सब सुनसान था। जब कच्ची नहर के क़रीब पहुँची तो देखा, कुछ लोग घोड़ों पर सामान लादे हुए जा रहे हैं। कुछ दूर आगे गई, तो दस–पंद्रह आदमी सड़क पार करके घोड़ों से उतरे। उसी समय क्या देखती है कि हुजूर महाराज साथ में चल रहे हैं और कहते हैं, अपनी पोटली मुझे दे दो। बीबी ने कहा, नहीं महाराज, आप क्यों कष्ट करते हैं? थोड़ा आगे गए, तो उन लोगों ने पीछे से आवाज़ें दीं। हुजूर जो साथ–साथ पैदल चल रहे थे, कहने लगे, "चली–चल काको।" डेरे पहुँचे, तो छोटा फाटक खुला हुआ था, बड़ा बंद था। चौकीदार आया, तो हुजूर लोप हो गए। उस समय रात का एक बज चुका था। बीबी ने कहा, "हुजूर यहाँ थे, कहाँ चले गए?" चौकीदार ने कहा, "हुजूर तो अंदर आराम फ़रमा रहे हैं।" बीबी हरदेवी ने हुजूर के आराम में विघ्न डालना उचित न समझा और उनके द्वार पर

25. हुजूर के प्रेमी सत्संगी हेमचंद्र भार्गव की पत्नी ने हुजूर से कहा कि कुछ अध्यात्म की निधि दीजिए। हुजूर ने फ़रमाया, "मिल जाएगी।" उसने बड़ी ज़िद की कि अभी दो। हुजूर ने कहा, "बहुत अच्छा।" उसका 'शब्द' खोल दिया। इतने ज़ोर का 'शब्द' चलने लगा कि सहन ही न कर सकी। हुजूर से निवेदन किया, महाराज मेरा 'शब्द' बंद कर दो। फ़रमाया, "संत दात देकर वापस नहीं लिया करते। अपनी सुरत को शब्द में टिकाओ।"

सत्संगी बनने की कुंजी उसे दी जाती है। संत बनाने का भी और पहुँचाने का भी, दोनों काम आजकल करते हैं। अगले ज़माने में तैयार करके अर्थात पात्र बनाने के बाद ही 'नाम' देते थे। लेकिन वह हालात अब नहीं रहे।"

हुज़ूर के जीवन की एक घटना है। एक सज्जन अफ़्रीका चले गए। पाँच–छः साल बाद लौटे। उस समय महाराज कृपाल सिंह जी भी वहाँ मौजूद थे। वे सज्जन हुज़ूर के चरणों में पहुँचे। कहने लगे, महाराज, कबीर साहिब ने कहा है कि दिन में एक–दो बार, नहीं तो एक बार ज़रूर गुरु के दर्शन करो, अन्यथा सप्ताह में दो बार करो या एक बार करो या महीने बाद या तीन महीने बाद या छः महीने बाद दर्शन करो। यदि साल में एक बार भी दर्शन नहीं किया, तो संबंध टूट जाता है। मैं तो छः साल बाद आया हूँ, मेरा क्या होगा?" फ़रमाने लगे, "यह कबीर साहिब ने कहा है, मैंने तो नहीं कहा।" सामर्थ्य देखिए। यह सामर्थ्य की निशानियाँ हैं। किसी आधार पर ही वह ताक़त बोलती है।

संतों के मिशन, उनकी सामर्थ्य और अपार दयामेहर जो वह जीवों पर करते हैं, उसके बारे में बड़े सुंदर दृष्टांत हुज़ूर पेश किया करते थे। इस संदर्भ में तीन उदाहरण हम देंगे। एक शेर के बच्चे की मिसाल दिया करते थे कि वह भेड़ों के रेवड़ में जा मिला और उनके साथ पलने लगा। भेड़ों की तरह 'भैं–भैं' करता और घास खाता। एक शेर ने देखा, मेरा बच्चा भेड़ों में मिलकर भेड़ बन रहा है। उसने कहा, "तू शेर का बच्चा है, कहने लगा, "नहीं, मैं भेड़ हूँ।" वह उसे पानी के किनारे ले गया। कहने लगा, "देख, तेरी शक्ल और मेरी शक्ल में कोई फ़र्क़ है?" देखा तो कोई फ़र्क़ नहीं था। कहने लगा, "मैं भी गरजता हूँ, तू भी गरज।" वह भी गरजा, पाली भी भाग गया, भेड़ें भी भाग गईं। इस प्रकार संत–महात्मा जीवों को मन–इंद्रियों से मुक्त करके प्रभु का अनुभव प्रदान करते हैं।

इस संबंध में जेल की मिसाल दिया करते थे कि एक परोपकारी जीव जेल में गया। देखा, क़ैदियों को अच्छा खाना नहीं मिलता। उसने रुपए दे दिए। क़ैदियों को अच्छा खाना मिलने लगा। परोपकार कर आया। एक और भाई गया। उसने देखा, क़ैदियों के पास पहनने को अच्छे कपड़े नहीं हैं, सर्दी में ठिठुर रहे हैं। उसने भी रुपए दिए, उन्हें अच्छे कपड़े मिलने शुरू हो गए। वह भी परोपकार कर आया। एक और सहृदय व्यक्ति गया। उसने

देखा, क़ैदियों को काल–कोठरियाँ रहने को मिली हुई हैं, कोई रोशनी नहीं, ताज़ी हवा का गुज़र नहीं, गर्मी में भी दुखी और सर्दी में भी। उसने रुपए दिए, रहने को अच्छे मकान बनवा दिए। वह भी परोपकार कर आया।

एक और सज्जन गए, क़ैदखाने में। उन्होंने देखा, यह बेचारे क़ैदी हैं, आराम तो बेशक हर प्रकार का है, मगर वह क़ैदखाने से बाहर नहीं जा सकते। श्रेणियाँ बदलती रहती हैं– किसी को ए–क्लास मिल गई, किसी को बी–क्लास और किसी को सी–क्लास। खाने–पीने और ऐशो–आराम का प्रबंध तो सरकार भी कर सकती है, परंतु जन्म–मरण के इस क़ैदखाने से छुड़ाकर प्रभु के साथ जोड़ने का काम संत ही कर सकते हैं। *"तुरत मिलावें राम से उन्हें मिले जो कोय।"* उन्होंने क्या किया, क़ैदखाने की कुंजी उसके हाथ में थी। दरवाज़ा खोला और कहा, जो निकलना चाहे, निकल जाए। अब परोपकार तो सबने किया, किसका परोपकार सबसे बड़ा था? कहना पड़ेगा, जिसने क़ैदखाने से आज़ाद किया। शरीर धारण करके जो भी महापुरुष आए, उनका यही काम रहा कि बिछुड़ी हुई रूहों को प्रभु से मिला दिया।

परमात्मा के बारे में सब ग्रंथ–पोथियों और महापुरुषों की वाणियों में यही आता है कि परमात्मा का कोई साथी नहीं, जोड़ नहीं, भाई नहीं, बंधु नहीं, माता नहीं, पिता नहीं। जिसका कोई साथी और संबंधी नहीं, उसके साथ कौन मिलाएगा? यही कहना पड़ेगा कि वह प्रभु–सत्ता स्वयं ही किसी मानव घाट पर व्यक्त होकर अपने जीवों को अपने साथ मिलाती रहती है। वह मानव देह लेकर क़ैदियों के बीच क़ैदी की शक्ल धारण करके उनको अपने साथ मिलाने का प्रबंध करती है।

इस विषय के स्पष्टिकरण के लिए हुज़ूर 'पीटर दि ग्रेट' की मिसाल दिया करते थे। फ़रमाते थे, रूस का बादशाह, पीटर दी ग्रेट, हॉलैंड में जहाज़ बनाने का काम सीखने गया। मज़दूरों की शक्ल बनाकर मज़दूरों के साथ मिलकर काम करने लगा था, वह बादशाह ही। वहाँ रूस से निर्वासित किए हुए कई लोग थे। उन्हें वह प्रेम से समझाया करता, "तुम्हारा देश तो रूस है, चलो वापस।" वे कहने लगे, "बादशाह ने हमें निर्वासित कर दिया है, हम वहाँ नहीं जा सकते।" कहने लगा, "कोई बात नहीं। बादशाह मेरा थोड़ा–थोड़ा परिचित है, मैं सिफ़ारिश कर दूँगा।" समर्थ पुरुष बात करते हैं, तो उनकी बात में वज़न होता है। कहने का भी एक

विशेष ढंग होता है। कइयों को विश्वास हो गया कि बात तो पक्की करता है। कुछ आदमी उसके साथ चल पड़े। जब रूस की सीमा में प्रवेश किया, तो लोग सलामी करने लगे। साथ वाले आपस में बात करें कि आदमी तो रसूख वाला मालूम देता है। ज़रूर बादशाह से परिचय होगा। चलते–चलते मॉस्को शहर में जा पहुँचे। जाते ही सिंहासन पर बैठ गया। जिन्होंने उसकी बात पर विश्वास किया था, वे कहने लगे, देखा, हम न कहते थे कि इसकी बात में वज़न है।

इसी प्रसंग में रानी इंदुमती की मिसाल पेश किया करते थे। वह कबीर साहिब की शिष्या थीं। साधना करके जब सचखंड पहुँचीं, तो देखा, कबीर साहिब ही सत्पुरुष के तख़्त पर बैठे थे। कहने लगीं, "आप दुनिया में ही बता देते कि आप ही सत्पुरुष हैं, तो क्या ही अच्छा होता!" कहने लगे, "उस वक़्त तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न आता।" देखे बग़ैर समझ ही नहीं आती, न विश्वास ही बनता है। महापुरुषों को कोई एक दिन में नहीं समझ सकता। जितनी–जितनी हमारी दृष्टि खुलती जाती है, उतनी–उतनी हम उनकी महत्ता और वैभव को देखने योग्य होते जाते हैं। महापुरुषों को हम उतना ही देख सकते हैं, जितना वह अपने को दिखाएँ। अंधा आँख वाले को क्या जान सकता है?

हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि लड़का प्राइमरी क्लास में पढ़ता है, तो अध्यापक प्राइमरी की लियाक़त दर्शाता है। मिडिल में प्रवेश पाता है तो मिडिल की, हाई स्कूल में प्रवेश पाता है तो हाई स्कूल की, और कॉलेज में प्रवेश पाता है तो कॉलेज की योग्यता दर्शाता है। लोग जब पूछते है कि हुज़ूर, हम आपको क्या कहें? तो फ़रमाते, "मुझे भाई कहो, मित्र कह लो, बुजुर्ग कह लो, पिता समान समझ लो। मेरे कहने के अनुसार 'नाम' की कमाई करो और चलो अंदर। अंदर दिव्य–मंडलों पर जब गुरु की शान को देखो, तो जो चाहे मुझे कह लेना।"

संतों की अपार दयामेहर के सिलसिले में बुख़ारा के बादशाह इब्राहिम अधम की मिसाल हुज़ूर दिया करते थे। एक बार शहर में चले जा रहे थे। देखा, एक शराबी नशे में चूर नाली में पड़ा है। बादशाह को दया आई। उसे उठाया, उसका सिर अपनी गोद में रख लिया। मुँह पोंछा। होश आया। देखा, बादशाह की गोद में पड़ा है। रो पड़ा। कहने लगा, "मैं

वह ज़लील इंसान हूँ कि कुत्ते भी मेरा मुँह नहीं चाटते। तू बादशाह! कहाँ तू कहाँ मैं। किस मुँह से तेरा शुक्राना करूँ!" गिरे हुओं को उठाने के लिए और उनके पापों के भार को हल्का करने के लिए महापुरुष दुनिया में आते हैं। *"कर्म का बहुत उठाया भार।"* – सार बचन (बचन 19, शब्द 21) यह दृष्टांत उस महापुरुष की अपार दयामेहर की झाँकी प्रस्तुत करता है।

हर सत्संगी के साथ जो–जो घटनाएँ घटीं, उनमें से सिर्फ़ चंद नमूने के तौर पर यहाँ वर्णन की जा रही हैं। हुज़ूर बड़े प्यार से भूले–भटके जीवों को समझाकर सीधे रास्ते पर लाते थे। फ़रमाया करते थे, "गुरु पावर अभुल्ल है अर्थात सर्वज्ञ है, घट–घट की जाननेहार है। जीव संतों के पास जाता है, तो वे उसके अंतर की स्थिति को इस तरह साफ़–साफ़ देख लेते हैं, जैसे शीशे के मरतबान में अचार पड़ा है या मुरब्बा, साफ़ दिखाई दे जाता है। लेकिन वह किसी का परदाफ़ाश नहीं करते। प्यार से धोने की कोशिश करते हैं।" हुज़ूर के समझाने का ढंग भी निराला था। स्पष्टतः किसी को कुछ नहीं कहते थे। बात किसी से करनी, साथ वाला अपनी जगह शर्म के मारे पानी–पानी हो जाता। फ़रमाया करते थे कि शिष्य ने कोई कसूर भी किया है, तो आख़िर मैंने ही उसे उठाना है। मैं उसको क्यों गिराऊँ? मनुष्य भूलनहार है।

काजर की कोठरी में कैसो ही सियानो बने,
दाग लागत पर लागत पर लागत है।

कई भाई आते, भरी संगत में अपने दोष बतलाकर प्रार्थना करते, सच्चे पादशाह! मेरे कसूर माफ़ कर दे। मेरे गुनाह बख़्श दे। संगत की ओर संकेत करके कहते, "कोई इसके पाप उठाता है?" कौन उठाए? पाप का भार उठाना या पाप क्षमा कर देना किसी इंसानी ताक़त के बस की बात नहीं। प्रभु ही क्षमा कर सकता है या गुरु, जिसके अंतर में वह प्रकट है। हुज़ूर हाथ उठाकर फ़रमाते, "बस, आगे मत करना और भजन कर। तेरे सारे पाप धोए जायेंगे।"

ईशु मसीह के जीवन में आता है कि एक कुल्टा नारी को लोग पक. ड़कर ईशु के पास ले गए कि इसने व्यभिचार किया है। वे यहूदी थे। ईशु ने पूछा, "तुम्हारी समाज–धर्म मर्यादा में इसका क्या दंड निश्चित है?" वह कहने लगे, "इसे संगसार करना चाहिए अर्थात पत्थर मारकर जान से मार

डालना चाहिए। ईशु ने कहा, "बहुत अच्छा। इसको खड़ा कर दो। परंतु पहला पत्थर वह इसे मारे, जिसने जीवन में कोई पाप न किया हो।" किसी को हिम्मत नही हुई, पत्थर मारने की। फिर उस स्त्री से कहने लगे, 'Do no more,' आगे अब ऐसा न करना।

सोचा था कि हुज़ूर के जीवन की असंख्य घटनाओं में से कुछ अलौकिक घटनाएँ, जो मन–बुद्धि और कल्पना से परे हैं और जिन्हें लोग करामात या चमत्कार का नाम देते हैं, उन्हें एक पृथक् प्रकरण में दिया जाए। परंतु जो स्वयं चमत्कार हो, जिसकी हर बात चमत्कार हो, वहाँ चमत्कार का विवेचन कैसे किया जाए? हुज़ूर का जादू भरा व्यक्तित्व अपने आपमें एक चमत्कार था। जो बेजोड़ काम उन्होंने किया, वह चमत्कार से भी परे की चीज़ है। अध्यात्म की दुर्लभ निधि, जो अगले वक़्तों में बड़ी खोज और मेहनत से मिलती थी, फिर भी बहुत थोड़े लोगों के हिस्से में आती थी, उसको हुज़ूर ने भौतिकता के इस युग में आम कर दिया। प्रभु–सत्ता वही थी, जो महापुरुषों के मानव घट में व्यक्त होकर जीवों को प्रभु के साथ जोड़ती चली आ रही है, जिसके बारे में हुज़ूर फ़रमाते थे कि एक बल्ब फ़्यूज हो गया, दूसरा लग गया, दूसरा फ़्यूज हो गया, तीसरा लग गया। प्रकाश तो वही है। हम तो प्रकाश के पुजारी हैं। तो जितना घोर अंधेरा हो, उतनी ही रोशनी भी बढ़ती जाती है। हुज़ूर महाराज ऐसे समय में आए जब रेडियो, टेलीविज़न, सिनेमा के रंगा–रंग समान लोगों को आकर्षित करने के लिए विद्यमान हैं। वह सदेह प्रकाश ऐसा विलक्षण आकर्षण और सौम्य स्वरूप लेकर आया कि जिसने एक झलक देखी, हज़ार जान से कुरबान हो गया, जिस पर एक नज़र पड़ी, कहीं का न रहा। हुज़ूर स्वामी जी महाराज के इस वचन को पूरा करने के लिए कि "अब के जो धारा आई है, वह सबका कल्याण करके रहेगी।" हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज सावन की घटा बनकर आए और अध्यात्म की वह झड़ी लगाई कि सब जल–थल एक कर दिए। अब वही ताक़त कृपाल बनकर दुहाई दे रही है,

पिता कृपालि आगिआ इह दीनी बारिकु मुखि माँगै सो देना।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰5, पृ॰1266)

बाइबिल में आता है कि "दरवाज़ा खटखटाओ, वह तुम पर खोला

जाएगा।" – पवित्र बाइबिल (लूका 11:9) पहले किसी ज़माने में रूहानियत इतनी आम नहीं हुई थी। अगले वक़्तों में अधिकारी बनाकर 'नाम' दिया जाता था। वर्षों सेवा कराकर, तैयार करके 'नाम' दिया जाता था। आज पहले दिन ही सामने बिठाकर 'नाम' का पूरा भेद और व्यक्तिगत अनुभव दिया जाता है। जैसा कि पहले ज़िक्र आया, इस ज़माने में गुरु–सत्ता ने दोनों काम अपने ज़िम्मे ले लिए हैं, मानव के निर्माण का और उसको प्रभु की गोद में पहुँचाने का।

जिनि माणस ते देवते कीए करत न लागी वार।।

– आदि ग्रंथ (आसा म०1, पृ.462)

इंसान बने, तभी देवता बनेगा! नम्रता संतों का शृंगार है। वे लाख परदा करें, वह दिव्य प्रकाश अपनी झलक दिखा ही देता है। जब वह मानव के स्तर से बोलता है, तो अपने को गुनहगार बंदा, दास और सेवक कहता है। जब वह प्रभु–सत्ता के स्तर पर बात करता है, तो पुकार उठता है, "मैं और मेरा पिता एक हैं।" – पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 10:30)

पिता पूत एकै रंगि लीनै।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1141)

और, इसी संदर्भ में :

ज्यो बोलावहि त्यों नानक दास बोलै।।

– जनम साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

इस घोर कलियुग के ज़माने में सत्य की अपार दयामेहर और पूरे गुरु जी सामर्थ्य का प्रमाण हुज़ूर के इन वचनों में मिलता है :

1. पूरे गुरु से 'नाम' लेकर यदि यमों के साथ जाना है, तो ऐसे नाम और गुरु– दोनों को हमारा सलाम है।

2. नाम की महिमा देखनी है, तो किसी सत्संगी को मरते देखो, तुम्हें पता चलेगा कि गुरु की संभाल क्या होती है।

3. गुरु जब 'नाम' देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है और उस वक़्त तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक उसे सत्पुरुष की गोद में न पहुँचा दे।

ये कथन सत्य हैं। इनकी सत्यता पूर्व से पश्चिम तक विश्व के हर देश में जनसाधारण और विशिष्ट व्यक्तियों के निजी अनुभव से सिद्ध हो रही है। अध्यात्म, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता, हुज़ूर महाराज की दया से वह सिद्ध और प्रमाणित हो रहा है। उसकी डिमॉन्स्ट्रेशन अर्थात व्यक्तिगत अनुभव लोगों को मिल रहा है। इन हालत की रोशनी में हुज़ूर के जीवन की किस घटना को अलौकिक कहें, किसको न कहें, यह निर्णय करना कठिन है। मज़ा यह है कि ऐसी घटनाएँ कुछ ऐसे सहज स्वभाव ढंग से हो जाती थीं कि चमत्कार, चमत्कार नहीं दिखता था। हुज़ूर कई बार सत्संग कर रहे होते, तो बादल घिर आते और गरजने लगते। सत्संग करते–करते आसमान की ओर नज़र उठाते, "ठहर जा भाई, कम करण दे," और बादल थम जाते। कुछ ऐसे सहज स्वभाव यह बात होती कि ख़्याल तक नहीं होता था कि अनहोनी बात हुई है। वर्षा तभी होती, जब सत्संग समाप्त हो जाता।

अमृतसर की घटना है। हुज़ूर दुनीचंद नागपाल की कोठी में ठहरे हुए थे। एक दिन संध्या समय एक सिक्ख भाई आया। पूछा, "महात्मा जी कहाँ हैं?" महाराज कृपाल सिंह जी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने पूछा, "क्यों भाई, कैसे आए हो?" कहने लगा कि रात को हुज़ूर मेरे अंतर में आए थे और अपना पता दे गए कि मैं वहाँ ठहरा हुआ हूँ, तुम वहीं चले आना। इसी प्रकार कराँची का वृत्तांत है। एक मस्ताना आया, हुज़ूर को मत्था टेककर झूमता हुआ भाग निकला। लोगों ने पूछा, "तुम्हें क्या मिल गया, जो इतने ख़ुश हो?" कहने लगा, "मुझे मेरा यार मिल गया।" तो आँख–आँख को पहचानती है।

आँखें बख़्शने का वृत्तांत

इतिहास बताता है कि ईशु ने अंधों को आँखें दे दी थीं। हुज़ूर के समय की एक महत्त्वपूर्ण घटना है, जो बीबी हरदेवी से संबंध रखती है। डॉ. जॉनसन ने भी इसका ज़िक्र किया है। आज इस घटना को 40 साल होने आते हैं। 1927-28 ई. में रावलपिंडी में यह घटना घटी थी। बीबी की आँखों की रोशनी जाती रही, आँखें तो थीं, पर उनमें रोशनी न थी। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया कि ओप्टीकल नर्व (दृष्टि की नस), जिसका संबंध दृष्टि से है, वह मुरझा गयी है, इसकी नज़र ठीक नहीं हो सकती। बीबी को बाहर

तो कुछ भी दिखाई नहीं देता था, परंतु अंतर में हुज़ूर के दर्शन होते थे। इसलिए ज़्यादा घबराहट नहीं थी। एक दिन उसके पति, लाला राजाराम और महाराज कृपाल सिंह जी पास बैठे थे कि वह कहने लगी, "मेरे अंतर में हुज़ूर की महाराज कृपाल सिंह जी से बातें हो रही हैं। यह सिफ़ारिश यह कर रहे हैं कि हुज़ूर दया करो। हुज़ूर कह रहे हैं, "अच्छा, बहुत अच्छा, " और उसी वक़्त बीबी को सहसा रोशनी आ गई। वह चारपाई से उठकर दौड़ी कि मुझे दिखने लगा, मुझे दिखने लगा।

रोटियों का अक्षुण्ण भंडार

इसी प्रकार ईशु मसीह के बारे में ज़िक्र आता है कि एक टोकरी में बहुत लोग रोटी खा गए, फिर भी रोटयाँ बची रहीं। महाराज कृपाल सिंह जी इस संदर्भ में हुज़ूर के समय का एक दृष्टांत देते हैं। यह घटना सैयद कसराँ में घटी। हुज़ूर वहाँ गए, बड़ी जनता इकट्ठी हुई। अकाली भाइयों ने भी वहाँ दीवान लगाए। कृपाल सिंह जी ने सत्संग के साथ–साथ लंगर का भी प्रबंध कर रखा था। एक दिन लंगर बरता जा चुका था। डेढ़–दो बजे का समय था, दो–तीन सौ के लगभग अकाली भाई लंगर बंद कराने की नीयत से आ गए और रोटी माँगी, लाओ, जल्दी रोटी खिलाओ। कृपाल सिंह जी लंगर में गए, तो केवल आधी टोकरी रोटियाँ और एक बाल्टी दाल की बची पड़ी थीं। सेवादारों को कहा कि लोह गर्म करो और रोटियाँ पकाओ। इधर वह लोग जल्दी कर रहे थे। इतने में हुज़ूर महाराज लंगर में आ गए और फ़रमाया, "कृपाल सिंह, रोटी क्यों नहीं खिलाते?" विनती की, "हुज़ूर, आधी टोकरी रोटियाँ तैयार हैं, एक–एक करके भी इनके हिस्से नहीं आ सकतीं। रोटियाँ पकने का इंतज़ार है।" हुज़ूर ने फ़रमाया, "परवाह नहीं, कपड़ा तानकर रोटियाँ बरताते जाओ।" रोटियाँ बाँटी गईं, लोग खाते गए, रोटी पूरी हो गई, उल्टा कितनी ही रोटियाँ बच गईं।

असाध्य रोगी पर दयामेहर

हुज़ूर महाराज के प्रेमी शिष्य डॉ. वासुदेव की धर्मपत्नी की टांग में गेंगरीन हो गया। यह ऐसा रोग है कि डॉक्टर तत्काल ऑपरेशन करके टांग काट देते हैं, अन्यथा सारे शरीर में ज़हर फैल जाता है। हुज़ूर से विनती की। देखा, दवा दी। एक–दो दिन हाल पूछते रहे। कुछ दिनों के बाद टांग

बिल्कुल ठीक हो गई, यद्यपि इस रोग का इलाज डॉक्टरों तक के पास नहीं। इस घटना को आज 40 साल से ऊपर समय जा चुका है। डॉ. वासुदेव की अवस्था 80 से ऊपर है और उनकी धर्मपत्नी भी जीवित हैं।

परिवारे साधार

महाराज कृपाल सिंह जी हुज़ूर महाराज जी की दयामेहर के संबंध में अपनी चचेरी बहन राम लुभाई का क़िस्सा सुनाया करते हैं। यह लाहौर में थे। वह वतन में थी। वह ऐसी बीमार पड़ी कि हालत नाजुक हो गई। समाचार मिलने पर यह छुट्टी लेकर लाहौर से चल पड़े। जिस दिन इनको वहाँ पहुँचना था, उससे पहली रात वह चारपाई पर पड़ी कहने लगी, "भापा जी (कृपाल सिंह) जी आए हैं, साथ में एक बूढ़ा व्यक्ति भी है। भापा जी कहते हैं कि यह हैं और मुझे दिखाकर चले गए। बुलाओ भापा जी को, वह कहाँ चले गए?" घरवालों ने कहा, वह तो नहीं आए। कहने लगी, "नहीं, अभी–अभी आए थे। एक बूढ़े व्यक्ति को पीछे छोड़ गए हैं। यह सामने जो खड़ा है।"

कृपाल सिंह जी दूसरे दिन बारह–एक बजे वहाँ पहुँचे, तो वह कहने लगी, "तुम रात आए थे, कहाँ चले गए? एक बूढ़ा व्यक्ति भी आपके साथ आया था, उसको बताकर चले गए।" उसकी हालत सुधरने लगी। कृपाल सिंह जी ने बहन से कहा, "यदि तुम ठीक हो जाओ और वह बूढ़ा व्यक्ति दिखाई दे, तो पहचान लोगी?" कहने लगी, "अवश्य।" दो–तीन महीने बाद हुज़ूर रावलपिंडी गए, तो लाला राजाराम के मकान पर वह खड़ी थी। कृपाल सिंह जी ने कहा, "देख, वह कौन आ रहे हैं?" कहने लगी, "यह वही हैं, जिन्हें आप छोड़ गए थे।" तुम्हारा कल्याण तो तुम्हारा, तुम्हारे प्रियजनों का भी कल्याण वह करते हैं, तुम्हारे बच्चों का भी। लेकिन, कुछ उधर मुँह करो, दिल को दिल से राह बनाओ। हुज़ूर महाराज की दयामेहर का वर्णन कभी समाप्त नहीं हो सकता, ग्रंथ ख़त्म हो जाएँ, यह मज़मून पूरा नहीं होगा। हाल की एक मिसाल देकर हम इस वर्णन को समाप्त करते हैं।

दैनिक मिलाप दिल्ली के ॲसिस्टेंट न्यूज एडिटर, श्री मनमोहन नाथ 'शरर' 'नाम' के बारे में बड़ी बहस किया करते थे। धर्मग्रंथों का गूढ़

अध्ययन किया है, परमार्थ अभिलाषी हैं। बातों से समझाया नहीं जा सकता कि 'नाम' क्या है? बड़ी मुश्किल थी।

'सत्–संदेश' की एक फ़ाइल, जिसमें साल भर की प्रतियाँ होती हैं, पढ़ने के लिए घर ले गए। कुछ दिन बाद बहुत प्रसन्नचित्त आए, कहने लगे, "'नाम' क्या है, यह तो मैं भली–भाँति समझ गया हूँ, परंतु जो समझा है, समझा नहीं सकता।" उन्होंने बताया कि 'सत्–संदेश' के एक अंक में हुज़ूर महाराज की सुंदर तस्वीर थी, जिसे देखकर वह मोहित हो गए। पढ़ना शुरू किया, तो रात हो गई। एक लेख में कुछ ऐसा प्रसंग था, जिसे पढ़कर दिल में हूक उठी, काश! इन आँखों से हुज़ूर के दर्शन किए होते। पढ़ते–पढ़ते सो गए। रात स्वप्न में हुज़ूर महाराज आ गए और इतने विस्तार के साथ 'नाम' का स्पष्टिकरण किया कि कपाट खोल दिए। महाराज कृपाल सिंह जी उन दिनों विश्व–यात्रा पर गए हुए थे। वहाँ से लौटे, तो शरर साहब और उनके सारे परिवार ने 'नाम' ले लिया।

चमत्कार क्या है?

इन बातों को सुनकर लोग कहेंगे कि यह मात्र क़िस्से–कहानियाँ हैं। प्रकृति के नियम के सर्वथा उलट हैं। हमें यही मालूम नहीं कि चमत्कार या क़रामात क्या होती है? 'क़रामात' शब्द क़रामत से निकला है, जिसका अर्थ है– बुज़ुर्गी या महानता। अंग्रेज़ी भाषा में इसे मिरेकल कहते हैं, जो लैटिन भाषा के मिरेकुलम शब्द से निकला है, ऐसी घटनाएँ जो देखने वाले को चकित कर दें। उसको 'मोजिजा' भी कहते हैं। ईशु मसीह की करामातें उनके महात्मा होने का प्रमाण हैं। लॉक का कथन है कि क़रामात एक ऐसा प्रमाण–पत्र है, जो प्रभु किसी पैग़ंबर या अवतार को देकर भेजता है। महापुरुष क़रामातों से ख़ाली नहीं होते। वास्तव में करामात एक ऐसा कौतुक है, जिसका कारण किसी को मालूम नहीं। किसी बात को क़रामात कहना अज्ञानता का प्रमाण है। पतंजलि सूत्र के तीसरे भाग में श्लोक 50-51 में आया है कि ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ पूर्णता की टहनियाँ हैं। वह अपने आप में पूर्णता नहीं। वह समाधि के मार्ग में आगे–पीछे गिरे हुए फूल हैं। पूर्णता का अभिलाषी उन्हें उठाने की परवाह नहीं करता। इस बारे में कड़ी मनाही है कि ऋद्धियों–सिद्धियों पर ध्यान न दिया जाए।

श्री गुरु हरकिशन साहिब के बारे में ज़िक्र आता है कि कुछ पंडित उनसे शास्त्रार्थ करने के लिए गए। कहने लगे, आपने हरि और कृष्ण नाम रखाया है। हरि और कृष्ण हो, तो गीता पर शास्त्रार्थ करो। आपने एक दिन एक अनपढ़ के सिर पर छड़ी रख दी। उसने ऐसा शास्त्रार्थ किया कि पंडितों को निरुत्तर कर दिया। यह चीज़ मन की एकाग्रता का खेल है। ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ–करामातें बाज़ार के मदारी के खेल हैं। एकाग्रता से अनायास यह शक्तियाँ आ जाया करती हैं। 'नाम' की साधना करने वाले महात्माओं में ये स्वतः उत्पन्न हो जाती हैं, परंतु वे इनसे काम नहीं लेते। पेशावर में 1919 ई. में मिशन एडवर्ड कॉलेज में एक हिप्नोटिस्ट आया। एक बच्चे को हिप्नोटिज़्म अर्थात मानसिक शक्ति से अपने प्रभाव में ले लिया। अब उस लड़के से कोई किसी भाषा में प्रश्न पूछे, वह उसी भाषा में उसे जवाब देता था। प्रोफ़ॅसर ने लॅटिन भाषा में सवाल किया, लड़के ने तत्काल लॅटिन भाषा में ही जवाब दिया। फिर उसने लड़के को ज़मीन से उठाकर हवा में ऊपर खड़ा कर दिया। तो यह सारी चीज़ें संभव हैं।

एक बार मेडम ब्लावाट्स्की लाहौर आई। एक सभा में कुछ लोगों से बातचीत हो रही थी। एक प्रोफ़ॅसर उठकर कहने लगा, "मॅडम, जो कुछ आप कह रही हैं, यह सब क़िस्सा–कहानी है और ऐसे ही असंभव है, जैसे कि छत से फूलों का बरसना।" मॅडम ब्लावाट्स्की ने कहा, "प्रोफ़ॅसर! क्या तुम समझते हो कि यह बात असंभव है?" इतने में छत से फूल गिरने लगे और मेज़ भर गई। प्रोफ़ॅसर चकित रह गया। मॅडम ब्लावाट्स्की ने कहा, "ये बातें प्रकृति के गुप्त नियमों के अनुसार है, परंतु हमको अभी उनका ज्ञान नहीं।"

शम्स तबरेज़ मौलाना रूम से मिलने गए। वे लड़कों को पढ़ा रहे थे। पूछा, "ई चीस्त? अर्थात यह सब क्या है?" मौलाना रूम ने जवाब दिया, "ई हाल अस्त नमी फ़हमी अर्थात यह ऐसा इल्म है, विद्या है, जिसका तुम्हें कोई ज्ञान नहीं।" लड़के आधी छुट्टी को चले गए। शम्स तबरेज़ ने लड़कों की किताबें, तख़्तियाँ उठाकर पानी के हौज़ में डाल दीं। छुट्टी के बाद मौलाना रूम ने आकर पूछा, "किताबें–बस्ते कहाँ गए?" शम्स तबरेज़ एक–एक करके किताबें तख़्तियाँ हौज़ से निकालकर देने लगे। मौलाना रूम यह देखकर हैरान थे कि वह सब ख़ुश्क थीं, उन पर पानी का ज़रा असर न

हुआ था। पूछा, "ई चीस्त?" शम्स तबरेज़ ने जवाब दिया, "ई क़ाल अस्त नमी फ़हमी अर्थात यह वह इल्म है, जो तू नहीं जानता।"

ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ ध्यान की एकाग्रता का परिणाम हैं। महात्मा इन पर ध्यान नहीं देते। वह इनसे उपराम होते हैं। मग़रिबी साहिब फ़रमाते हैं :

बा मा सुख़ंन अज़ कशफ़ो-करामात मगूइद,
चूं मा ज़े सरे कशफ़ो-करामात गुज़श्तीम।

अर्थात मेरे आगे अंतर्दृष्टि और चमत्कार की बात न करो। मैं इनसे आगे बढ़ गया हूँ। दरजाते–उलवी अर्थात ऊँची पदवी के महात्मा क़रामातों से काम नहीं लेते और दूसरों को भी इनका प्रयोग करने की मनाही करते हैं, क्योंकि ये चीज़ें परमार्थ के रास्ते में बाधक सिद्ध होती हैं। यद्यपि 'नाम' की कमाई (साधना) से ऋद्धि–सिद्धि स्वतः आ जाती है।

नव निधि नामु निधानु रिधि सिधि ता की दासी।।
– आदि ग्रंथ (सवैए म॰4, पृ॰1397)

महापुरुष इनसे काम नहीं लेते, फिर भी सहज–स्वभाव ऐसी बात. ें हो जाती हैं, जिनको देख लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं। उनका सबसे बड़ा चमत्कार यह है कि मन–इंद्रियों के घाट से स्वयं भी ऊपर आते हैं, और जो कोई उनकी शरण में जाए, उसको भी इंद्रियातीत करने में समर्थ हैं। जो बात योगिजन सैकड़ों वर्ष लगाकर प्राप्त करते थे, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की अपार कृपा से आज अध्यात्म की वह अलभ्य निधि गुरु की शरण में आकर पहले दिन ही मिल जाती है, उसका व्यक्तिगत अनुभव सामने बिठाकर तत्काल प्रदान किया जाता है। तो 'नाम' या 'शब्द' को प्रकट करने का विलक्षण चमत्कार, जो अनुभवी महापुरुषों द्वारा होता है, उससे अधिक और चमत्कार दिखाने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं।

हुज़ूर महाराज की ज़िंदादिली

हुज़ूर महाराज गुलाब के फूल के समान हर वक़्त खिले रहते थे। जब खुलकर हँसते थे, तो सारा शरीर, कंधा तक हँसता मालूम होता था। मुखमंडल से आनंद और मस्ती की किरणें बिखरकर सारे मंडल को

ऐसे जगमगा देती थीं कि देखने वालों के दिल की कली खिल जाती थी। सत्संग में कोई ऐसा दृष्टांत प्रस्तुत करते समय, जो हास्यरस का पुट लिए हो, खुलकर कहकहा लगाते, तो चेहरा ख़ुशी से दमक उठता था। मौलाना रूम, बुल्लेशाह और अन्य महात्माओं के उपदेशात्मक परंतु हास्यरस पूर्ण दृष्टांत प्रस्तुत करते थे, पर कहने का ढंग हुज़ूर का अपना था। चंद उदाहरण प्रस्तुत हैं :

बंदर और बकरे का दृष्टांत हुज़ूर सत्संग में अक्सर पेश करते थे। किस्सा यूँ है कि एक व्यक्ति ने बंदर और बकरा पाल रखा था। बंदर क्या करता, मालिक के जाने के बाद सारा दूध पी जाता। जब मालिक के लौटने का समय होता, तो अपनी बला बकरे के सिर मंढने के लिए उसका रस्सा खोल देता और मुँह पर दूध लगा देता और आप गले में रस्सा डालकर मोमिन (सज्जन) बनकर बैठ जाता। मालिक आकर देखता, दूध ग़ायब है, बंदर के गले में रस्सी पड़ी है, बकरा आज़ाद है और उसके मुँह पर दूध लगा हुआ है। वह बकरे की डंडे से पिटाई शुरू कर देता। बंदर को कुछ न कहता, जो सारी कारस्तानी करके साधू बनकर बैठा रहता। यहाँ पहुँचकर बड़े ज़ोर से कहकहा लगाते। कुछ ऐसे ढंग से यह किस्सा सुनाते थे कि सारी संगत हँसने लगती। यह दृष्टांत इस संदर्भ में प्रस्तुत करते थे कि लड़ाई मन से है और अग्नि ताप कर और उपवास कर–करके देह को घुलाया जा रहा है। दोष मन का है, सज़ा शरीर को मिल रही है।

एक और दृष्टांत देते थे कि बुढ़िया की लड़की बीमार थी। बचने की कोई आशा न रही थी। बुढ़िया रोज़ प्रार्थना करती, हे यमराज! मेरी जान ले ले, मेरी बेटी को छोड़ दे। अब ऐसा संयोग हुआ कि एक बैल अंदर घुस आया। उसने हांडी में मुँह डाल दिया। उसके सींग हांडी में अटक गए। वह हांडी समेत इधर–उधर फिरने लगा, क्योंकि दिखाई तो देता नहीं था कहाँ जाए, हांडी बाहर से काली, बैल का शेष सारा शरीर सफ़ेद। बुढ़िया की दृष्टि पड़ी, तो समझी यमराज मुझे लेने आ गए। बेटी के पलंग की ओर संकेत कर कहने लगी, "मरन वाली मैं नहीं, ओह मंजे ते लेटी ए।" दिल और ज़बान में जो अंतर होता है। उस प्रसंग में यह दृष्टांत देते थे।

लाहौर में लाला वीरभान, ऑसिस्टेंट डायरेक्टर ऑफ़ इंडस्ट्रीज़ पंजाब के मकान में पढ़े–लिखे अमीर लोगों ने हुज़ूर महाराज से ऊट–

पटांग सवाल करने शुरू कर दिए। यूँ ही बहस छेड़ने के लिए। हुज़ूर ने अपने ख़ास अंदाज़ में फ़रमाया, "न मुल्ला जंगल अच्छे, न रिच्छ नसीती गच्छे," अर्थात मुल्ला का जंगल में क्या काम और रीछ को मस्जिद से क्या वास्ता। पढ़े–लिखे शिक्षित वर्ग के लोगों को समझा रहे थे कि परमार्थ सोहबत–संगति का विषय है। मिलते रहो, तो समझ आए, परंतु तुम्हारी रुचि उस ओर नहीं। दुनियादारी की ज़िंदगी के संबंध में जंगल की उपमा महापुरुषों की वाणियों में अक्सर मिलती है :

बिखै बनु फीका तिआगि री सखीए नामु महा रसु पीओ।।

– आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰802)

रीछ की मिसाल ज़रा सख़्त थी किंतु, न रिच्छ मसीति गच्छे में ठेठ पंजाबी बोली का जो ख़ास ठठोल है, उसने बात पैदा कर दी और किसी को बुरा भी न लगा।

एक नमाज़ी की मिसाल दिया करते थे। उसकी बीबी ने कहा कि रात की नमाज़ पढ़ने से चेहरे पर ख़ुदा का नूर प्रकट होता है। चुनाँचे एक दिन वह पिछले पहर उठा। हाथ–मुँह धोकर नमाज़ पढ़ने की तैयारी करने लगा, तो पानी न मिला। सोचा, तयम्मम कर लें अर्थात मिट्टी से हाथ–मुँह साफ़ कर लें। फ़र्श पर हाथ फेरा, तो उलटे तवे पर हाथ जा पड़ा। सारा मुँह काला हो गया। प्रातः पौ फटते ही ख़ुश–ख़ुश बीबी के पास गया कि देख, ख़ुदा का नूर चेहरे पर झलकता है कि नहीं? उसने देखा। कहने लगी, "नूर अगर काला है, तो घटा बांधकर आया है," और हुज़ूर बड़े ज़ोर से कहकहा लगाते और सारी संगत के हँसी के फ़व्वारे फूट पड़ते।

इसी प्रकार का एक दृष्टांत साईं बुल्लेशाह का प्रस्तुत करते थे। एक आदमी बुल्लेशाह के पास आया कि साईं जी, आप अल्लाह वाले हैं। दुआ कीजिए, मेरी बीवी जो घर से भाग गई है, वापस आ जाए। बुल्लेशाह ने सोचा, "दुआ करता हूँ, तो यहाँ भीड़ लग जाएगी।" उस व्यक्ति को साथ लिया और चल पड़े। आगे हींजड़े नाच रहे थे और यह गाना चल रहा था, *"चीना इंच छिड़िन्दा यार।"* बुल्लेशाह उनमें शामिल होकर नाचने लगे और मौज में आकर यह तुक गाई :

अंबियां वाली बगीची ए ते खज्जिया वाला बाग़।
खोतिया वाला साध बुलांदा सुत्ती एं ते जाग।

चीनां इंज छिड़िंदा यार।

ये लोग अंतर्यामी होते हैं। देखा, किस हालत में है, वह स्त्री! तवज्जोह दी। वह प्रेमी की शय्या छोड़ दौड़ी चली आई और आकर हींजड़ों के संग नाचने लगी। लोगों ने बुल्लेशाह के पिता से जो काज़ी थे, शिक़ायत की। वह आगे ही खिजे बैठे थे कि सैयद का बेटा होकर गधे पाल रखे हैं, लोक–लाज त्याग बैठा है। क्रोध से भरे घर से चल पड़े। बुल्लेशाह ने दूर से देखा, काज़ी साहब चले आ रहे हैं। हाथ में लंबी–माला, माथे पर सिजदों से गट्टे पड़े हुए। गाते–गाते यह तुक पढ़ी :

लोकां दियां मालां ते काज़ी दे हत्थ माल।
सारी उमर मत्थे टेके खुस न सकिया वाल।
चीनां इंज छिड़ींदा यार।

अर्थात बाहर चिह्न–चक्र धारण करने से क्या होता है। अंतर की अवस्था क्या है? जब वह पास आए, तो बुल्लेशाह ने कहा, "ये भी क्या याद करेंगे!" तवज्जोह दी। काज़ी साहिब भी लोक–लाज त्याग हींजड़ों के संग नाचने लगे। तभी बुल्लेशाह ने यह तुक गाई :

पुत जिनांदे रंगले मापियां नूं देंदे तार।
चीनां इंच छिड़ीन्दा यार।

अर्थात जिनके बेटे प्रभु के रंग में रंगे गए, वे माता–पिता को भी तार देते हैं, और माता–पिता को तारने का प्रकट स्वरूप यह कि पिता, जो नगर के काज़ी हैं, सारे अदब–आदाब क़ायदे–सलीक़े और रख–रखाव को त्याग हींजड़ों के संग नाच रहे हैं। इस बात पर हुज़ूर खुलकर कहकहा लगाते और संगत के कहकहों के फूलों से सारा मंडल महक उठता।

एक मस्त फ़क़ीर का लतीफ़ा हुज़ूर सुनाया करते थे कि एक बांझ स्त्री किसी मस्त फ़क़ीर के पास जाकर कहने लगी, साईं जी मुझे संतान के लिए तावीज़ लिख दो। कई बार कहा। एक दिन मौज में आकर उसने काग़ज़ के टुकड़े पर कुछ लिख दिया। स्त्री ने तावीज़ बनाकर गले में डाल लिया। एक के बाद एक पाँच बच्चे उस स्त्री के हुए। ख़्याल आया तावीज़ तो बड़ा असर रखता है। देखूँ क्या मंत्र इस पर लिखा है। देखा तो लिखा था, "छिंज पई दरबार धरेकां फुल्लियाँ।" 'छिंज' कहते हैं दगल को और

'धरेक' एक पेड़ का नाम है। वह स्त्री फ़क़ीर के पास गई कि साईं जी यह आपने क्या लिख दिया, "छिंज पई दरबार धरेकां फुल्लियाँ।" कहने लगा, "अच्छा, फेर फुल्लियाँ फुल्लियाँ न फुल्लियाँ, ते न सही।" घर गई, तो सारे बच्चे मरे पड़े थे। हुज़ूर लतीफ़े के द्वारा समझाते थे कि सारा खेल तवज्जोह का है।

हुज़ूर अपने बारे में भी एक लतीफ़ा बयान करके ख़ूब हँसा करते। फ़रमाते थे, "इक बीबी कहन लग्गी, मैं कुछ अर्ज़ करनी ए। पुच्छिया की कहनीं ए। कहन लग्गी घरदे गंगा स्नान लई तुरे पये, ते मैंनू वी नाल जाना पया। उत्थे जाके सारेयां नाल अश्नान वी करना पया। ओन्हां गंगा माई नूं चढ़ान लई इक पैसा दित्ता। मैं नां कीती ते गुस्से होन लग्गे। मैंनू वी गुस्सा आया, ते मैं पैसा लैके गंगा माई दे मत्थे मारिया। फेर? फेर तूं लोप हो गयों। अच्छा होया सो होया, तूं इष्ट क्यों बदलेया। कन्न फड़ फेर नहीं करांगी। ते की कहन्दी ए, तूं वी कन्नां नूं हत्थ ला, फेर नहीं लुकना।" इतने ज़ोर से हुज़ूर कहकहा लगाते कि दिल हरा हो जाता। जिन भाग्यवान लोगों ने यह अनुपम दृश्य देखे हैं, वह उन्हें भूल नहीं सकते। हुज़ूर जब हँसते थे, तो दरोदीवार (द्वार–दिवालें) झूमते और हँसते दिखाई देते थे।

हंसते थे वस्ल में दरोदीवार मेरे साथ

यह स्थिति थी जब वह विद्यमान थे। वह सारे कहकहे उनके दम के साथ थे। हाय! क्या दिन थे, जो सपने समान बीत गए। उनके जाने के बाद यह स्थिति है :

अब रो रहा हूँ मैं दरोदीवार देख कर

यह विरह–विह्वलता बनी रहे, तो क्या बात है!

सरल, संक्षिप्त, सारगर्भित कथन

संतों का क़ायदा है कि थोड़े और सरल शब्दों में वह ग्रंथ–पोथियों का सार प्रस्तुत कर देते हैं। सरलता और संक्षिप्त–अतिसंक्षिप्त वर्णन उनके कथन व लेखन की जान है। हुज़ूर महाराज चंद शब्दों में बहुत पते की बात कह जाते थे और ऐसी सादग़ी और सफ़ाई के साथ कि बात दिल में उतर जाती थी। उनके सत्संग में एम.ए. वाला एम.ए. की, मिडिल वाला

मिडिल की और प्राइमरी कक्षा वाला प्राइमरी की ख़ुराक ले जाता। अनपढ़ से अनपढ़ व्यक्ति को भी ऐसे स्पष्ट संकेत मिल जाते कि सार–तत्त्व शीशे की तरह साफ़ सामने आ जाता। थोड़े शब्दों में गूढ़ तत्त्व की बात कह जाना, उनके कथन का जौहर था। अंग्रेज़ी में कहावत है, 'Brevity is the soul of wit,' अर्थात संक्षिप्त वर्णन वाक् चातुर्य की आत्मा है। सुंदर भाषा यदि तलवार है, तो संक्षिप्त सारगर्भित वर्णन उसका जौहर है, उसकी काट है। तलवार की काट का भेद क्या है? तीस–तीस, चालीस–चालीस मन लोहे को गला–गलाकर, साफ़ कर–कर दस–बीस सेर वजन की तलवार बनती है और उसमें काट पैदा होती है। हुज़ूर महाराज बात दो–हरफ़ी करते थे, परंतु उसकी पृष्ठभूमि बहुत विस्तृत होती थी। हरेक धर्म के प्रकाशित तथा अप्रकाशित ग्रंथों और महापुरुषों की वाणियों का स्वाध्याय किया था। उनकी दो–हरफ़ी बात लोहे के अंबार से छंटकर और निथरकर निकली तलवार की काट ही तो थी, जो सुनने वालों के भ्रम को काटकर रख देती थी। महाराज कृपाल सिंह जी ने एक बार हुज़ूर से कहा था, "आप थोड़े लफ़्ज़ों में जो बात कह जाते हैं, और जिस सादगी और सफ़ाई से कह जाते हैं, हम ज़्यादा लफ़्ज़ों में भी वह मज़मून अदा नहीं कर सकते।"

संक्षिप्त वर्णन कभी दुरूह भी हो जाता है, जिसे उर्दू वाले 'सहल उलमस्तना' कहते हैं कि शब्द तो ऐसे सरल हों कि बच्चा भी समझ जाए और अर्थ इतना गूढ़ कि बड़े–बड़े धुरंधर सिर पटकते रह जाएँ और बात पल्ले न पड़े। हुज़ूर के कथन में यह बात नहीं थी। संकेत देते थे, तो हमेशा सामने की मिसालें देते थे, उन चीज़ों की जो सबकी जानी–बूझी और देखी–भाली हैं। उनकी बात सबके पल्ले पड़ जाती थी और पढ़े–लिखे लोग विचार करते, तो छोटी–सी बात की तह में गूढ़तम अर्थ के कोष खुलते चले जाते। हुज़ूर महाराज के अमृत वचनों के अनंत भंडार में से कुछ यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं।

हुज़ूर फ़रमाया करते थे, "यह (जीव) ज़हर भी खाए चला जाता है और हाय–हाय भी करता जाता है। उस पर और ज़हर खाए चला जाता है।" सीधे–सादे चंद शब्द हैं, परंतु जीवन के हरेक क्षेत्र की, हरेक स्तर की तस्वीर खेंचकर रख दी है। लोग ज़्यादा खाते हैं, बीमार हो जाते हैं, दुखी होते हैं, पर क्या वह ज़्यादा खाने से बाज़ आ जाते हैं? इंद्रियों के

भोगों–रसों में लम्पट मानव इस हालत को पहुँचता है कि भोगने के लायक़ ही नहीं रहता, पर क्या वह भोगों–रसों को छोड़ देता है? लोग आकर अपनी व्यथा सुनाते, अपने दुखड़े रोते तो हुज़ूर फ़रमाते, *"सरब रोग का अउखदु नामु,"*– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म०5, पृ.274) 'नाम' तुमको मिल चुका है। उसकी कमाई करो। वह सब रोगों की दवा है। तुमने दवा ली, आले में रख दी। खाई नहीं। बीमारी कैसे जाए?" कितना सरल, सारगर्भित, हृदयस्पर्शी कथन है!

हुज़ूर फ़रमाया करते थे कि यह परमार्थ का सौदा नक़द सौदा है। करो और देखो। 'नाम' मिल गया, उसकी कमाई करो। यह जीते–जी मरने की विद्या है। इस धोखे में न रहना कि मरकर मिलेगा। इस संदर्भ में कहते थे, "जो जीते–जी पंडित है, वह मरकर भी पंडित है। जो जीते–जी अनपढ़ है, मरकर उसने पंडित थोड़े बन जाना है?" कितनी बड़ी बात कह दी चंद सादा शब्दों में! विभिन्न समाजों के यह बर्हिमुखी साधन, यह कर्मकांड इसी विश्वास पर खड़े हैं न, कि मरकर मिलेगा। हुज़ूर की संगति में अनपढ़ ग्रामीण किसान भी आते थे, पढ़े–लिखे शहरी और बुद्धि के पहलवान भी। किसी भी वर्ग का व्यक्ति हो, जिसने पूर्ण अनुभवी पुरुष के चरणों में बैठकर सत् वस्तु को नहीं पाया, वे सब इसी चक्कर में फँसे हुए हैं कि धर्मग्रंथों को पढ़ लिया या किसी पंडित से पाठ करवा लिया, तीर्थों–तटों को हाथ लगा लिया और पुण्य के भागी हो गए, जो मरकर मिलेगा। यह शुभ कर्म हैं, शुभ फल मिलेगा। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है, "पुण्य कर्म और पाप कर्म जीव को बाँधने के लिए एक समान हैं, जैसे लोहे की बेड़ी हो या सोने की बेड़ी।" हुज़ूर ने चंद शब्दों में जो चेतावनी दी है, उसका कोई जवाब किसी के पास नहीं।

कई बार बुद्धि के पहलवान वाद–विवाद के लिए हुज़ूर के दरबार में आ निकलते और अजीब–से सवाल करते। हुज़ूर दो शब्दों में ऐसा जवाब उन्हें देते कि वाद–विवाद की गुंजाइश ही न रह जाती। एक बार एक तर्कशास्त्री ने पूछा, "यह दुनिया क्यों बनी?" हुज़ूर ने फ़रमाया, "चलो, उसी से जाकर पूछें जिसने यह दुनिया बनाई है।" फिर फ़रमाया, "वहाँ जाकर न मन रहेगा न बुद्धि, सवाल कौन पूछेगा? जो घर में आग लग रही है, पहले उससे निकलो (अर्थात पिंड से, स्थूल देह से ऊपर

आओ)। निकलकर पूछना किसने आग लगाई है, क्यों लगाई है?" एक बार एक आर्य–समाजी भाई आए। कहने लगे, हम तो ब्रह्म के आगे कुछ नहीं मानते। ब्रह्म आख़िरी मंज़िल है। इससे आगे कुछ नहीं। हुज़ूर ने फ़रमाया, "हमारे धर्मग्रंथों में परब्रह्म और कूटस्थ ब्रह्म का भी ज़िक्र आया है। आप नहीं मानते न सही। ब्रह्म तक तो मानते हैं ना! ब्रह्म तक तो हमारा तुम्हारा रास्ता एक है। वहाँ तक तो साथ चलें। आगे कुछ हुआ तो चल पड़ना, वरना ब्रह्म तक तो पहुँच ही जायेंगे। संत कहते हैं, इससे आगे भी है।"

हुज़ूर महाराज के वर्णन की एक विशेषता यह थी कि सत्य का स्पष्टिकरण भी हो जाए, इस प्रकार कि बात सबके पल्ले पड़ जाए और किसी का दिल भी न दुखे। ब्रह्म और परब्रह्म की बहस में कैसे सुंदर ढंग से जवाब दिया है कि किसी की मान्यता को भी ठेस नहीं लगाई और सत्य का स्पष्टिकरण भी कर दिया कि परमार्थ समझने–समझाने का विषय नहीं, देखने–दिखाने का, साधन–अभ्यास का विषय है।

ऐसा ही एक उदाहरण ब्यास के एक पादरी का है। ब्यास स्टेशन के बाहर जो कोठी है, उसमें पहले ईसाई पादरी रहते थे। हुज़ूर वहाँ से गुज़र रहे थे, तो एक पादरी ने कहा, "महाराज, यह बताइए कि आपके बाबा जयमल सिंह जी बड़े हैं कि ईशु मसीह बड़े हैं?" सवाल पूछने वाले की नीयत प्रकट थी। वह कोई ऐसी बात हुज़ूर के मुखारविंद से कहलवाना चाहता था, जिसको लेकर विवाद खड़ा कर सके। हूज़ूर ने फ़रमाया, बाबा जयमल सिंह जी को तो मैंने देखा है। उनके बारे में तो मैं कह सकता हूँ। अगर आप क्राइस्ट को लाकर खड़ा कर दो, तो मैं कुछ फ़ैसला कर सकता हूँ।" पहली बात तो यह कही कि मैंने गुरु को, जो इष्ट है मेरा, देखा है। तुमने देखा नहीं। पढ़े–पढ़ाए पर सिर मारते हो। *"मैं कहता हौं, आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।"* – कबीर साखी संग्रह भाग–1 (शब्द 78, पृ.45) दूसरी बात संतों की शिक्षा से संबंध रखती है कि सिक्ख या शिष्य सही मा'नों मे तब बनता है, जब गुरु अंतर में प्रकट हो और बातें करे। गुरु–सत्ता कभी मरती नही। समर्थ गुरु चोला छोड़ जाए, तो भी वह शिष्य की पुकार सुनकर दिव्य–रूप में या देह स्वरूप में भी प्रकट हो सकता है। हुज़ूर महाराज के दीक्षित या नए भाई, जिन्होंने महाराज कृपाल सिंह जी से 'नाम' लिया है, उनमें सैकड़ों, व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर इस बात की गवाही दे सकते

हैं। पादरी साहब के निवेदन पर हुज़ूर तो बाबा जी को देह स्वरूप में भी उनके सामने खड़ा कर देते, पर पादरी साहिब क्राइस्ट को कहाँ से लाते?

आत्म–ज्ञान के गूढ़ विषयों पर सरल शब्दों और उदाहरणों से बड़े बारीक़ नुक़ते बयान कर जाते थे। फ़रमाते थे, "दो भ्रू–मध्य, आँखों के पीछे, दसवीं गली में आओ, जहाँ आत्मा का निज स्थान है। वहाँ गुरु दोनों हाथों में दयामेहर लिए खड़ा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।" इस संदर्भ में उदाहरण वह देते थे कि मोटी से मोटी अक्ल वाला भी समझ जाए। फ़रमाते थे, "गुरु एक परदेदार स्त्री की तरह है। उसने बाहर नहीं आना। बच्चा बाहर खड़ा शोर मचाता रहे। वह कहती है, "खस्मां नूं खाए" (यह शब्द प्रयोग करते थे) बच्चा आँखों के पीछे दरवाज़े पर आता है, तो वह हाथ बढ़ाकर उसे अंदर खेंच लेती है।"

हुज़ूर का एक कथन है, "घर में कुर्सी टूट जाए, तो कहते हैं, बुलाओ तरखान (बढ़ई) को। मेज़ टूट जाए, बुलाओ तरखान को। क्यों न तरखान ही को घर में रख लो?" मतलब यह कि गुरु को अंतर में प्रकट कर लो। जब चाहे अंतर घट में प्रवेश कर उससे बात कर लो। यह विद्या वह दुनिया को सिखाने आए थे और इसका व्यक्तिगत अनुभव उन्होंने लोगों को दिया। एक बार सत्संग में मौज में आकर फ़रमाया, "अगर कोई मन दे, तो अभी निजघर जा सकता है। है कोई ऐसा जो मन दे?" एक व्यक्ति उठकर बोला, "महाराज! मैं देता हूँ।" कहने लगे, "पहले मन को अपना तो बना ले। जो चीज़ तेरी नहीं, वह दे कैसे सकता है?" गुरु पर विश्वास के संदर्भ में एक मिसाल देते थे कि तांगे में बैठते समय तुम्हें पूर्ण विश्वास होता है कि तांगे वाला तुम्हें ज़रूर ठिकाने पर पहुँचा देगा। एक तांगे वाला जिसने किराया भी अभी तुमसे नहीं लिया, उस पर तुमको इतना भरोसा है, गुरु पर इतना भी एतबार नहीं कि वह तुम्हें जन्म–मरण की क़ैद से छुड़ाकर निजधाम ले जाएगा?

आत्मा–परमात्मा के संबंध पर एक सारगर्भित उक्ति हुज़ूर महाराज की है, जिसमें कहते हैं, "सुरत या आत्मा शहज़ादी थी। बादशाह से इसकी शादी होनी थी, मन चूहड़े से इसने यारी लगा ली।" अब देखिए, आत्मा हमारी मन के अधीन है, मन आगे इंद्रियों के घाट पर खिंचा फिरता है। कभी आँख की इंद्री सुंदर दृश्यों में खेंचकर ले जाती है, कभी ज़बान की इंद्री

रसों–कसों और स्वादों में, और इंद्रियों के घाट पर गलाज़त ही गलाज़त है, मलीनता ही मलीनता है। आँख से गीध जाती है, कान में मैल है, नासिका में सींड है, मुँह से राल टपकती है, नीचे मल और मूत्र। मन, जो हर वक़्त इंद्रियों के घाट पर, जहाँ गंदगी ही गंदगी है, लम्पट हो रहा है, वह चूहड़ा नहीं तो और क्या है?" महाभारत (अनुशासन पर्व 158) तथा कठोपनिषद् (I.3-3,4) में इसी बात को यों वर्णन किया गया है :

आत्मानं रथतिं वद्धि शरीरँ रथमेव तु
बुद्धं सारथं वद्धि मनः प्रग्रहमेव च।
इन्द्रियाण हयानाहुर्वषियाँ स्तेषु गोचरान्
आत्मेन्दियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीष्णिः।

अर्थात शरीर रूपी रथ पर आत्मा सवार है, बुद्धि रथवान है, मन लगाम है और इन्द्रिय रूपी घोड़े इसे विषय रूपी खेतों में लिए फिरते हैं।

मिसाल सीधी और साफ़ है, पर इसे पढ़े–लिखे लोग ही समझ सकते हैं। अनपढ़ किसानों के पल्ले बात नहीं पड़ती। फिर इतना ज़ोर नहीं इसमें। हुज़ूर के दृष्टांत में बात, बड़ी सूक्ष्म सार की बात है वह, हरेक के पल्ले पड़ जाती है, और इंद्रियों के भोगों–रसों से घिन आने लगती है।

⌘⌘⌘

5.
अब जिगर थाम के बैठो

अब वह हृदयविदारक वृत्तांत लिखना है, जिसकी कल्पना से भी दिल दहल उठता है। महाराज कृपाल सिंह जी फ़रमाते हैं, "सत्गुरु दयाल के मिलने के बाद भी वह ख़ुशी मुझे नसीब नहीं हुई, जो इस शुभ मिलन का परिणाम है। 'नाम' लेने के पाँच वर्ष बाद, 1929 ई. में अपने अंतर में यह हृदयविदारक दृश्य देखा कि हुज़ूर इस नश्वर जगत को छोड़ निजधाम को प्रस्थान कर रहे हैं। हुज़ूर के चोला छोड़ने के 18 वर्ष पहले उनके जाने का दृश्य मुझे देखना पड़ा। इसके बाद दर्शनों में ठंडक और राहत मिलती, तो साथ ही यह धड़का भी लगा रहता कि यह चले जायेंगे। इसलिए आख़िर दम तक हुज़ूर के चरणों में यही विनती करते रहे कि हुज़ूर बैठे रहें, लेकिन यह प्रार्थना स्वीकार न हुई।" हाँ, कुछ समय के लिए हुज़ूर की दया से वह घड़ी टल गई, जिसका वर्णन आगे आएगा।

हुज़ूर महाराज ने सारी उम्र आराम नहीं किया। चौबीस घंटों में बीस–बीस घंटे जनसेवा में लगे रहे। 90 वर्ष की अवस्था में इस कड़ी मेहनत और आराम से लापरवाही का परिणाम यह हुआ कि शरीर उतना बोझ न सहार सका और साध–संगत के आग्रह पर हुज़ूर शरीर को आराम देने और इलाज करवाने पर मजबूर हो गए। यह सितंबर 1947 ई. की बात है। इलाज के लिए अमृतसर जाने से पहले हुज़ूर ने तीन कमेटियाँ नियुक्त कीं। एक कमेटी डेरा बाबा जयमल सिंह के प्रबंध के बारे में थी, जिसके अध्यक्ष वह स्वयं थे और उपाध्यक्ष सरदार बहादुर जगतसिंह थे। दूसरी कमेटी डेरे की भूमि के सुधार और कृषि–कार्यों के मुत'ल्लिक थी। तीसरी कमेटी सत्संग के बारे में थी, जिसका चार्ज महाराज कृपाल सिंह जी को सौंपा गया और उनकी मदद के लिए वयोवृद्ध सरदार गुलाबसिंह जी को चुना गया। उन्हीं दिनों हुज़ूर महाराज ने भरे सत्संग में ऐलान किया, "मैं

बूढ़ा हो गया हूँ और सारा काम स्वयं नहीं देख सकता, इसलिए विभिन्न कार्यों के लिए कमेटियाँ मुकर्रर कर दी गई हैं। किसी सत्संगी को अंतर्मुख आत्मिक उन्नति के बारे में कुछ पूछना हो, तो वह सरदार कृपाल सिंह जी से पूछ ले, जो मेरे आदेशानुसार काम करेगा।"

सत्संग की जायदाद संगत की है

उसी सत्संग में हुज़ूर ने यह वचन कहे, "डेरा ब्यास की और सत्संग की जायदाद संगत की है। किसी शख़्स का मुझसे कुछ लेना निकलता हो, तो अभी आकर ले ले। मैंने संगत की सिर्फ़ सब्ज़ी और पेट्रोल संगत के काम के लिए इस्तेमाल किया है। उसके लिए संगत मुझे मुआफ़ी दे दे।" यह ऐलान सुनते ही संगत में कुहराम मच गया, क्योंकि यह अपनी क़िस्म का पहला एलान नहीं था। इससे कुछ समय पहले भी भरे सत्संग में हुज़ूर ने ऐसा एलान किया था। हुज़ूर ने यह भी फ़रमाया था कि, "मैंने दो वसीयतें लिख दी हैं, जिनमें इस बात को साफ़ कर दिया है कि यह संगत की जायदाद है।" इसके बाद हुज़ूर महाराज के दोनों बेटे, सरदार बिचिन्तसिंह और सरदार हरबंससिंह, संगत के सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए और भरी संगत में एलान किया, "हुज़ूर ने हमें बड़ा कुछ दिया है, हम सत्संग के पैसे की तरफ़ नहीं देखेंगे।[30] नेक–नीयती से सत्संगियों की तरह सेवा करेंगे।"

सत्संग में वापस आकर हुज़ूर ने महाराज कृपाल सिंह जी से फ़रमाया, "सत्संग के कामों के लिए तुम किसी कमेटी के मातहत नहीं हो– directly (सीधे) मेरे मातहत काम करोगे।" डेरा ब्यास से अमृतसर रवाना होने से पहले हुज़ूर महाराज ने घर के मामले भी तय कर दिए थे। घरवालों के लिए जो वसीयत लिखी गई, उसमें महाराज कृपाल सिंह जी के भी हस्ताक्षर कराए गए। वसीयत के काग़ज़ात लिखने के बाद सब लोग जाने लगे, तो हुज़ूर ने कहा, "कृपाल सिंह! तुम ठहर जाओ।" उस वक़्त हुज़ूर ने फ़रमाया, "बीबी रक्खी डेरे में रहे, तो उसको पचास रुपए माहवार देते रहना। इसी तरह बीबी लाजवंती को भी। मुंशीराम से मैंने कह दिया है। कल बैलेंस–शीट तुम्हें दिखा देगा।"

इतनी बात सुनते ही महाराज कृपाल सिंह जी के तन–बदन पर जैसे बिजली गिर पड़ी। आँखों में आँसू लिए झोली फैलाकर हुज़ूर महाराज से

विनती की, "हुज़ूर मैंने सारी ज़िंदगी आपसे कुछ नहीं माँगा। इसका मतलब यह नहीं कि मुझे मिला नहीं। बिन माँगे ही सब कुछ मुझे मिलता रहा है। आज पहली बार झोली फैलाकर माँगता हूँ कि हुज़ूर बैठे रहें। हमें जुदाई का दाग़ न दें।" फ़र्माया, "अच्छा भई, देखेंगे।" शाम तीन–चार बजे के क़रीब महाराज कृपाल सिंह जी फिर सेवा में उपस्थित हुए, तो हुज़ूर ने फ़रमाया, "थोड़ी देर के लिए ऐसा हो जाएगा, कृपाल सिंह।" यह सितंबर 1947 ई. की बात है। इसके बाद हजूर 2 अप्रैल, 1948 ई. तक अर्थात सात महीने तक रहे।

मुसलमान भाइयों की सुरक्षा

अमृतसर जाने से पहले हुज़ूर ने महाराज कृपाल सिंह जी को आदेश दिया कि आप डेरे में रहें और सत्संग का काम करें। उन्होंने फ़रमाया, "कृपाल सिंह! नरमी के वक़्त नरमी और सख़्ती के वक़्त सख़्ती, जैसा समय हो देख लेना।" हुज़ूर डेरे से अमृतसर रवाना हुए, तो रास्ते में मुसलमान भाइयों का क़ाफ़िला गुज़र रहा था, पाकिस्तानी मिलिटरी के पहरे में मुसलमान रिफ़्यूजी पाकिस्तान जा रहे थे। आगे भी क़ाफ़िला, पीछे भी क़ाफ़िला। हुज़ूर ने ऐन बीच में कार खड़ी करवा दी। सूबेदार शिवदेव सिंह, जो अंगरक्षक बनकर साथ था, घबराया। कहने लगा, "हुज़ूर यह क्या कर दिया?" हुज़ूर ने पाकिस्तानी सेना के कमांडर को बुलाकर कहा, "मेरे पास डेरे में कुछ मुसलमान भाई हैं। उनको आराम से पाकिस्तान पहुँचा देना, कोई तकलीफ़ न हो।" डेरे में डेढ़–सौ के क़रीब मुसलमान रिफ़्यूजी हुज़ूर की शरण में पड़े थे। महाराज कृपाल सिंह जी को हुज़ूर ने आदेश दिया था कि उनको हिफ़ाज़त के साथ क़ाफ़िले में मिला देना।

उन्होंने लॉरियों पर बिठाकर भेजा, तो आगे रास्ते में अकाली भाइयों ने रोक लिया। बड़ी तेज़ी से लॉरियाँ बैक करके वापस डेरे लाए। महाराज कृपाल सिंह जी सत्संग करने जा रहे थे। उन्हें बताया गया कि अकाली वहाँ मारने के लिए तैयार खड़े हैं। अभी और आ रहे हैं, हमला करने को। महाराज कृपाल सिंह जी ने सत्संग किसी और के सुपुर्द किया और अकेले ही वहाँ चले गए, जहाँ अकाली तैयार खड़े थे। उनसे कहने लगे, "भाइयों! ख़ालसा की शान यही है कि शरण आए की रक्षा करे।"

जो सरणि आवै तिसु कंठि लावै इहु बिरदु सुवामी संदा।।

– आदि ग्रंथ (बिहागड़ा म॰5, पृ॰544)

यह मुसलमान भाई शरण में आए हुए हैं। शरण आए को मारना महापाप है।" उनमें एक दो बूढ़े आदमी थे। कहने लगे, "बड़ी कृपा की, आपने। हमारा धर्म बचा लिया। अब इनको ले जाओ, हम कुछ नहीं कहेंगे। आप साथ होकर बेशक़ पहुँचा दीजिए।" यह गए, लॉरियाँ आगे लाकर खड़ी कर दीं। अकाली भाइयों से कहा, "यह भाई कितनी मुद्दत भाइयों की तरह हमारे बीच रहे। अब हालात कुछ बिगड़ गए हैं, जिनसे इनको ख़तरा है। इसलिए यह जा रहे हैं। क्या अच्छा हो कि तुम गले लगकर जुदा हो।" वह मुसलमान भाई लॉरियों से उतर आए और वह जो कुछ देर पहले उनकी गर्दनें काटने को तैयार थे, उनसे गले लगकर रोने लगे। मारने और मरने वाले दोनों गले मिलकर रो रहे थे।

सरदार कृपाल सिंह जी को बुलावा

हुज़ूर महाराज अमृतसर पहुँच गए। वहाँ 4 अक्तूबर, 1947 ई. को डॉक्टरों की परामर्श पर हुज़ूर को ख़ून चढ़ाया गया, जो मुआफ़िक न होने के कारण तकलीफ़ और बेचैनी बहुत बढ़ गई। मलिक राधाकृष्ण भी वहाँ थे। उन्होंने नली, जिसके द्वारा ख़ून चढ़ाया जा रहा था, तोड़कर फेंक दी। दो–तीन दिन स्थिति बहुत चिंताजनक रही। डॉक्टरों ने एक दवा बताई, जो अमृतसर में न मिल सकी। सरदार कुंडा सिंह, जो हुज़ूर महाराज के रिश्तेदार थे, उनकी सुपुत्री डॉक्टर हरबंसकौर वहाँ थी। उसको दवा लाने के लिए कार में जालंधर भेजा गया। साथ में सुरक्षा के लिए सूबेदार शिवसिंह को भेजा गया। उस वक़्त हुज़ूर महाराज ने बीबी हरदेवी को बुलाकर आदेश दिया कि वह उसी कार में चली जाए और रास्ते में ब्यास स्टेशन पर उतरकर डेरे पहुँच जाए और सरदार कुंडा सिंह की पत्नी को, जो डेरे में हैं, वापसी में, जब डॉक्टर हरबंसकौर दवाई लेकर डेरा फिरकर आएगी, अमृतसर ले आए। हुज़ूर ने बीबी हरदेवी को यह भी हिदायत की कि "सरदार कृपाल सिंह को कहो कि वह भी उसी कार में अमृतसर आ जाए। उससे मुझे बड़ा ज़रूरी काम है।" अतः हुज़ूर की आज्ञा का पालन करते हुए सरदार कृपाल सिंह जी वापसी में उसी कार में बैठकर 11 अक्तूबर की रात को अमृतसर पहुँच गए।

'जीवों को नाम देने का काम तुम्हें सौंपता हूँ'

अगले दिन 12 अक्तूबर को सुबह बीबी रली, जो हुज़ूर की सेवा में थी, नियमानुसार ऊपर गई, तो हुज़ूर ने पूछा, "सरदार कृपाल सिंह अमृतसर आ गए हैं?" उसके हाँ कहने पर हुज़ूर ने तत्काल इन्हें ऊपर बुला लिया और कहा, "तुमसे ज़रूरी काम था। और सब काम तो मैंने सौंप दिए हैं, मगर अभी तक अपना रूहानियत और 'नाम' देने का काम किसी को नहीं दिया। वह मैं तुमको सौंपता हूँ, ताकि रूहानियत का काम फले और फूले।" यह वचन सुनकर महाराज कृपाल सिंह जी की आँखें भर आईं। दर्द भरे हृदय से विनती की, "हुज़ूर, जो सुख आपके चरणों में बैठकर है, वह खंडा. ें–ब्रह्मंडों में नहीं।" हुज़ूर ने सांत्वना देते हुए कहा, "काम करना है। बाबाजी ने मुझे हुक्म दिया था तो मुझे भी काम करना पड़ा था।" इस अवसर पर बीबी हरदेवी और बीबी रली दोनों खड़ी थीं। नीचे आए, तो बीबी हरदेवी ने बीबी रली से कहा, "हुज़ूर जैसी बातें कर रहे हैं, उससे तो यही लगता है कि जाने के लिए तैयार हैं। मैं जा रही हूँ। मलिक राधाकृष्ण के पास चलो कि हुज़ूर से प्रार्थना करें कि कृपा करके हमारे सिर पर बैठे रहें। ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं?" बीबी रली ने कहा, "यह बात बाहर न निकालो।"

ऑपरेशन का गुप्त निर्णय

12 अक्तूबर की बातचीत के बारे में उसी समय हुज़ूर के बड़े बेटे, सरदार बिचिंतसिंह को सिरसा तार दे दी गई। तार मिलते ही वह अमृतसर पहुँच गए। पहले वह कभी–कभी दो–चार दिन डेरे हुज़ूर के पास आकर रहते थे। अमृतसर आने के बाद अंत समय तक हुज़ूर के पास ही रहे। महाराज कृपाल सिंह जी अमृतसर में हुज़ूर के निवासकाल में सारा समय वहीं रहे और बड़े प्यार और लगन से सेवा करते रहे। दिन में सिर्फ़ डेढ़ घंटा रोटी खाने शहर जाते थे, शेष समय सेवा में रहते थे। एक दिन रोटी खाकर वापस आ रहे थे, तो रास्ते में सरदार हज़ारासिंह कम्पाउंडर मिले। उन्होंने कहा, "आपको पता है, हुज़ूर का ऑपरेशन आज हो रहा है? शाम के चार बजे डॉक्टर नैट ऑपरेशन के लिए लेने आयेंगे। वहाँ कमरा भी तैयार हो चुका है।" यह डेढ़–दो बजे दोपहर की बात है।

महाराज कृपाल सिंह जी ने यह ख़बर सुनी, तो पैरों तले की ज़मीन निकल गई। ऑपरेशन का फ़ैसला इतना ख़ुफ़िया रखा गया था कि इन्हें भनक तक भी न पड़ी थी। भागम–भाग सत्संगघर पहुँचे, जहाँ ऊपरली मंज़िल पर हुज़ूर निवास करते थे। ऊपर दरवाज़े पर सरदार बिचिंतसिंह बैठे थे। उनसे कहा, "मैंने सुना है कि हुज़ूर का ऑपरेशन शाम के चार बजे हो रहा है। क्या यह बात सही है?" कहने लगे, "हाँ, हुज़ूर ने आप हुक्म दिया है।" इस पर महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "मैं दिल्ली बड़े–बड़े डॉक्टरों से पता करके आया हूँ। ऑपरेशन ख़तरनाक है, वह नहीं होना चाहिए।" सरदार बिचिंतसिंह कहने लगे, "हुज़ूर महाराज ने आप हुक्म दिया है।" महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "आपका बिंदी संबंध है। आप जाकर हुज़ूर की सेवा में निवेदन करें कि ऑपरेशन ख़तरनाक है, न कराएँ।" बिचिंतसिंह जी ने फिर वही बात दुहराई कि हुज़ूर ने आप हुक्म दिया है, हम उसका उल्लंघन नहीं कर सकते। महाराज कृपाल सिंह जी कहने लगे, "आपका बिंदी रिश्ता है। अगर आप नहीं जाते, तो मेरा नादी संबंध है, मैं जाता हूँ।" यह कहकर आप हुज़ूर महाराज के पास पहुँचे और विनती की, "हुज़ूर ऑपरेशन का हुक्म आपने दिया है?" फ़रमाया, "इन्होंने पहले से सारा इंतज़ाम कर रखा है।" महाराज कृपाल सिंह जी ने निवेदन किया कि ऑपरेशन ख़तरनाक है, डॉक्टरों की राय इसके खिलाफ़ है। मैंने दिल्ली में बड़े–बड़े डॉक्टरों से मशविरा किया है। आपको तो कोई फ़र्क़ नहीं, यहाँ रहें या वहाँ रहें। मगर हमारे लिए असह्य है। हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया, "तुम बेफ़िक्र होकर जाओ, मैं देख लूँगा।" यह वापस आ गए। शाम को डॉक्टर नैट हुज़ूर को ऑपरेशन के लिए लेने वहाँ आया, तो हुज़ूर ने फ़रमाया, "डॉक्टर साहब! मेरी तबीयत कुछ अच्छी मालूम होती है।" डॉक्टर ने शुक्र किया। उसे मालूम था ऑपरेशन कितना ख़तरनाक था। कहने लगा, "बड़ी अच्छी बात है, ऑपरेशन की कोई ज़रूरत नहीं।"

'तुम्हारा आधा काम मैंने कर दिया'

बीमारी के दौरान अमृतसर से वापसी पर हुज़ूर ने पूछा, "मैंने कितने जीवों को नाम दिया हैं?" दीक्षितों के नाम बाक़ायदा रजिस्टर में दर्ज़ किए जाते हैं। हिसाब लगाकर उन्हें बताया गया कि लगभग डेढ़ लाख जीवों को

हुज़ूर ने नाम दिया है। उसी शाम महाराज कृपाल सिंह जी सेवा में उपस्थित हुए, तो फ़रमाया, "कृपाल सिंह! मैंने तुम्हारा आधा काम कर दिया है, बाक़ी आधा काम तुम्हें पूरा करना है।" हाथ बाँधकर निवेदन किया, "हुज़ूर, जो हुक्म। लेकिन एक अर्ज़ है। बाक़ी आधा काम भी आप ही पूरा करें। जो नाच नचाएँ नाचा जाएगा, मगर हुज़ूर आँखों के सामने बैठे रहें।"

रहस्य की बातें

उन्हीं दिनों एक बार रात को हुज़ूर ने अंतरीय अनुभवों की चर्चा करते हुए कहा, "सूरज चढ़ा हुआ है। क्या जालंधर के लोग भी इसको देख सकते हैं?" लोगों ने समझा बीमारी ने दिमाग़ पर असर किया है। महाराज कृपाल सिंह जी शाम को चरणों में पहुँचे, तो वही सवाल हुज़ूर ने फिर दोहराया। निवेदन किया, "हाँ हुज़ूर! सूरज चढ़ा हुआ है। जालंधर के लोग ही क्या, इंग्लैंड, अमरीका का भी आदमी हो– जो भी अंदर जाएगा, इस सूरज[31] को देख सकता है।" फ़रमाया, "तूने ठीक जवाब दिया है, कृपाल सिंह!" इस प्रकार कई सार–भेद की बातें कहते रहे। डॉक्टर श्मिट, जो हुज़ूर के दीक्षित थे, उनको भी यह भ्रम था कि हुज़ूर महाराज का दिमाग़ शायद ठीक काम नहीं करता। एक बार महाराज कृपाल सिंह जी से, जो दिन में कई बार हुज़ूर की सेवा के लिए उनके साथ ऊपर जाते थे, वह कहने लगे, "आप हुज़ूर से पूछें कि वे होश में रहते हैं या बेहोश हो जाते हैं?" महाराज कृपाल सिंह जी यह बात हुज़ूर से कैसे कह सकते थे? उन्होंने निवेदन किया, "हुज़ूर! डॉक्टर श्मिट बैठा है। एक बात पूछना चाहता है। वह यह कि आप ख़ामोश रहते हैं, आपका ख़्याल ऊपर रहता है या कभी नींद आ जाती है?" मगर हुज़ूर जानीजान (अंतर्यामी) थे। फ़रमाया, "डॉक्टर श्मिट से कह दो कि मैं होश में हूँ, बेहोश नहीं रहता। हाँ, किसी वक़्त मुझे नींद आ जाती है। मगर मेरा ख़्याल लगा रहता है।" बीमारी के दिनों में कई गूढ़ तत्त्व की बातें हुज़ूर बताते रहे, मगर इर्द–गिर्द के लोग उन्हें समझ न सकते थे। हुज़ूर फ़रमाते थे, "मुझे अफ़सोस है कि संत–मत के नामलेवा भी नासमझी का शिकार हो रहे हैं। संतों की तालीम यह सिखाती है कि जब तक अपनी आँखों से न देखो, गुरु के कहे पर भी यक़ीन न करो।

जब तक न देखूं अपनी नैणी। तब लग न पतीजूं गुर की बैणी।

संत–मत का अटल सिद्धांत है कि शिष्य अंतर्मुख गुरु से बात करे। आम अभ्यास करने वाले स्थूल देह को छोड़कर अंतर में नहीं जाते। जो कोई गुरु के आदेशानुसार प्रेम और नियम से अभ्यास करेगा, वह अंतर में अपने गुरु से मिलेगा और इस बात की गवाही देगा। यह जीते–जी कमाई करके देखने का मार्ग है, करो और देखो। जो लोग अभ्यास नहीं करते वह कहते हैं कि अंदर जाना संदिग्ध है। यदि कोई घट में प्रवेश करे भी, तो अंतरीय अनुभव विश्वास करने योग्य नहीं। यदि वे स्वयं अंदर जाएँ, तो दूसरे लोगों का भी यक़ीन करें। संगत को कभी ऐसे लोगों पर भरोसा नहीं करना चाहिए। जो स्वयं गुरु और प्रभु से बिछुड़े हुए हैं, वह दूसरे के विश्वास को भी तोड़ देंगे। इसलिए सत्संगीजनों को चाहिए कि वे अपने अंतर की आँख खोलें। जब उनकी रूह (सुरत) पिंड अर्थात स्थूल देह से सिमटकर अंतर में जाएगी, तो उनको स्वयंमेव ज्ञान हो जाएगा। अंतर दिव्य–मंडलों पर भ्रमण करने की विद्या ग़लत नहीं, सोलह आने सही है।"

फिर एक दिन फ़रमाया, "मैं किसी स्थान से बँधा हुआ नहीं। जो भी मालिक के भेजे हुए महात्मा आते हैं, वे संसार को सच्चे रास्ते पर चलने का आदेश देते हैं। जो लोग ज्ञान प्राप्ति के हेतु उनके पास जाते हैं, उनको वह बतलाते हैं कि ऐसा करोगे, तो तुम प्रभु को मिल सकोगे। दुनियादार लोग वहाँ भी अपने सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ कमाई का धंधा बना लेते हैं। जब ऐसी दौलत ज़रूरत से ज़्यादा इकट्ठी हो जाती है, तो उन्हीं में से माया के पुजारी पैदा हो जाते हैं, जिनकी तृप्ति कभी नहीं हो सकती। जब ऐसे हालात बन जाएँ, तो संत वहाँ से किनारा कर जाते हैं और वहाँ फिर महंतियाँ और गद्दियाँ चलती रहती हैं। फिर वहाँ परमार्थाभिलाषी की आत्मा को ठंडक नहीं मिल सकती। सच्चे महात्मा किसी भी समाज या वेश से बँधे हुए नहीं होते। वे मुक्त पुरुष होते हैं। उनकी, *"ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर"* है। वे सत् का पाठ पढ़ाते हैं। जो उनकी संगति में रहकर कमाई अर्थात अभ्यास करेंगे, वह तो उत्तीर्ण हो जायेंगे, जो दूर रहेंगे उनका दुर्भाग्य!"

हुज़ूर बार–बार ज़ोर देकर यह फ़रमाते रहे, "रूहानियत (आत्म–विद्या) का काम रूहानियत का कोई माहिर ही करेगा। संगत को किसी अंधे के हवाले कैसे कर दिया जाए? मुझे तलाश करना है, तो मुझमें जो लीन है,

ऐसे पुरुष में मुझे ढूँढो। दुनिया के अभिलाषियों में मुझे नहीं पाओगे। भ्रम में न पड़ो। अभ्यास करके निजघर में प्रवेश करो और मुझसे मिलो। माया के कीड़ों में मैं नहीं बसता। किसी बेग़रज़ हस्ती के पास जाओ, जिसको मेरी ज़रूरत है, डेरों की नहीं। गुरुमुख गुरु को पाकर ख़ुश है और मनमुख माया में भूल रहे हैं।" एक बार हुज़ूर ने फ़रमाया, "कृपाल सिंह! जहाँ नाम की दौलत मिलेगी, दुनिया वहीं पहुँच जाएगी। तुमने डेरे में क्या लेना है? डेरे से चले जाना। बाबाजी आगरे से आ गए थे। वह रुपया साथ नहीं लाए थे, न ही संगत साथ लाए थे। अपने अंतर में अपने गुरु को ले आए थे। उनकी बरक़त से डेरा आबाद हो गया। संगत उसी तरह मुझे प्यारी है, जैसे कि पहले थी। संगत को चाहिए कि अभ्यास करे और अंदर जाए। आप ही हरेक को समझ आ जाएगी। हरेक के अंतर में ज्ञान का भंडार है। अनपढ़ मनुष्य भी किसी पढ़े–लिखे की मदद से पढ़ना सीखे, तो वह एम.ए. बन जाता हैं। अनपढ़ के पास सारी उम्र बैठे रहो एम.ए. नहीं बन सकोगे। अपना समय व्यर्थ न गँवाओ। आत्म–विद्या सीखनी है तो किसी आत्म–तत्त्ववेत्ता के पास बैठो। वह तुम्हारे अंतर में इस विद्या को प्रकट कर देगा। उसने बाहर से कुछ डालना नहीं। सत्संगीजनों को अभ्यास के लिए ताक़ीद करते रहो और सत्संग करते चलो। जीवों को अंतर से मदद मिल रही है और मिलती रहेगी। तुम अपने गुरु के हुक्म से काम किए जाओ। स्त्री पति की आज्ञा का पालन करती है और लोग उसे कुलटा कहते हैं, तो कहने दो। तुमने गुरु–आज्ञा में काम करना है। लोग बुरा कहें, तो कहने दो। सबको ताक़ीद कर दो कि ख़ूब अभ्यास करो और अंतर में गुरु के स्वरूप तक पहुँच जाओ।" महाराज कृपाल सिंह जी को जब भी हुज़ूर महाराज के चरणों में जाने का अवसर मिलता, हुज़ूर आत्म–विद्या के प्रचार–प्रसार के सक्रिय रूप, प्रकार और ढंग तथा मूलभूत विषयों पर बातें करते और आवश्यक आदेश देते रहे।

अंतरीय मंडलों में अंतिम निर्णय

मार्च की बात है। एक दिन सुबह पाँच बजे हुज़ूर ने महाराज कृपाल सिंह जी को बुला भेजा। अपने निज–सेवक गांधी को भेजा कि सरदार कृपाल सिंह और बीबी हरदेवी, दोनों को बुला लाओ। रास्ते में

सरदार गुलाबसिंह जी मिले। उन्होंने पूछा, "कहाँ जा रहे हो?" कहा, "हुज़ूर ने बुला भेजा है।" हुज़ूर महाराज के चरणों में पहुँचे, तो उन्होंने फ़रमाया, "आज संत–सभा में आख़िरी फ़ैसला होना है। तुम रोज़ ज़ोर देते हो, न जाओ, यहीं रह जाओ। जो ज़ोर लगाना चाहो, अब लगा लो।" चुनाँचे सरदार कृपाल सिंह जी को भजन पर बैठने का हुक्म दिया और हुज़ूर आप भी अंतर्ध्यान हो गए। अंतर में यह दृश्य देखा कि संत–सभा में यही मामला पेश था। कबीर साहिब, गुरु नानक साहिब, तुलसी साहिब, स्वामी जी महाराज, बाबा जी महाराज सभा में विराजमान थे। महाराज कृपाल सिंह जी ने प्रार्थना की कि हुज़ूर को इस समय न ले जाएँ। संगत में बड़ी खलबली है और कोई सहारा नहीं है। स्वामी जी महाराज तो इस पक्ष में हो गए थे, किंतु बाबा जी ने कहा, "इन हालात में मैं 'बाबू' सावन सिंह को वहाँ नहीं रहने दूँगा।" भजन से उठे, तो हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया कि अब तो अपनी आँखों से देख लिया कि बाबा जी महाराज मुझे यहाँ रखने को तैयार नहीं हैं?

रूहानियत का सूर्य अस्त हो गया

मार्च के महीने में हुज़ूर महाराज को शारीरिक तौर पर बहुत तकलीफ़ रही। सत्संगत ने बाबाजी महाराज के आगे रोज़ सुबह अरदास (प्रार्थना) करनी शुरू कर दी कि हुज़ूर को राज़ी कर दें, वे हमारे सिर पर रहें। हुज़ूर से भी निवेदन किया गया कि वह बाबाजी से कहें, परंतु उनका यही कहना था कि मैं बाबाजी से कुछ नहीं कहूँगा। मेरी गुरुमुखता में फ़र्क़ आता है। तुम जो चाहे, कह लो। महाराज कृपाल सिंह जी की यह ड्यूटी थी कि संगत की बात हुज़ूर की सेवा में निवेदन कर देते और हुज़ूर का आदेश संगत तक पहुँचा देते। एक बार हुज़ूर महाराज ने फ़रमाया, "संगत को कह दो कि अब भी भजन–सुमिरन कर ले।" चुनाँचे चंद दिन सुबह तीन–चार बजे बड़े दरबार में बड़े लोगों का भजन बैठना शुरू हुआ था। 29 मार्च की रात को हुज़ूर महाराज की तकलीफ़ बहुत बढ़ गई। सारी रात बेचैनी रही। 30 मार्च को सुबह पाँच बजे महाराज कृपाल सिंह जी डॉक्टर श्मिट के साथ ऊपर। गए, तो हुज़ूर बहुत तकलीफ़ में थे। ज़बान फटी हुई थी और बोल नहीं सकते थे।

बीबी रली जब अंदर घरवालों की बातचीत का हाल बीबी हरदेवी को सुनाया करती थी, तो उसने बताया था कि हुज़ूर महाराज ने सबके

सामने यह वचन कहे थे कि, "अंत समय मुझे ज़्यादा तकलीफ़ होगी। जिसने मेरे बाद काम करना है, वह मेरे पास आकर बैठेगा, तो मेरी तकलीफ़ दूर हो जाएगी।" चुनाँचे सरदार बहादुर जगतसिंह, बीबी रली और हुज़ूर के परिवार के सब लोग बारी–बारी हुज़ूर के पास आकर बैठे, पर उनकी तकलीफ़ कम न हुई। 30 और 31 मार्च को हुज़ूर शारीरिक तौर पर बड़ी तकलीफ़ में रहे। अगले दिन अर्थात 1 अप्रैल को सुबह 6-7 बजे महाराज कृपाल सिंह जी बीबी के साथ वहाँ पहुँचे, जहाँ हुज़ूर सच्चे पातशाह लेटे हुए थे। बीबी रली साथ अंदर गई, फिर वह भी बाहर चली गई। बिल्कुल एकांत हो गया। महाराज कृपाल सिंह सच्चे पातशाह के चरणों में बैठ गए। हुज़ूर के जिस्म में तड़फड़ाहट और बेचैनी थी। उन्होंने चरणों में नमस्कार किया और प्रार्थना की, "हुज़ूर सच्चे पातशाह! आपको तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। परंतु हमसे यह दृश्य नहीं देखा जाता। हम पर दया करो। अपनी तकलीफ़ आप ही दूर कर दो।" सीधी हुज़ूर से प्रार्थना की। प्रार्थना के बाद आँख खोली, तो देखा, हुज़ूर की तकलीफ़ दूर हो गई थी। वही दिव्य मुखमंडल पर जगमगाती ज्योतियाँ फिर से दिखने लगीं। हुज़ूर के अंतिम दर्शन की अकथ कहानी महाराज कृपाल सिंह जी इस प्रकार वर्णन करते हैं :

"हुज़ूर सच्चे पातशाह ने अपार दयामेहर से प्रार्थना को क़बूल फ़रमाया और जिस्मानी तौर पर बिल्कुल आराम में हो गए। तेजोमय मस्तक दिव्य आभा से प्रदीप्त हो उठा। प्रभु के रंग में रंगे दयामेहर भरे नयन खोले और तुच्छ सेवक पर दृष्टि डाली। दोनों आँखों में बब्बर शेर की आँखों का–सा तेज़ था। बेअख़्त्यार नतमस्तक होकर मैंने कहा, 'वह सब आपकी कृपा है।' हुज़ूर इस तुच्छ सेवक की आँखों में तीन–चार मिनट अपलक देखते रहे। सेवक की आँखें परमपिता की आँखों के नज़ारे में महव (लीन) होकर अपूर्व आनंद लेती रहीं। रोम–रोम में एक अपूर्व मस्ती भर गई, जो सारे पिछले जीवन में कभी न मिली थी।

तब वह दयामेहर भरे कमल नयन बंद हो गए और फिर न खुले।"

महाराज कृपाल सिंह जी ने बीबी रली को बुलाकर दिखाया कि हुज़ूर के चेहरे पर तकलीफ़ के चिन्ह तो नहीं। घरवालों ने भी सबने देखा, तकलीफ़ दूर हो चुकी थी। उस वक़्त हुज़ूर का निज–सेवक गांधी बाहर यह कहता हुआ दौड़ा, "भापा जी आ गए, हुज़ूर की तकलीफ़ कम हो गई।"

डॉक्टर शिमट का अनुमान था कि हुज़ूर रात को चले जायेंगे, पर महाराज कृपाल सिंह जी ने बीबी रली से कहा कि हुज़ूर कल सुबह अर्थात दो अप्रैल को जायेंगे, रात को नहीं जायेंगे।

रात ढ़ाई बजे बीबी हरदेवी और महाराज कृपाल सिंह जी डॉक्टर शिमट के साथ अंदर चले गए। उस वक़्त हुज़ूर के शरीर के पास बीबी लाजो, बीबी रखी, सरदार रंजीतसिंह, सरदार हरबंससिंह, सरदार पुरषोत्तमसिंह आदि कमरे में बैठे थे। बीबी हरदेवी हुज़ूर के चरण पकड़े बैठी मलती रही। हुज़ूर के बाईं ओर डॉक्टर शिमट और दूसरी तरफ़ महाराज कृपाल सिंह जी खड़े थे। उनकी भविष्यवाणी के अनुसार सुबह ठीक आठ बजे हुज़ूर ने अंतिम स्वाँस लिया और चोला छोड़ दिया।

महाराज कृपाल सिंह जी ने हुज़ूर की छाती पर सिर रख दिया और कहा, "रूहानियत (अध्यात्म) का सूर्य अस्त हो गया।"

महाराज कृपाल सिंह जी ने सरदार बहादुर से कहा कि बाहर दूर से सत्संगत आ रही है। हुज़ूर के मृतक शरीर को कम से कम दो दिन रखा जाए, जिससे सब दर्शन कर सकें।

हुज़ूर महाराज की कोठी के बरामदे में उनका मृतक शरीर लिटा दिया गया। लोग एक दरवाज़े से आते और दूसरे से निकलते जाते। उस वक़्त डेरे में आँधी चल रही थी और बूंदे भी पड़ रही थीं। सब के मुँह–सिर पर मिट्टी पड़ रही थीं। हुज़ूर के शरीर को उसी दिन सांय चार बजे नदी के तट पर दाग़ दिया गया (दहाकरण कर दिया गया)।

चौथे दिन फूल चुनने तक महाराज कृपाल सिंह जी डेरे में ही रहे। उसके बाद 6 अप्रैल को दिल्ली आ गए।

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलीऐ।।
ध्रिगु जीवणु संसारि ता कै पाछै जीवणा।।

– आदि ग्रंथ (सिरी की वार म॰4, पृ॰83)

असह्य वेदना

हुज़ूर महाराज के चोला छोड़ने का समाचार जंगल की आग की तरह सर्वत्र फैल गया। आस–पास देहात के लोग जिस हालत में बैठे थे, उसी हालत में उठ दौड़े। किसी के जूता नहीं, किसी के पगड़ी नहीं। कोई स्नान

करते गीली धोती पहने ही उठ दौड़ा। लोगों पर जैसे वज्रपात हो गया था। कई इस शोक को सहन न कर सके और प्राणों की आहुति दे दी। सरदार नानकसिंह का साला, जो कम्पाउंडर का काम करता था, हुज़ूर महाराज की तारें देकर डाकख़ाने से लौटा, तो गुरु के बिना ऐसा अंधकार दिखाई दिया कि उसी रात प्राण त्याग दिए। ब्यास के तट पर चिता जल रही थी, तो सामने दो व्यक्ति नदी पार कर साइकिलों पर आ रहे थे। दोनों नवयुवक थे और डेरे के क़रीब किसी गाँव में रहते थे। किसी ने उन्हें बताया कि हुज़ूर महाराज चोला छोड़ गए हैं और यह सामने उनकी चिता जल रही है। यह ख़बर सुनकर ऐसा धक्का लगा कि वहीं नदी में कूदकर जान दे दी। क़रीब के एक गाँव में एक घर में माँ–बेटी ने यह दुखद समाचार सुना, तो घर के कुँए में छलांग लगाकर जान दे दी। शाम को घर का मालिक आया, तो उसने भी कुँए में छलांग लगाकर जान दे दी कि अब जीकर क्या करूँगा।

सबसे दुखद घटना प्रभुदयाल जज पत्नी की थी। वह भोग पर डेरे गई, तो ऐसा धक्का लगा कि उसके आँसू थमने में न आते थे। वापसी पर नदी में कूदकर प्राण त्याग दिए।

⌘⌘⌘

6.
ज़िंदगी अब हो गई बारे-गरां तेरे बग़ैर

अध्यात्म का जगमगाता सूर्य, जो श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के ज्योतिर्मय स्वरूप में उदय होकर सारे संसार को जीवन और ज्योति प्रदान कर रहा था, अस्त हो चुका था। जैसे तेज़ रोशनी के बाद अचानक अंधेरा छा जाए तो अंधकार का एहसास और गहरा हो जाता है, कुछ ऐसी ही परिस्थिति उस समय थी। हरि–रस–भीने वह दयामेहर भरे कमल नयन, जिनकी एक जीवनदायक दृष्टि अंतरात्मा को धरा से उठाकर गगन से भी ऊपर ले जाती थी, वह दृष्टि अब कहाँ थी? हज़ारों–लाखों आँखें उन आँखों को देखने को तरस रही थीं, वह ज्योतिस्वरूप जिसके पावन शरीर से, उज्ज्वल श्वेत वस्त्रों से शुभ्र ज्योत्स्ना प्रसारित होकर सारे मंडल को जगमगा देती थी, चरणों में बैठे परमार्थाभिलाषियों को अपने दिव्य–प्रकाश के घेरे में लपेट लेती थी, वह जीवन और ज्योति का अनंत स्रोत अब कहाँ था? जीवन के तपते–झुलसते मरुस्थल में वह विराट कल्पवृक्ष, जिसकी घनी छाँव में बैठकर लोग ठंडक और चैन पाते थे, लोप हो गया था और लोग उसकी खोज में भटकते फिर रहे थे। भाग्य के मारे, थके–हारे निराश्रितों का उसके पास जाना और हाथ उठाकर उसका कहना, "घबरा नहीं" दो लफ़्ज़ ही तो थे, परंतु घायल हृदय पर मल्हम लग जाती थी, टूटे दिल जुड़ जाते थे। प्रेम–रस–भीनी रसना से निकले सांत्वना के वह दो बोल सुनने को कान तरस रहे थे। वह दयासागर, जिसकी बेहिसाब बख़्शिश यह कहकर पापियों को क्षमा कर देती थी, "बस, आगे नहीं करना," उस पतित पावन समर्थ पुरुष को आँखें ढूँढ रही थीं।

पाकिस्तान बनने से बहुत समय पहले उस करुणानिधान ने घोषणा की थी कि बड़ी तेज़ लाल आँधी आएगी और झक्कड़ चलेंगे, परंतु अपने आश्रितों के लिए, "असी ओहला कर लांगे" अर्थात उन्हें अपनी दयामेहर की छाया में ले लेंगे। वह सारे संसार के दुखों को हृदय में समाने वाला, प्रभु

की अपार दयामेहर का मूर्त स्वरूप, आँखों से ओझल हो गया था और लोग उसके उपकारों को याद कर–कर रोते थे। जितना–जितना किसी ने उस हस्ती को देखा था, उतना–उतना एक कमी का, महरूमी का उसे एहसास था। जैसा वह था, उस असल रंग में जिसने उसको देखा, उसकी हालत क्या होगी? महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संग–प्रवचनों में अक्सर कहा करते हैं, 'A living Master is a great blessing' (अर्थात जीवन में किसी आत्म–तत्त्ववेत्ता समर्थ महापुरुष का मिलना एक बहुत बड़ा वरदान है)। जिनको उस महापुरुष के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह सब इस बात की सत्यता की गवाही देंगे, परंतु जिस उच्चतम अनुभव–स्तर से महाराज कृपाल सिंह जी यह बात कहते हैं, उसे वही जाने या जिसको वह दृष्टि दें, दूसरा कौन जान सकता है? इस अकथनीय अवस्था की झाँकियाँ उनके सत्संग–वचनों में अक्सर मिलती हैं। फ़रमाते हैं :

"ज़िंदगी में किसी चलते–फिरते महात्मा का मिलना बड़ी भारी ख़ुशक़िस्मती है। आप कहेंगे कि महापुरुष चोला छोड़ जाएँ, तो इतनी उदासी की क्या बात है? इस बात को वही जाने, जिसको दिल की लगी है। जहाँ दिल लग जाए, लोग जानें कुर्बान कर जाते हैं। हज़ारों मिसालें आपके सामने मौजूद हैं, दुनिया के लिहाज़ से भी। हमारे हजूर (बाबा सावन सिंह जी महाराज) थे। जिनका दिल उनसे लगा, वह जानें कुर्बान कर गए।[32] वह यह समझे कि ज़िंदगी को कुर्बान करना हमेशा की ज़िंदगी को पाना है, जिसके लिए ज़िंदगी कुर्बान हो, उसमें लय हो जाना है। दुनिया में सस्सी की तरफ़ देखो। जंगलों में भटकती मर गई। दुनिया की मिसालें पेश कर रहा हूँ। शीरीं महल से गिरकर मर गई। सोहनी, यह जानते हुए कि कच्चा घड़ा है, दरिया में कूद पड़ी और मर गई, दुनिया की मुहब्बत और प्यार के लिए। अरे भई, जिसकी रूह लग जाए, उसका क्या हशर (हाल) होगा? यह अवस्था शब्दों में वर्णित नहीं की जा सकती। हाँ, जिसको इसमें कुछ हिस्सा मिला है, कुछ दर्द रखता है, वही जानता है, वह क्या अवस्था है?"

"मुझे याद है, हजूर के वक़्त, जब 'गुरुमत सिद्धांत' लिखी जा रही थी। विरह का अंग था। मैं लिखकर ले गया। पहले तो यह लिखा कि गुरु अंगद साहिब थे, गुरु नानक साहिब की ज्योति, वह भी उदासीन हो गए?

क्यों? क्या वह अपूर्ण थे? नहीं, भई। दुनिया को दिल की लगी होती है, उनको रूह की लगी होती है। याद रखो, ज़िंदगी में किसी महापुरुष की दो ख़ूबसूरतियाँ हैं, एक रबूबियत (देवत्व) की शान (झलक प्रभु की) होती है, वह रांझा जोगी[33] बनकर अर्थात परमात्मा इंसानी शक्ल धारण कर आ जाता है।

मौला आदमी बण आइआ।।

– बुल्लेशाह

और,

हरि जीउ नामु परिओ रामदासु।।

– आदि ग्रंथ (सोरठि म°5, पृ°612)

और, भाई नन्दलाल कहते हैं :

मन ख़ुदारा आशक़ारा दीदा अम्,
दर सूरते इन्सां ख़ुदारा दीदा अम्।

अर्थात मैंने परमात्मा को इंसान के रूप में चलते–फिरते, देखा है। तो एक ख़ूबसूरती उसमें यह है कि उस मानव–घट में प्रभु प्रकट होकर जीवों को अपने साथ जोड़ने के लिए आ जाता है। उसमें दो ख़ूबसूरतियाँ हुईं कि नहीं? एक तो एक्टर बना, एक वह बना जो बनकर आया। तो बाहर दो लुत्फ़ हैं– एक हमजिन्सियत (सहजातीयता) कि हमारे जैसा मानव शरीर धारण करके आता है। हमारे दुख–दर्द जानता है। हमारी तरह दुनिया से गुज़रा है। दुनिया के मामलों में भी हिदायत (आदेश) दे सकता है। यहाँ 'Son of man' अर्थात मानव की हैसियत से काम करता है, और चूँकि अंतर में प्रभु से जुड़ा हुआ है, वह 'God-in-man' है, प्रभु ही उसमें बैठा है।

"हुज़ूर महाराज के समय का वृत्तांत है। वज़ीराबाद की यह घटना है। कोई बात हुई, तो हुज़ूर कहने लगे, "अगर बाबाजी (बाबा जयमल सिंह जी) चलते–फिरते सामने आ जाएँ, तो मैं अपना सर्वस्व लुटा दूँ।" आज हम चाहें कि हुज़ूर हमारे बीच आकर, जैसे हम–आप यहाँ बैठे हैं, हमको वही आदेश दें जो अपनी ज़िंदगी में देते थे, तो क्या यह मुमकिन (संभव) है? यह अलेहदा बात रही कि वह (गुरु) शब्द–सदेह है, इंसानी शक्ल धारण कर खुली आँखों के सामने भी मदद कर जाता है।

मगर हमेशा नहीं रहता। तो ज़िंदा सत्स्वरूप महापुरुष में दो ख़ूबसूरतियाँ हैं— एक बाहरी, एक अंतरी। एक वह, जो वह स्वयं आप है अर्थात 'God in man' अर्थात परमात्मा, दूसरे जो स्वांग उसने रचाया है अर्थात 'Son of man' अर्थात इंसान। इसलिए, महापुरुष बहुत विरह–व्याकुल होते हैं, जब उनके गुरु चले जाते हैं। दुनिया के आँसू तो ईं–सू अर्थात इस तरफ़ के लिए, दुनिया के लिए होते हैं, महापुरुषों के आँसू, आँ–सू उस तरफ़ के लिए, प्रभु के लिए होते हैं।"

और यह आँसू उन कविताओं में बरबस छलक पड़े, जो हुज़ूर की याद में विरह–व्याकुल अवस्था में इन्होंने लिखीं (इन कविताओं में से कुछ इस पुस्तक के अंत में दी गई हैं)। सत्गुरु दयाल के ज्योतिजोत समाने से एक दिन पहले आपने जो कविताएँ कहीं, उनमें एक नज़्म में यह शे'र आता है :

राज़े-उल्फ़त फ़ाश हो जाए न यूं देख अब कहीं,
वरना थी मालूम किसको दास्तां तेरे बग़ैर।

लफ़्ज़ तो वही हैं, जो मजाज़ और हक़ीक़त (मायावी–प्रेम और प्रभु–प्रेम) दोनों पर पूरे उतरते हैं, परंतु कहानी उन हस्तियों की है, जिनका स्थान सात आसमानों से भी ऊपर है। वह 'राज़े–उल्फ़त' (प्रेम का रहस्य), वह 'दास्ताँ' (प्रेम–कथा) क्या है, दुनिया वाले क्या जानें? 'तेरे बग़ैर' की रदीफ़ में, अंतिम चरण में, जो वेदना है, उसे कोई भेदी ही समझ सकता है। पूरी ग़ज़ल इस प्रकार है :

ज़िंदगी अब हो गई बारे-गरां तेरे बग़ैर,
आज नाकारा है मेरी रूहो-जां तेरे बग़ैर।
आपकी नज़रों के फिरते ही ख़ुदाई फिर गई,
मेहरबां भी हो गए ना-मेहरबां तेरे बग़ैर।
देख इस मंज़िल पे लाके मुझको अब तनहा न छोड़,
उम्र सारी जाएगी यह रायगां तेरे बग़ैर।
एक मुद्दत से है बेरौनक मेरी दुनिया-ए-दिल,
पहले सी जज़्बात में शोख़ी कहां तेरे बग़ैर।
राज़े-उलफत फ़ाश हो जाये न यूं देख अब कहीं,
वरना थी मालूम किसको दास्तां तेरे बग़ैर।

गुरु चोला छोड़ जाए, तो गुरुमुख की क्या हालत होती है, इसका इशारा गुरुवाणी की इस तुक में मिलता है :

प्रभ सुआमी कंत विहूणीआ मीत सजन सभि जाम।।

– आदि ग्रंथ (माझ बारहमाहा म॰5, पृ॰133)

अर्थात प्रीतम के वियोग में मित्र और शुभचिंतक सब मुझे यमदूत दिखाई देते हैं। इसी स्थिति की झलक इनके इस शे'र में मिलती है :

देखी 'जमाल'[34] *दुनिया, कोई नहीं किसी का,*
देते हैं अब दिखाई अपने-पराये जम से।

विरह–विह्वलता की यह अवस्था थी, जो इन्हें अपनों और बेगानों से दूर ऋषिकेश के जंगलों में ले गई।

डेरे से वापसी

6 अप्रैल को हुजूर महाराज के फूल चुनने के बाद, महाराज कृपाल सिंह जी ने अश्रुपूर्ण नेत्रों और भरे दिल से गुरु की नगरी को नमस्कार किया और डेरे से वापस आ गए। सरदार बहादुर जगत सिंह जी ने अनुरोध किया कि 13 अप्रैल को आप डेरा आकर भोग की रस्म में शामिल हों। उत्तर में इन्होंने कहा, "अब हुजूर लायेंगे, तो आऊँगा।"

डेरे की गद्दी और सारा साज़–सामान, बल्कि घर का मकान भी वहीं छोड़ा और अध्यात्म की अनमोल पूँजी, जो हुजूर ने इन्हें प्रदान की थी, दोनों हाथों से लुटाने के लिए– हुजूर महाराज की अपार दयामेहर की वही परंपरा उनके बाद भी बनाए रखने के लिए, उनकी दी हुई अध्यात्म की अमर–निधि लेकर आप वहाँ से चले आए। हुजूर महाराज ने फ़रमाया था,"कृपाल सिंह! तुमने डेरे में रहकर क्या लेना है? बाबा जी आगरे से आए थे, तो अपने साथ क्या लाए थे? सिर्फ़ गुरु और 'नाम' की दौलत वह अपने साथ लाए थे। और उनकी बरक़त से डेरा आबाद हो गया। गुरु तुम्हारे साथ है। तुम जहाँ जाओगे परमार्थाभिलाषी तुम्हारे पास खिंचे चले आयेंगे। दीवा जहाँ जगता है, परवाने आप चले आते हैं।"

"दीवा जहाँ जगता है, परवाने आप चले आते हैं," हुजूर महाराज के वचन जो रंग लाए, वह सबके सामने हैं– एक डेरे की जगह कई डेरे आबाद हो गए। हुजूर महाराज की अपार दयामेहर का सिलसिला आज विश्व के

कोने–कोने में फैल चुका है। इस वक़्त विभिन्न देशों में पाँच–सौ पचास से अधिक केंद्र खुले हुए हैं, जिनका वृत्तांत आगे आएगा। यहाँ केवल यह बताना है कि किन परिस्थितियों में इन्हें डेरा छोड़कर हजूर महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा–दीक्षा का कार्य दूसरी जगह शुरू करना पड़ा।

जैसा कि पहले ज़िक्र आ चुका है कि हुज़ूर महाराज फ़रमाया करते थे, "मैं किसी जगह से बंधा हुआ नहीं। जो भी मालिक के भेजे हुए महात्मा आते हैं, वे दुनिया को सच्चे रास्ते पर चलाने का आदेश देते हैं। जो लोग उनके पास ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते हैं, उन्हें वे बतलाते हैं कि तुम इस तरह करोगे, तो मालिक को मिल सकोगे। दुनियादार लोग अपनी दुनियावी ज़रूरतों को पूरा करने की ग़रज़ से कुछ रोजगार का धंधा बना लेते हैं। जब ऐसी दौलत ज़रूरत से ज़्यादा इकट्ठी हो जाती है, तो उन्हीं में दौलत के पुजारी पैदा हो जाते हैं, जिनकी सेरी (संतुष्टि) नहीं हो सकती। जब ऐसे हालात बन जाएँ, तब महात्मा वहाँ से किनारा कर लेते हैं और वहाँ पर महंती और गद्दियाँ चलती रहती हैं। फिर वहाँ परमार्थाभिलाषियों की आत्मा को ठंडक नहीं मिल सकती।"

यह कोई नई बात नहीं। हर ज़माने में ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं। गुरु नानक साहिब तलवंडी में थे। उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी गुरु अंगद साहिब वहाँ से उठकर खडूर साहिब चले गए। गुरु नानक साहिब की संतान ने ज़िंदगी भर उनका विरोध किया, बल्कि मुख़ालिफ़त का यह सिलसिला कई पीढ़ियों तक चलता रहा। गुरु अमरदास साहिब गोयंदवाल से अमृतसर उठ आए। तो यह सिलसिला शुरू से चला आ रहा है। हुज़ूर के ज़माने में समारोह पर कितनी संगत डेरे में आती थी? उसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि एक भंडारे पर एक दिन में सात मन नमक ख़र्च हुआ। अनुमान लगाइए, कितनी संगत होगी और कितना रुपया आता होगा?

⌘⌘⌘

7.
ऋषिकेश के जंगलों में एकांतवास

दिल्ली में थोड़े दिन अपने बड़े बेटे दर्शन सिंह के पास ठहरने के बाद अप्रैल के अंत में महाराज कृपाल सिंह जी एकांतवास के लिए ऋषिकेश के जंगलों को रवाना हो गए। दर्शनसिंह के घर तीस–तीस, चालीस–चालीस मुलाक़ाती इनसे मिलने आने लगे, तो एक दिन पता दिए बिना, आप वहाँ से ऋषिकेश चल दिए। जहाँ अपने–बेगाने यमदूत–से दिखाई देते हों, वहाँ आबादी में मन कैसे लगता? आप फ़रमाते हैं, "गुरु के बाद शिष्य का जीना किस काम का? अब मुँह दिखाने को क्या रहा था? सोचा था कि अब किसी को मुँह न दिखायेंगे। सारी ज़िंदगी उसकी याद में बिता देंगे। लेकिन फिर आना ही पड़ा।" हुज़ूर महाराज के निधन की ख़बर सुनकर जिन परवानों ने अपनी जानें कुर्बान कर दीं, वे तो सस्ते छूट गए। जिसे यह जानलेवा दुख सहकर जीना था, उसकी क्या हालत होगी?

कह दो कोई कोहकन से कि मरना नहीं कमाल
मर-मर के हिज़्रे-यार में जीना कमाल है

जान तो गुरु के हवाले थी। स्वाँस–स्वाँस गुरु–अर्पण था। मर–मरकर जीना ही तो था! गुरु चोला छोड़ जाए, तो शिष्य की अवस्था क्या होती है, इस प्रसंग में आपने महापुरुषों के जीवन से कई दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं। इनमें एक दृष्टांत मौलाना रूम का है, जिससे ऋषिकेश में आपके वनवास पर प्रकाश पड़ता है। मौलाना रूमी के गुरु, शम्स तबरेज़ साहिब जब परमधाम सिधारे, तो उनके वियोग में विलाप करते हुए मौलाना रूम का ध्यान अंतर में टिक गया। क्या देखते हैं कि शम्स तबरेज़ सामने खड़े हैं। फ़रमाया, "तेरा लिखना–पढ़ना सब फ़िज़ूल। मेरी तरफ़ देख, "आँख से आँख मिली। अमर जीवन की, निजानंद की मस्ती की धारा रोम–रोम

में भर गई। उस नशे में सब भूल गए। कुछ देर टकटकी लगी रही। शम्स तबरेज़ ने कहा, "जा तेरा काम हो गया।" इस अकथनीय अवस्था को कौन समझे और वर्णन करे! सिर्फ़ एक इशारा है।

दिल्ली छोड़कर आपने ऋषिकेश के बीहड़ जंगलों की राह ली। वहाँ नीलधारा (हरिद्वार), नीलकंठ, स्वर्ग आश्रम आदि में एकांत स्थानों में निवास किया। आप वहाँ किसी से बात नहीं करते थे, सारा समय भजन में लीन रहते थे। भजन की चार-चार घंटे की चार बैठकें थीं अर्थात दिन में 16 घंटे समाधिस्थ रहते। खाने-पीने की तरफ़ से बेपरवाही थी। आपके पुराने प्रेमी लाला मंगतराम और एक और सज्जन द्वारिकादास साथ में थे। लाला मंगतराम की सिफ़ारिश पर बीबी हरदेवी को भी साथ चलने की आज्ञा मिल गई थी। लाला मंगतराम अंत तक साथ रहे। द्वारिकादास को उसकी पत्नी समझा-बुझाकर वापस ले गई। साथ वालों को महाराज जी का कड़ा आदेश था कि, "हमें खाने-पीने के लिए तंग न करना, न हमारा पीछा करना। हमें अपने हाल पर छोड़ दो।"

सबसे पहले हरिद्वार में गंगा के पार नीलधारा में केशव आश्रम में, जिसे मौनी बाबा का आश्रम भी कहते हैं, तीन सप्ताह आप ठहरे। घने जंगल में एकांत जगह थी यह। अब तो बाक़ायदा प्लेटफ़ार्म और सड़के बन गई हैं। तब यह निर्जन वन था। लोग नाव पर वहाँ जाते थे। जंगली जानवरों के अलावा वहाँ साँप बहुत थे। जब वहाँ पहुँचे, तो लकड़ियों के गड्डे जा रहे थे। आपने साथियों से कहा, "लकड़ियाँ ख़रीद लो, सवेरे काम आयेंगी।"

साथियों को आपने समझाया कि तुम शहर चले जाओ, नहीं तो सुबह मरे पड़े होंगे। यहाँ साँप बहुत हैं। इनके जाने से एक दिन पहले साँप ने एक आदमी को काट खाया था और वह उसी समय मर गया था। इनके समझाने पर एक साथी तो चला गया, दूसरा वहीं रह गया। मौनी बाबा के आश्रम के कमरों में दरवाज़े तो थे, कुंडे नहीं थे। ताला नहीं लग सकता था। रात को साँपों की चौकसी के लिए आपने और साथी ने बारी-बारी पहरा देना शुरू किया। एक दिन महाराज जी जाग रहे थे, तो साँप खिड़की से अंदर आ गया। बहुत बड़ा फनियल नाग था। अंदर आकर फन फैलाए कुंडली मारकर बैठ गया और साथी की चारपाई के पास तख़्त पर बड़े

ज़ोर से डंक मारा। सौभाग्य से पास एक डब्बा पड़ा था, उस पर डंक पड़ा। खट से आवाज़ हुई। आपने टार्च की रोशनी फेंकी, तो फनियल साँप था। रोशनी पड़ते ही बड़ी तेज़ी से वह कमरे का चक्कर काटने लगा। दरवाज़ा बंद था। महाराज कृपाल सिंह जी ने उठकर दरवाज़ा खोल दिया। साँप बाहर निकल गया।

नीलधारा में महाराज जी का प्रोग्राम यह था कि नदी किनारे किसी एकांत स्थान पर, जहाँ पंछी भी पर न मार सके, जाकर समाधि में लीन हो जाते। तन पर केवल एक धोती और कुर्ता पहने रहते— पगड़ी–वगड़ी कुछ नहीं— यह पोशाक़ थी। रोटी एक वक़्त खाते थे, वह भी साथियों के आग्रह पर, वरना इन्हें कोई परवाह नहीं थी।

गंगा मैया के दर्शन

नीलधारा में निवास के दौरान एक दिन साथी इन्हें खोजता वहाँ जा पहुँचा, जहाँ यह समाधि लगाए बैठे थे। थोड़ी देर में देखा कि नदी के बीच मंझधार एक स्त्री, सिर के बाल खोले, खड़ी स्नान कर रही है। वह साड़ी पहने हुए है और पानी से ज़रा बाहर है। यह विचित्र दृश्य देख वह डर गया कि कोई बला तो नहीं, जो इतने गहरे पानी और तेज़ बहाव में खड़ी स्नान कर रही है! इतने में उसने देखा कि वह स्त्री महाराज जी के क़रीब पहुँचती जा रही है। उससे रहा न गया और आगे बढ़कर महाराज जी के चरण पकड़ लिए और प्रार्थना की कि कोई चीज़ बढ़कर आगे आ रही है। महाराज जी ने आँख खोली और फ़रमाया, "तुम शोर न मचाते, तो स्वयं देख लेते वह औरत कौन थी?" इतने में वह स्त्री, जो थोड़ी देर पहले दिखाई दे रही थी, पानी में लोप हो गई। साथी के पूछने पर महाराज जी ने बताया कि वह औरत गंगा माई थी। तुम शोर न करते, तो देखते वह किस तरह हमसे मिलती।

स्वर्ग आश्रम में

नीलधारा से महाराज जी ऋषिकेश के स्वर्ग आश्रम पहुँचे। वहाँ रानी की कोठी में निवास किया, जहाँ किसी ज़माने में स्वामी शिवानंद रहते थे। स्वर्ग आश्रम से कुछ दूर नदी के बीच एक शिला इन्हें दिखाई दी, जिसे

भजन के लिए चुन लिया। आप बीच दरिया उस शिला पर जा बैठते और ध्यान में लीन हो जाते या फिर नदी के पार एक सिरे पर सेठ जयदयाल गोयिनका की गुफा में जाकर भजन पर बैठ जाते। इसमें एकांत के अलावा यह सुविधा थी कि खाने–पीने के लिए कोई तंग न कर सकता था। एक दिन तार आया कि ऊपर से पानी का बहाव तेज़ हो रहा है और दरिया 5-6 फुट चढ़ जाएगा। नदी किनारे पड़े हुए साधुओं को हुक्म हुआ कि झोंपड़ियाँ ख़ाली कर ऊपर चले जाओ।

साथियों को घबराहट होने लगी कि नदी में बाढ़ आ रही है और महाराज जी बीच मंझदार शिला पर समाधि लगाए बैठे हैं। इन्हें कैसे उठाया जाए? उन्होंने एक नाव वाले को कहा कि महाराज जी को नॉव में बिठाकर किनारे पर ले आओ। मगर उसने इंकार कर दिया। साथी से और कुछ न बना, तो उसने वहीं से शिला पर कंकड़ फेंके, पर वह जगह दूर थी। हारकर हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज से प्रार्थना की, हे सत्गुरु, हम पर दया करो, इन्हें उठाओ, उस वक़्त लहरों का तेज़–बहाव प्रलय का दृश्य प्रस्तुत कर रहा था। आख़िर मालिक ने प्रार्थना सुनी। महाराज जी ने धीरे–धीरे आँख खोली और कहा, "हे दाता।" उस वक़्त पानी का बहाव तेज़ था, परंतु जैसे पहले ख़बर मिली थी कि 5-6 फुट पानी चढ़ जाएगा, वह बात नहीं हुई, वरन धीरे–धीरे पानी उतरने लगा। महाराज जी शिला से उठे और पानी में से गुज़रकर किनारे पर आ गए। स्वर्ग आश्रम में महाराज जी किताबें भी साथ ले गए थे कि वहाँ अध्यात्म पर कुछ लिखेंगे, परंतु आत्म–रस की मस्ती में लिखना–पढ़ना तुच्छ दिखाई दिया और किताबें किनारे रख दीं। स्वामी रामतीर्थ के जीवन में भी आता है कि वे किताबें साथ ले गए थे कि ऋषिकेश जाकर रूहानियत के बारे में एक सहज–सुलभ पुस्तक लिखेंगे, परंतु आत्म–रस आया, तो किताबें उठाकर नदी में फेंक दीं।

शेर की गरज

महाराज जी ने अब यह नियम बना लिया कि पहाड़ पर चले जाते और वहाँ सारा दिन ध्यान में लीन रहते। एक दिन चलते–चलते नीलकंठ की ओर जा निकले। बहुत देर वापस न लौटे, तो साथी खोजने चले और नीलकंठ के समीप जंगल में जा निकले। वहाँ लोगों से पता चला कि इस जगह शेर पड़ता है। 110 वर्षीय एक वयोवृद्ध साधू

ने बताया कि शेर घूम रहा है, ज़रा संभलकर जाना। शेर की आँखों की तरफ़ न देखना और आगे गए, तो देखा शेर के हमले से एक बैल मरा पड़ा है। लेकिन गुरु का नाम लेकर, वह आगे ही आगे चलते गए। रास्ते में एक नाला पड़ता था। उसके बीच से निकले ही थे कि शेर की गरज सुनाई दी, जिससे दिल दहल उठा। लेकिन उन्होंने जी नहीं हारा। इतने में क्या देखते हैं कि महाराज जी सामने से चले आ रहे हैं और कह रह हैं, "घबराओ नहीं, मैं ही तुमको डरा रहा था, ताकि तुम मेरा पीछा न करो।"

साथी बेचारे भी क्या करते! महाराज जी के सिवाय उनका कौन था? उन्हें छोड़कर वह कहाँ जाते? इस प्रकार वक़्त गुज़रता गया और चार महीने बीत गए। विरह–विह्वलता की अवस्था में आपने दो कविताएँ कहीं। प्रभु प्रेम–रस भीनी, विरह–वेदना से भरपूर एकांत में बैठकर गाओ, तो दुनिया से जी उचाट हो जाता है और दुनिया की कोई इच्छा मन में नहीं रह जाती। कविताओं में कुछ ऐसा प्रभाव था कि इनके साथियों का वापस दुनिया में जाने का मन नहीं करता था। मगर साथ ही यह सोच भी थी कि महाराज जी के बिना सत्संगीजनों और परमार्थाभिलाषी जनता का क्या बनेगा।

कविताएँ ये हैं :

1.

हरि बिन जीवन कौने काम।
सकल सम्पत्ति अरु मान-बढ़ाई, दीसे सकल बात ये ख़ाम।
स्वांस दो धारा बहती जाए, हर घड़ी आठों जाम।
हरि बिन...
नाम न जपियो सदा मदमाता, खो बैठ्यो अपना निज धाम।
सकल मतां में केवल हरिनामा, बिन रस चाखे जीवन कौने काम।
हरि बिन...
हरि नाम सम जग कछु नाहिं, खोल देखो वेद कुरान।
हरि हरि करते उमर गंवाई, अब तो कर ले अपना जान।
हरि बिन...
हे हरि जी मो को कर ले अपना, बिन पैसे बिन दाम।
हरि जी दास की सुन लो पुकारा, थक आए प्रभु तेरी छाम।
हरि बिन...

2.

हरि मोको ले चल अपने धाम।
मन इन्द्री रस लोभ लुभाना, बसियो हाड-मांस को चाम।
हरि मोको...
तन-मन के पिंजरे में बैठ कर, भूल गयो अपना निजधाम।
मोह-माया का रूप हो गयो, बसियो जादू के धाम।।
हरि मोको...
अब निकसूं कस निकसिया जाए, कर बैठ्यो इसमें बिसराम।
हरि सत्गुरु मोहि आए बचाओ, नहीं तो पड़ा रहूँ इस ग्राम।।
हरि मोको...
बात बनाऊँ करूँ कछु नाहिं, कस पहुँचूं प्रीतम तोरे गाम।
घट के पट खोलो मेरे हरि जीओ, मैं हार पड़ा तेरी छाम।।
हरि मोको...
मैं अवगुण भरा कोई गुण नाहिं, किस मुँह से करूँ प्रणाम।
आपन बिरद आपही राख्यो, हरि जी दास सिर ऊपर छाम।।
हरि मोको...

जयदयाल गोयनिका से भेंट

ऋषिकेश में महाराज जी कई साधुओं से मिले, लेकिन किसी ने न पहचाना, यह कौन हस्ती हैं। लोग इन्हें सफ़ेद कपड़ों वाला साधू कहते थे। कई मठों के मालिकों से मिले, बातें की, लेकिन कोई अनुभवी न मिला। एक दिन गीता भवन के सेठ जयदयाल गोयनिका से भेंट हुई। गुफा में बैठकर दो घंटे उनसे बात हुई। महाराज जी अपने सत्संग–प्रवचनों में अक्सर उनका ज़िक्र करते थे और सेठ जी की साफ़गोई की सराहना करते थे। गोयनिका जी ने अंतरीय साधना के बारे में बताया कि हमारा भक्ति मार्ग है। महाराज जी ने उनसे कहा, "मैं चाहता हूँ कि सारे मठाधीश और विभिन्न समाजों के प्रमुख व्यक्ति आपस में मिल बैठें और जितना ज्ञान और अनुभव उन्हें हासिल है, उसके बारे में साफ़–साफ़ लोगों को बता दें। मठ और उनकी जायदादें जनता की मलकियत हैं, उन्हें जनता के हवाले कर दें।" सेठ जयदयाल ने कहा, "आपका ख़्याल अच्छा है और मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ, परंतु मठों वाले इस बात को मानेंगे नहीं। यह काम आप ही कर सकते

हैं। यदि आप यह काम अपने हाथ में लें, तो मेरा सारा गीताभवन आपकी सेवा के लिए हाज़िर है।"

साधु-महात्माओं से विचार-विमर्श

ऋषिकेश में महाराज जी भिन्न–भिन्न आश्रमों में गए और साधु–महात्माओं से मिले। स्वामी शिवानंद से भी मिले। उन्होंने अपना आश्रम दिखाया। महाराज जी ने पूछा कि 'सुरत–शब्द योग' और 'वेदांत' में क्या अंतर है? स्वामी जी ने कहा कि वेदांत यदि एम.ए. है, तो 'सुरत–शब्द योग' उसकी तुलना में मैट्रिक है। यह विचित्र उत्तर सुनकर महाराज जी ने इस विषय पर आगे बहस नहीं की। दूसरा सवाल यह था कि इतिहास में आता है कि सावित्री का पति सत्यवान मर गया, तो वह शरीर छोड़कर उसके पीछे चल दी। वह क्या साइंस थी, जिसके द्वारा सावित्री शरीर छोड़कर यमराज के पीछे चल दी और फिर वापस शरीर में आ गई? स्वामी जी कहने लगे, "योगीजन दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है।" इससे अधिक वह कुछ नहीं कह सके। दूसरे दिन स्वामी शिवानंद के आश्रम से कुछ लोग महाराज जी से वाद–विवाद करने उनके निवास–स्थान रानी की कोठी पहुँचे, बातचीत हुई। महाराज जी ने प्रश्न किया कि आप कहते हैं, "अहं ब्रह्म अस्मि" अर्थात मैं ब्रह्म हूँ। जब सब ब्रह्म है, तो प्रार्थना किसके आगे करते हो? इस प्रश्न का कोई जवाब उनके पास नहीं था। थोड़ी देर बातचीत करके वह चले गए। फिर एक दिन कुछ साधु आए। उनसे महाराज जी ने पूछा कि अव्यक्त अवस्था में (जब व्यक्तित्व का आवरण उतर जाता है अर्थात आत्मा depersonalised हो जाती है) अंतर में कैसे आगे जाते हो? कहने लगे, "योगीजन ज़ोर से आगे निकल जाते हैं।" महाराज जी ने बताया कि उस वक़्त सिर्फ़ शब्द के सहारे आगे जा सकते हो और कोई रास्ता नहीं।

जिसे वह आँख दे!

ऋषिकेश में निवास के दौरान महाराज जी कई महंतों और मठाधीशों से मिले, लेकिन किसी ने उन्हें नहीं पहचाना। परंतु कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने उनके मानव शरीर में ईश्वरीय झलक देखी। इस सिलसिले में दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। एक बार, महाराज जी स्वामी रामतीर्थ लायब्रेरी में गए और वहाँ पढ़ने के लिए किताब छाँटने लगे। लायब्रेरियन 15 मिनट तक किताबें निकाल–निकालकर देता रहा।

इस बीच किताबों के बारे में महाराज जी से कुछ बातचीत भी हुई। लायब्रेरियन को मालूम नहीं था कि महाराज जी कौन हैं? सहसा उसने झुककर महाराज जी के चरण पकड़ लिए। महाराज जी ने कहा, "यह क्या कर रहे हो?" कहने लगा, "महाराज! मैंने आपकी आँखें देखीं, तो लगा यह आँखें प्रभु में मस्त हैं, और बरबस मेरे मन में आया कि मैं आपके चरण पकड़ लूँ।"

श्री राघवाचार्य से भेंट

दूसरी घटना वयोवृद्ध योगी श्री राघवाचार्य जी से भेंट की है। महाराज जी भ्रमण करते हुए, उनके स्थान के समीप जा निकले। सौ वर्ष से अधिक का यह योगी अपने आसन से नहीं उठता था, न किसी से मिलता था। महाराज जी उसके डेरे से बहुत दूर खड़े थे, इतना दूर कि देखकर अनुमान नहीं लगाया जा सकता था कि कौन आ रहा है। परंतु वह आँख वाला था। उसने दूर से देखा, तो तुरंत आसन से उठ खड़ा हुआ। महाराज जी समीप आए, तो राघवाचार्य जी बड़े प्यार से उन्हें मिले। सच है, आँख आँख को पहचानती है। अंतर्मुख साधन–अभ्यास के संबंध में देर तक महाराज जी से उनका वार्तालाप होता रहा। सारे ऋषिकेश में, जहाँ बड़े–बड़े आश्रम हैं और महात्मा हैं, जिनकी ख्याति दूर–दूर फैली हुई है, यह साधू मिला, जो पतंजलि योग का अभ्यास करके, पिंड छोड़कर सहस्रार (सहस्रदल कंवल) तक जाता था। राघवाचार्य, जो अब जीवित नहीं हैं, महाराज जी से उन्हें बड़ा प्यार था।

वनवास की पृष्ठभूमि

महाराज कृपाल सिंह जी पाँच महीने और सात दिन ऋषिकेश रहे। सवा पाँच महीने का यह वनवास भजन–सुमिरन और उस महान कार्य की तैयारी का समय था, जो आगे चलकर उन्हें करना था। उसका सारा कार्यभार और विधान वहीं बना। उदाहरण के तौर पर, जीवन की पड़ताल के लिए डायरी रखने का ख़्याल ऋषिकेश में निवास की पैदावार है। छोटी उम्र में उन्होंने महापुरुषों के जो भी जीवन–चरित्र पढ़े थे, उन सबमें डायरी का ख़्याल किसी न किसी शक्ल में मौजूद था। अतः बचपन ही से

आप स्वयं भी डायरी रखते चले आ रहे थे। बाबा जयमल सिंह जी महाराज हर आने वाले से पूछा करते थे कि क्या लेकर आए हो? और जब वह जाता, तो पूछते, "क्या लेकर जा रहे हो?" यह डायरी ही का एक प्रकार था। डायरी दिनभर की करनी का हिसाब ही तो है। हाफ़िज़ साहिब अपनी भूल–चूक और त्रुटियों का हिसाब इस तरह रखा करते थे कि एक कंकड़ उठाकर एक जगह डाल देते। थोड़े दिनों में ढेर लग जाता, अपनी त्रुटियों को देखकर जी घबराने लगता। डायरी के संदर्भ में उनके सामने यह चीज़ भी थी कि उपदेश लेने के बाद शिष्य (जिनकी संख्या हज़ारों में हो) गुरु के पास नहीं रह सकते। उनके लिए डायरी याद दिलाने का सही तरीक़ा है– right way of reprimanding है।

जीवों को नामदान

उस समय तक महाराज जी ने जीवों को नामदान देने का सिलसिला शुरू नहीं किया था। एक दिन हुज़ूर महाराज ने गोपालदास को, जो वहाँ सेवा करता था, 'नाम' देने का अंतरीय आदेश इन्हें दिया। चुनाँचे वह इनका पहला सत्संगी था और शिष्यों की सूची में पहला नाम उसी का है। यह सितंबर मास के शुरू की बात है। तत्पश्चात अक्तूबर और नवंबर में आपने किसी को नाम नहीं दिया! नामदान का सिलसिला 2 दिसंबर, 1948 ई. में नियमित रूप से दिल्ली में शुरू किया गया।

ऋषिकेश से दिल्ली को वापसी

थोड़े दिन बाद हुज़ूर महाराज जी ने अंतर में फ़रमाया, "कृपाल सिंह! संगत रुड़ी (बही) जा रही है। लोगों ने ध्यान बदल दिया है। उनका राखा (रक्षक) कौन होगा? तुम जाओ, जाकर काम करो।"[34] उन्हीं दिनों लोग भी दूर–दूर से आकर इनके गिर्द जमा हो गए थे और ज़ोर दे रहे थे कि महाराज, दिल्ली चलकर सत्संग का काम संभालो। अतः सवा पाँच महीने ऋषिकेश में निवास करने के पश्चात, हुज़ूर महाराज के अंतरीय आदेश और सत्संगीजनों के अनुरोध पर आप वापस दिल्ली रवाना हो गए। रास्ते में देहरादून ठहरे। एक पुराने सत्संगी ने पूछा, "हुज़ूर महाराज की दयामेहर कहाँ काम कर रही है?" कहने लगे, अंतर जाकर स्वयं उनसे पूछ

लो। यह कहकर तवज्जोह देकर उसे भजन पर बिठा दिया और आदेश दिया कि जब तक अंतर में गुरु स्वरूप प्रकट न हो जाए, लगे रहो। यह कहकर दिल्ली चले आए। कई दिन अभ्यास के बाद उस व्यक्ति को अंतर में हुज़ूर महाराज के दर्शन हुए और हुज़ूर ने फ़रमाया कि मेरी दयामेहर कृपाल सिंह में काम कर रही है। उसमें पाँच धाराएँ काम कर रही हैं– एक मेरी, एक बाबा जयमल सिंह जी महाराज की, एक स्वामी जी महाराज की, एक राय शालिगराम जी की और एक उसकी अपनी धारा।

⌘⌘⌘

8.
अँधेरे में प्रकाश की किरण

महाराज कृपाल सिंह ऋषिकेश से दिल्ली पहुँचे, तो एक अजीब वीरानी–सी चहुँ ओर दिखाई देती थी। आत्मा को उभार देने वाले अनंत स्रोत, जो हुज़ूर महाराज की दयामेहर से जारी थे, उनके जाने के बाद सूख से गए थे। कोई ऐसा न रहा था, दिल का भेदी, जिसके पास जाकर लोग दिल का दुखड़ा रोते। दुनिया के तपते मरुस्थल में गर्मी से झुलसे पथिकों को कोई लहलहाता पेड़ नहीं दिखता था, जिसकी घनी छाँव में बैठकर ठंडक और चैन मिलता। अनंत रात्रि के सन्नाटे में प्यासी आँखें उस किरण को खोज रही थीं, जो लोप हो गई थी और अंधेरों की बोझल सियाही अपने पीछे छोड़ गई थी। महापुरुषों के जाने के बाद ऐसी हालत पैदा हुआ ही करती है, जब ज़िंदगी निकल जाती है, कलबूत बाक़ी रह जाता है; शराब उड़ जाती है, प्याले रह जाते हैं– गंध भी बाक़ी नहीं रह जाती, जिससे मालूम हो कि कभी इन प्यालों में शराब भी थी। हुज़ूर महाराज फ़रमाया करते थे कि, "गुरु जब नाम देता है, तो शिष्य के साथ हो बैठता है और उस वक़्त तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक उसको सत्पुरुष की गोद में न पहुँचा ले।" यहाँ इस दुनिया में ही नहीं, आगे दिव्य–मंडलों में भी मार्गदर्शन करता है :

बा तू बाशद दर मकानो-ला-मकान, चूँ बिमानी अज़ सरा ओ अज़ दुकान।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.45)

गुरु की महिमा करते हुए मौलाना रूम कहते हैं कि वह इस दुनिया में भी काम करता है, और उस दुनिया में भी। इसलिए कहते हैं :

दामने-ऊ गीर ऐ यारे-दलेर, कू मुनज़्ज़ा बाशद अज़ बाला ओ ज़ेर।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 3, पृ.45)

कि किसी ऐसे का पल्ला पकड़ो, जो सब ऊँच–नीच को समझता है।

संतों की इस तालीम को, जो अनादि काल से चली आ रही है और जिसे वर्तमान समय में हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने ताज़ा किया और उसका व्यक्तिगत अनुभव लोगों को दिया, उस तालीम पर पर्दा डाला जा रहा था। हुज़ूर महाराज के डेढ़ लाख दीक्षितों को, जो अविनाशी गुरु–सत्ता की झलक देख चुके थे, उस अनंत जीवन–स्त्रोत हस्ती का ध्यान बदलने को कहा जा रहा था, उस महापुरुष को भुलाने का ख़्याल दिया जा रहा था, जो पुकार–पुकारकर कह रहा था, "मैं कहीं गया नहीं, तुम्हारे अंतर में हूँ। बाहर से हटो, अंतर्मुख हो। 'नाम' की पूर्ण युक्ति मैंने तुम्हें दी है। उसकी कमाई करके मुझ तक पहुँचो। उस दरवाज़े पर पहुँचो, जहाँ सत्गुरु दोनों हाथों में दयामेहर की दौलत लिए खड़ा है, इंतज़ार कर रहा है कि कब मेरे बच्चे मेरे पास आते हैं," और उसके यह प्रेरणादायक वचन, "एक क़दम तुम उसकी तरफ़ चलो, तो वह (गुरु) सौ क़दम आगे बढ़कर तुम्हें लेने आता है"— इस सारी तालीम को मिटाने की कोशिश की जा रही थी।

गद्दियाँ–महंतियाँ चलती हैं, चलती रहेंगी। संत इस तरफ़ ध्यान नहीं देते। वह इन झगड़ों में नहीं पड़ते, न कोई काट–छाँट करते हैं। जो कुछ हो रहा था, कोई नई बात नहीं थी। महापुरुषों के जाने के बाद ऐसा होता ही है। पर वह गुरु–सत्ता, जो कभी मरती नहीं, जो हर वक़्त शिष्य के अंग–संग है और उसकी संभाल (रक्षा) करती है— लोक–परलोक में— वह कैसे चुप रह सकती थी? वह हस्ती जिसने कहा था, "शिष्य छोड़ जाए तो छोड़ जाए, गुरु कभी साथ नहीं छोड़ता।" वह सत् की धारा, दया की लहर प्रवाहमान हुई। हुक्म हुआ, कृपाल सिंह! संगत रुड़ी (बही) जा रही है। लोगों ने ध्यान बदल दिया है। उनका राखा (रक्षक) कौन होगा? तुम जाओ, काम करो।"

हुज़ूर का हुक्म और उनकी बरक़त लेकर महाराज कृपाल सिंह जी दिल्ली आए, अध्यात्म की सूखी क्यारियों की सिंचाई करने, प्यासे पौधों को पानी देने, जिनके बारे में बरसों पहले हुज़ूर महाराज से उन्होंने निवेदन किया था, "हुज़ूर, जितना पानी भेजोगे, दे दिया जाएगा, नालियों का क्या है," और देने वाले ने पानी दिया और देखते ही देखते नदी–नालों में बाढ़ आ गई। सूखे मरुस्थलों में, जहाँ धूल उड़ा करती थी, हरियाली

की बहार आ गई, दिलों की खेतियाँ हरी हो गईं। मुख़ालिफ़त के तूफ़ान उठे, जक्कड़ चले, किंतु दयामेहर का वह अनंत प्रवाह किसी के रोके न रुका। हुज़ूर की अपार दयाधारा इस ज़ोर से चली कि अध्यात्म की बाढ़ विवाद का विषय बन गई।

इस सारी पृष्ठभूमि को इसलिए दर्शाना पड़ा, ताकि यह मालूम हो कि वह क्या परिस्थिति थी, जिसने अध्यात्म जी दुर्लभ निधि को ऐसा सर्वसुलभ कर दिया। ऐसे हालात बन गए थे कि अध्यात्म का लोप होता दिखाई देने लगा था। विज्ञान के इस युग में लोग बातों से बहलने को तैयार नहीं थे। वह नक़्द पूँजी माँगते थे। वर्तमान समय में विज्ञान के विलक्षण आविष्कारों को देख लोगों की आँखें चौंधिया गई हैं। वे तर्क–वितर्क से और धर्मग्रंथों के प्रमाणों से, जिन पर से उनकी आस्था उठ चुकी थी, संतुष्ट होने वाले नहीं थे। यहाँ समझने–समझाने का नहीं, देखने–दिखाने का सवाल था। किसी ऐसी हस्ती की ज़रूरत थी, जो समझाए ही नहीं, दिखाए भी, जैसे हुज़ूर महाराज दिखाया करते थे।

तो यह हालात थे, जिनके कारण अध्यात्म की नई धारा बहुत बड़ी ताक़त के साथ प्रकट हुई। प्रभु–सत्ता तो वही है, पर जितना गहन अंधकार हो, उतनी ही तेज़ रोशनी उसे दूर करने के लिए चाहिए। जिनको किसी जीवित सत्स्वरूप महापुरुष से आँखें चार करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, उनका तो ज़िक्र ही क्या, ख़ुद संतों के नामलेवा पथभ्रष्ट हो रहे थे। इन हालात में दयामेहर की धारा का अविरल गति प्रवाह एक बाढ़ बन गया, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है?

वह सत्ता किसकी थी? वह हुज़ूर महाराज की ताक़त थी। वचन दिया था उन्होंने संभाल करने का[35] और क़दम–क़दम पर उस ताक़त ने, गुरु–सत्ता ने प्रमाण दिया कि हुज़ूर की दयामेहर कहाँ काम कर रही है। चुनाँचे रास्ता चलते लोगों को हुज़ूर प्रकट हुए और महाराज कृपाल सिंह जी के मकान का पता बताया। कइयों को ख़ुद साथ चलकर रास्ते पर डाला कि वहाँ जाओ, तुम्हारे रोग का दारू वहाँ है। और जब नामदान का सिलसिला शुरू हुआ, तो यह हालत थी कि नाम महाराज कृपाल सिंह जी देते, अंतर में स्वरूप हुज़ूर महाराज का आता। नए दीक्षितों को भी, जिन्होंने ज़िंदगी में हुज़ूर को कभी देखा नहीं था, उन्हें हुज़ूर का फ़ोटो दिखाया जाता, तो

वे अपनी–अपनी बोली में गवाही देते कि यह वही महापुरुष हैं, जिनका दिव्य–स्वरूप हमने अंतर में देखा है। कई बार दोनों स्वरूप– महाराज कृपाल सिंह जी का और हुज़ूर महाराज का इकट्ठे आते। कभी हुज़ूर महाराज का स्वरूप आता, जो महाराज कृपाल सिंह जी के स्वरूप में बदल जाता। दयाधारा का यह अविरल गति प्रवाह अभी तक जारी है, जिसकी कथाएँ लिखी जाएँ, हज़ार–हज़ार पृष्ठ के हज़ार ग्रंथ भी लिखे जाएँ, तो भी इस कहानी का हज़ारवाँ अंश भी नहीं लिखा जा सकता। कई एतराज़ इन पर किए गए– न मिलने के बारे में नहीं, ज़्यादा मिलने के बारे में, आत्मानुभव को सर्वसुलभ करने के बारे में। शुरू की बात है। कई पुराने सत्संगियों ने शिक़ायत की कि 'नाम' जिनको मिला, उनको अनुभव मिले, वह तो ठीक, आप तो उन लोगों को भी भजन बिठा देते हैं, जिनको अभी 'नाम' नहीं मिला और उनको अंतर्मुख अनुभव भी मिल जाता है। कइयों को गुरु स्वरूप तक आ जाता है। फिर सत्संगी और ग़ैर सत्संगी में क्या फ़र्क़ रहा? नाम लेने वाले की क्या बड़ाई रही? इस प्रश्न का वही उत्तर दिया गया, जो हुज़ूर महाराज दिया करते थे कि नाम तवज्जोह है, अक्षर नहीं। लोगों ने यह भी कहा कि नाम आप देते हैं, स्वरूप हुज़ूर महाराज का आता है, कभी आपके साथ, कभी अकेले। आपने फ़रमाया, "क्या पता, मेरे अंदर हुज़ूर काम कर रहे हों?" कुछ भाइयों ने कहा कि इनकी अपनी कमाई है। जिस हिसाब से इन्होंने लुटानी शुरू कर रखी है, उससे लगता है कि ज़ल्दी ख़त्म हो जाएगी। आपने फ़रमाया, "अपनी कमाई हुई, तब तो ख़त्म हो जाएगी। उसकी बख़्शिश हुई, तो ख़त्म नहीं हो सकती।" आज तक तो ख़त्म हुई नहीं वरन दयादान का यह सिलसिला दिनों–दिन विस्तृत होता जा रहा है।

दिल्ली में किंग्ज़वे कैम्प के क़रीब रेडियो कॉलोनी में दो कमरे के एक छोटे से क्वार्टर में महाराज कृपाल सिंह जी ने निवास किया। आपके पुराने श्रद्धालु और साथी, सरदार गुरबख़्शसिंह, जो हुज़ूर महाराज की आज्ञा से दिल्ली में सत्संग किया करते थे, साथ वाले मकान में रहते थे, बल्कि उन्होंने ही यह मकान किराए पर दिलवाया था। दिल्ली की संगत से उन्होंने पहले ही कह दिया था कि हुज़ूर महाराज के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी महाराज कृपाल सिंह जी हैं। रेडियो कॉलोनी में

नए और पुराने सत्संगियों का आना–जाना शुरू हो गया। महाराज जी उन्हें भजन पर बिठाते, जिनका भजन नहीं बनता था, दयादृष्टि का उभार देकर उनका भजन ठीक करते और सत्संग–प्रवचन भी करते। नियमित रूप से सत्संग न. 7 दरियागंज में लाला हेमचंद्र भार्गव के सत्संगघर में शुरू हुआ। तत्पश्चात 35 राजपुर रोड में और उसके बाद मल्कागंज में अनार की कोठी में सत्संग का सिलसिला शुरू हुआ।

नामदान की शुरूआत

महाराज कृपाल सिंह जी ने 2 दिसंबर, 1948 ई. को रेडियो कॉलोनी किंग्ज़वे कैम्प में हुज़ूर महाराज की आज्ञा[36] के अनुसार नियमित रूप से जीवों को 'नाम' देने का काम शुरू किया। उस दिन जिन लोगों को 'नाम' दिया गया, उनमें वह बीबी भी थी, जिसने बीमारी के दिनों में हुज़ूर से पूछा था कि नाम कब मिलेगा? और हुज़ूर सच्चे पादशाह ने फ़रमाया था कि 9 महीने बाद मिलेगा। नाम के वक़्त उस बीबी को अंतर में हुज़ूर आए और फ़रमाया, "बीबी, तुझे नाम मिल गया न! तसल्ली हो गई?"

1924 ई. में महाराज कृपाल सिंह जी ने हुज़ूर महाराज से सवाल किया था कि हुज़ूर आपके बाद भी यह साइंस रहेगी? उन्होंने फ़रमाया था कि जिसको मैं कह जाऊँगा, उसका तो मैं ज़िम्मेदार हूँ, बाक़ियों का नहीं। हुज़ूर के इन वचनों में साफ़ इशारा था कि "जिसको मैं कह जाऊँगा, "उसके अलावा और लोग भी पैदा हो जाएंगे 'नाम' देने वाले, लेकिन, "मैं सिर्फ़ उसका ज़िम्मेदार हूँ, जिसको मैं कह जाऊँगा।" चुनाँचे महाराज कृपाल सिंह जी के दीक्षितों को जो अंतर्मुख अनुभव होता था और अब भी हो रहा है, दूसरी जगह 'नाम' लेने वालों को उसका पासंग भी नहीं मिला। यही कारण है कि हज़ार मुख़ालिफ़तों के बावजूद उनकी संगत बड़ी तेज़ी से बढ़ती चली गई, बढ़ती चली जा रही है।

देश-विदेश में प्रचार

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की तालीम और उनके आध्यात्मिक दयादान का सिलसिला उनके आध्यात्मिक सुपुत्र महाराज कृपाल सिंह जी के द्वारा भारत और विदेशों में बड़ी तेज़ी से फैलता चला

गया। सरदार त्रिलोचनसिंह खन्ना, जो हुज़ूर महाराज के चोला छोड़ने के समय डेरा व्यास में उपस्थित थे और वहाँ जो कुछ हुआ उससे पूर्णतया परिचित थे, उन्होंने महाराज कृपाल सिंह जी से आज्ञा लेकर अमरीका में सत्संग का काम शुरू कर दिया। तब वे अकेले थे, परंतु धीरे–धीरे लोग साथ आने लगे और देखते–देखते कई केंद्र अमरीका में स्थापित हो गए। इधर भारत में दिल्ली और दूसरे शहरों में सत्संग का सिलसिला बड़ी तेज़ी से फैलने लगा। दिल्ली में संगत ऐसी तेज़ी से बढ़ी कि सत्संग के लिए हर नई जगह छोटी पड़ती चली गई। रेडियो कॉलोनी और नंबर 7 दरियागंज में जगह कम पड़ी तो 35 राजपुर रोड के खुले मैदान में सत्संग होने लगा। वह जगह भी छोटी पड़ गई। अनार की कोठी में कुछ ज़्यादा गुंजायश थी, परंतु वह भी दिनोंदिन बढ़ती संगत के लिए पूरी न हुई। सत्संगीजनों ने विनती की कि महाराज कहीं सत्संगघर बना लें। अतः उपयुक्त स्थान की खोज होने लगी और इसी सिलसिले में डासना नहर की दुर्घटना घटी।

डासना नहर की दुर्घटना

डासना, दिल्ली से हापुड़ जाने वाली सड़क पर एक रमणीक स्थान है। दिल्ली में भिन्न–भिन्न स्थानों पर सत्संग के लिए जगह देखते हुए, महाराज कृपाल सिंह जी कुछ सत्संगीजनों के साथ डासना स्टेशन के पास ज़मीन देखने गए। डासना के क़रीब बिजली पैदा करने के लिए नहर पर एक बहुत बड़ी आबशार (झाल) बनाई गई है। महाराज जी और उनके साथी पानी की झाल का अनुपम दृश्य देख रहे थे। ऊपर से झाल गिर रही थी, नीचे पानी के अंदर तक सीढ़ियाँ बनी हुई थीं। पानी गिरने से उन पर काई जम चुकी थी। महाराज जी आगे चल रहे थे, साथी पीछे चल रहे थे। एक जगह जहाँ काई ज़्यादा थी महाराज जी का पाँव फिसला और आप सिर के बल गिर पड़े। यह वह जगह है, जहाँ पानी के तेज़ बहाव में आदमी तो आदमी, जानवर भी गिरे तो बच नहीं सकता। ठाठें मारती लहरों से उठती झाग को देखकर लगता था, मानो लोहे की बड़ी–बड़ी मधानियों से पानी बिलोया जा रहा हो। महाराज जी को पानी में गिरता देख साथियों के होश गुम हो गए। उन्होंने शोर मचाकर लोगों को इकट्ठा किया कि हमारा आदमी पानी में गिर गया है। कोई पानी में कूदकर उसे निकाल लाए, तो जो माँगे हम देंगे। वह

कहने लगे, "यहाँ जानवर गिर जाए तो हड्डियाँ न मिलें, तुम कहते हो आदमी को निकालो।" साथी चीख–चीखकर हार गए। आख़िर महाराज जी का शरीर पल भर के लिए पानी पर उभरा और हाथ से इशारा किया। यह इशारा मदद के लिए नहीं, आश्वासन के लिए था कि घबराओ नहीं। सब उस तरफ़ दौड़े जहाँ से हाथ दिखाई दिया था। थोड़ी दूर जाकर हाथ फिर दिखाई दिया और फिर लोप हो गया। साथियों को ढारस हुई कि महाराज जी अभी जीते हैं। परंतु 100 फुट चौड़ी नहर से, जहाँ 40 फुट ऊँची झाल गिर रही थी और लहरों में भयंकर तूफ़ान उठ रहा था, बच निकलने की संभावना दिखाई न देती थी। घंटा भर बाद क्या देखते हैं कि दूर पानी की लहरों पर महाराज जी का शरीर बहता चला जा रहा है। यह देखकर सबकी जान ही तो निकल गई, क्योंकि सुना था कि मृतक शरीर पानी पर तैरने लगता है। सब लोग बहाव के साथ–साथ चलते गए। बहुत दूर जाकर देखा कि महाराज जी आप ही किनारे पर आकर बैठ गए हैं। उन्हें जीता–जागता देख सब में जान आई। बर्फ़ से ज़्यादा ठंडे पानी में घंटा भर थपेड़े खाने से शरीर नीला पड़ गया था और कपड़े भीगकर लिद्दड़ हो चुके थे। महाराज जी ने गीले कपड़े उतार दिए, तन पर एक चादर लपेट ली और चैन से बैठ गए। इतने में आस–पास से लोग इकट्ठे हो गए और पूछने लगे, पानी में कौन गिरा था?

पानी में गिरने का हाल बताते हुए महाराज जी कहने लगे कि मैं पानी में गिरा, तो नीचे तह में तेज़ रोशनी थी, लाल रंग की। बाबा जयमल सिंह जी और हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के दर्शन हो रहे थे। मैंने शरीर ढीला छोड़ दिया। सत्गुरु दयाल संभाल कर रहे थे, घूम–घाम कर मैं किनारे आ लगा। महाराज जी ने यह भी बताया कि उनके बड़े बेटे दर्शनसिंह की जन्मपत्री में लिखा है कि 1948 ई. के बाद इस लड़के के सिर से पिता का साया उठ जाएगा। 31 दिसंबर को यह दुर्घटना हुई। उस दिन से सत्गुरु दयाल ने अपनी ओर से आयु दी है और नया जीवन प्रदान किया है, ताकि परमार्थ का काम, जो उन्होंने मुझे सौंपा है, पूरा किया जाए।

साँझे मंच की शुरूआत

महाराज कृपाल सिंह जी ने जब परमार्थ का काम शुरू किया, उस वक़्त पाकिस्तान नया–नया बना था। नफ़रत के तूफ़ान ने दोनों ओर लग.

भग 14 लाख इंसानों को मौत के घाट उतार दिया था। समाजों का आपसी वैर–विरोध और वैमनस्य, जो ता'स्सुब और तंगदिली की उत्पत्ति था, देश के विभाजन और लाखों इंसानों की मृत्यु और विनाश का कारण बना। जो हस्तियाँ इंसानों को मिलाने और प्रभु से जोड़ने का दैवी कार्य लेकर संसार में आती हैं, वह जात–पात, रंग–नस्ल, मुल्क़ और क़ौम के भेदभाव से उपराम, मानवता के स्तर से सारी दुनिया को देखती हैं। उनकी दृष्टि में इंसान इंसान सब एक हैं। महापुरुष सबको मिलाने आते हैं। अतः महाराज कृपाल सिंह जी ने सब समाजों के जागृत पुरुषों को एक जगह इकट्ठा किया, ताकि सब मिलकर विश्व भ्रातृत्व का प्रचार करें। समाजों के रीति–रिवाज़ को न छेड़ें और अध्यात्म को, जो मूल विषय है, सब समाजों का और जिसके बारे में सब धर्मग्रंथों की तालीम एक है, उसको एक साइंस के रूप में संसार को प्रस्तुत करें। अतः 'Spiritual Friends Society' (अध्यात्म मित्र मंडल) के नाम से एक सभा स्थापित की गई, जिसके तत्वावधान में 35 राजपुर रोड में जलसे होते थे। इन जलसों में मौलाना अहमद सईद मदनी, प्रोफ़ेसर अब्दुल मजीद ख़ान, पंडित सुंदरलाल, पारसी नेता श्री डावर और अन्य नेतागण भाषण देते थे। यह शुरूआत थी, नए ज़माने के उस विश्वधर्म की, जिसकी रूपरेखा 'गुरुमत सिद्धांत' में कई वर्ष पहले निर्धारित की जा चुकी थी और जिसका सक्रिय स्वरूप, रूहानी सत्संग, सावन आश्रम और उसके बाद 'World Fellowship of Religions' ('विश्व सर्वधर्म सम्मेलन") के रूप में प्रकट हुआ। महाराज कृपाल सिंह जी ने इस सोसायटी के जल्सों में अपने भाषणों में आपसी मेल–मिलाप पर बल दिया और कहा कि विभिन्न धर्मों के अनुयायी आपस में मिल बैठें तो एक–दूसरे के नज़दीक आयेंगे, एक–दूसरे के विचारों को समझेंगे, जिससे आधी शंकाएँ और भ्रम, जो नासमझी और अज्ञानता की पैदावार हैं, स्वतः दूर हो जायेंगे। मज़हब या धर्म के दो अंग हैं : एक सदाचार का अंग, कि इंसान नेक–पाक सदाचारी बने, इंसान इंसान के काम आए, ताकि सबके लिए सुख का कारण बने। दूसरा पहलू यह है कि इंसान अपने आपको जाने कि वह देह नहीं, आत्मा है, जो देह को चला रही है और जब इससे निकल जाती है तो यह शरीर मिट्टी का ढेर रह जाता है और आत्मा उस सच्चिादानंद परमात्मा की अंश है, जो सारी दुनिया को चला रहा है और सबको लिए है। वह सिंधु है, तो

यह बिंदु है। बिंदु को यदि अपने यथार्थ स्वरूप का भान हो जाए, तो वह बरबस समुद्र की ओर जाएगी, क्योंकि हर अंश अपने अंशी की ओर जाता है, उससे मिलने के लिए आतुर है। महाराज जी ने विभिन्न धर्मग्रंथों के उद्धरण देकर ऐसी सादग़ी और सफ़ाई के साथ विषय का स्पष्टिकरण किया कि इस्लामी दुनिया के सुविख्यात धर्मगुरु, मौलाना अहमद सईद साहिब आश्चर्यचकित रह गए। चुनाँचे अपने भाषण में उन्होंने कहा कि मैं तो एकता का एक रस्मी जलसा समझकर यहाँ आया था, किंतु महाराज कृपाल सिंह जी के भाषण ने मेरी आँखें खोल दी हैं। महाराज जी ने अपने भाषण में अध्यात्म संबंधी कुछ ऐसे सूक्ष्म संकेत दिए थे, जिन्हें कोई भेदी ही समझ सकता था। मौलाना अहमद सईद करनी वाले लोगों में से थे। महाराज जी से बातचीत में उन्होंने बताया कि वह ज़िक्रे–क़ल्बी (हृदय चक्र के सुमिरन) क अभ्यास करते थे। हुज़ूर महाराज ने उन्हें ज़िक्रे–रूही (रूह के सुमिरन) के बारे में बताया, जिसे सुनकर मौलाना अहमद सईद बहुत प्रभावित हुए। एक विचित्र बात यह देखने में आई कि मौलाना विशुद्ध शाकाहारी थे। कहने लगे, आमिल (अभ्यासी) के लिए माँसाहार वर्जित है।

उन्हीं दिनों 35 राजपुर रोड में पहली पॅसिफ़िक (शांति) कांफ़्रेस के सदस्यों की बैठक हुई, जिसमें श्री रेजिनल्ड रेनॉल्ड्स, जो एक समय महात्मा गाँधी के संदेशवाहक बनकर वायसरॉय से मिले थे और जर्मनी, फ्रांस आदि देशों के प्रतिनिधि शामिल हुए। उनमें कई सदस्यों ने महाराज जी से दीक्षा ले ली। महाराज कृपाल सिंह जी ने इस सभा में विश्व भ्रातृत्व और विभिन्न धर्मों के एक संयुक्त मंच के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जो आगे चलकर 'विश्व सर्वधर्म संगम' के सार्वभौम मंच से विश्व के विभिन्न देशों के धार्मिक और सामाजिक नेतागणों और सत्ताधीशों के सामने उन्होंने रखा। इस प्रकार, शुरू ही से उस काम की दाग़–बेल डाली जा रही थी, जो आगे चलकर सार्वभौम विस्तार पर उन्होंने करना था।

गुरु-सत्ता का काम

आँखों देखी घटनाओं का यह वर्णन है, किसी बीते युग का यह इतिहास नहीं। पूरे कुछ ही वर्ष भी नहीं बीते इन घटनाओं को घटे हुए, परंतु इस थोड़े समय में जो काम हुआ है, उसको देखकर अक़्ल हार जाती है कि

यह सब कैसे हुआ? साधनविहीन दशा में साधन कहाँ से आ गए? न पैसा पास था, न कार्यकर्ता थे, न कोशिश ही की गई पैसा इकट्ठा करने की। और दूसरी तरफ़ वह लोग थे, जिनके पास लाखों रुपए थे, बना–बनाया डेरा था, बड़ी भारी संगत थी और सारे साधन मुख़ालिफ़त पर खर्च किए जा रहे थे। यहाँ मुक़ाबले में कुछ नहीं था, मुक़ाबले का ख़्याल तक नहीं था। जवाबी कार्यवाही तो दूर रही, विरोधियों के प्रहार से बचाव के लिए भी कोई क़दम नहीं उठाया गया। फिर यह परिवर्तन कैसे हुआ कि कुछ न था और सब कुछ हो गया। ईंट–ईंट जोड़कर मकान खड़े हो गए। प्रयत्न किए बिना, नए केंद्र खुलते चले गए। लोग साथ आते गए और कारवाँ बनता गया, और वह बढ़ता गया, फैलता चला गया, पूर्व से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक, भारत के कोने–कोने में, विश्व की दसों दिशाओं में। सामने की बात है, आँखों देखी बात, फिर भी समझ नहीं आता कि यह सब कुछ, जो आँखों देखते हुआ, कैसे हो गया?

सितंबर 1948 ई. में, जब महाराज कृपाल सिंह जी ने दिल्ली में सत्संग का काम शुरू किया, तब से जून 1951 तक, जबकि सावन आश्रम दिल्ली की नींव रखी गई, तीन वर्ष का समय ही तो है। इस अरसे में भारत में जगह–जगह सत्संग का सिलसिला क़ायम हो गया। अमरीका में बड़े ज़ोर–शोर से काम फैला। विश्व के अन्य देशों में नाम के प्रचार के लिए ज़मीन तैयार हो गई। सेवादारों में कितनी लगन थी, कितना जोश था काम करने का। सावन आश्रम का निर्माण इसका जीवित उदाहरण है। इस सारे काम को समझने के लिए गुरु–सत्ता का ज़िक्र करना ज़रूरी है, जो सत्संगों में, भजन–सुमिरन की बैठकों में और चमत्कारों के द्वारा प्रकट हुई। इस संदर्भ में कुछ घटनाएँ हम यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

सार्वभौम प्रचार की एक झलक

शुरू–शुरू की बात है। कई पुराने सत्संगी भाई महाराज कृपाल सिंह जी को हुज़ूर महाराज के नाम संदेश देते थे कि आप तो अंतर में उनसे मिलते हो, हमारा सवाल हुज़ूर से पूछ देना। कृपाल सिंह जी ने अंतर के मामलों की एक डायरी बना रखी थी, जिसमें अंतर दिव्य–मंडलों में सिद्ध पुरुषों से बातचीत, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के संगत

के लिए आदेश और ऐसी दूसरी बातें लिखी जाती थीं। कई बार किसी बालक को महाराज जी तवज्जोह देकर बिठा देते कि अंतर में हुज़ूर महाराज से अमुक प्रश्न पूछकर उसका जवाब लाओ। एक दिन एक बच्चे को भजन पर बिठाया गया। उसने बताया कि हुज़ूर महाराज ने अंतर में उस बच्चे से पूछा कि तू अपने गुरु (महाराज कृपाल सिंह) की संगत देखना चाहता है? बच्चे ने हाँ की, तो यह दृश्य उसने देखा कि धरती के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सिर ही सिर नज़र आते थे, लोगों के। किसी के सिर पर हैट, किसी के टोपी, रंग–बिरंगी पोशाकें थी। हरेक देश और जाति के लोग वहाँ मौजूद थे। इसी प्रकार का दृश्य एक बीबी को अंतर में दिखाई दिया कि रंगारंग के ध्वज और चिह्न उठाए एक बहुत बड़ा जलूस महाराज कृपाल सिंह जी के स्वागत के लिए चला आ रहा है। कहीं ऊँटों की नुकेल हाथों में थामे अरब जातियों के लोग चले आ रहे हैं, कहीं लंबे चोग़े और समूर की खाल की बड़ी–बड़ी टोपियाँ पहने रूसी चले आ रहे हैं, कहीं अफ़्रीका के हब्शियों का जलूस चला आ रहा है, तो कहीं चीनियों का और कहीं कोट–पतलून पहने अमरीका और यूरोप के लोग चले आ रहे हैं। बीस–बाइस साल पहले यह दृश्य एक चमत्कार दिखाई देता था, परंतु आज वह प्रत्यक्ष, साकार, हमारे सामने है।

महाराज कृपाल सिंह जी का सत्संग-मंडल

सबसे बड़ी चीज़, जो परमार्थाभिलाषियों को महाराज कृपाल सिंह जी के पास लाने का कारण बनी, वह उनके सत्संग–मंडल का विलक्षण प्रभाव था। उनके मंडल में जाकर लोग तन–मन की सुध–बुध भूल जाते थे (जैसे हुज़ूर महाराज के सत्संग मंडल में भूल जाते थे)। पास कौन बैठा है, यह भी होश नहीं रहता था। दो–दो, ढाई–ढाई घंटे सत्संग चलता और लोग बुत बने सुनते रहते, समय बीतता मालूम नहीं होता था। किसी विशेष धर्म या मत की छाप उनके सत्संग में नहीं होती थी। विषय का स्पष्टिकरण करते हुए विभिन्न समाजों के धर्मग्रंथों के उद्धरण प्रस्तुत किए जाते, जिससे यह बात स्पष्ट हो जाती कि सत्य एक है और सभी धर्मग्रंथों में उसकी शिक्षा दी गई है। भाषा और शैली अपनी–अपनी है, सार एक है, सारे धर्मग्रंथों का। जब सारे धर्मों का आधार एक सत्य है,

तो फिर भेदभाव की गुंजाइश कहाँ रही? सारे धर्मग्रंथ, जो आज दिन तक लिखे गए, और पूर्ण पुरुष, जो आज दिन तक आए, उनके प्रति समान आदर भाव इनके सत्संगों में प्रकट होता था। अतः हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सब इनके सत्संगों में आने लगे। वहाँ सबको अपने–अपने धर्मग्रंथों से आध्यात्मिक ख़ुराक़ मिलती थी और यह अहसास होता था कि सत्य किसी ख़ास धर्म या समाज का एकाधिकार नहीं। सब समाजों में महापुरुष आए हैं और उसी एक सत्य का प्रचार उन्होंने किया, जो सारे धर्मों और मतों की जान है। सत्संग वचन उस हृदय से चले आते थे, जो प्रभु–प्रेम और एकता के रंग में रंगा हुआ था। अतः उनमें वही charging थी, उभार था प्रेम और एकता का, जो टूटे दिलों को जोड़ता और सबको एकता की लड़ी में पिरोता चला जाता था। यह विलक्षण प्रभाव पूर्ण पुरुष के सत्संग–मंडल ही में देखा जा सकता है। सत्गुरु की महिमा भी यही है :

नानक सतिगुरु ऐसा जाणीऐ जो सभसै लए मिलाइ जीउ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी म°1, पृ°72)

वह सबको मिलाकर बैठता है। पुराने सत्संगियों को इनके सत्संगों में वह आध्यात्मिक ख़ुराक़ मिलने लगी, जो दुर्लभ हो गई थी। महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–मंडल में जाकर हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की याद ताज़ा होती थी। नए भाई जिन्होंने ज़िंदगी में हुज़ूर महाराज के कभी दर्शन नहीं किए थे, वह भी उनकी चर्चा सुनकर रोने लगते, तो उनके दीक्षितों की क्या हालत होती होगी?

महाराज कृपाल सिंह जी ने हज़ारों सत्संग भारत और विदेशों में किए। एक भी सत्संग इनका ऐसा नहीं था, जो हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की चर्चा और उनकी याद से ख़ाली हो। इनके असंख्य सत्संग, जो टेप–रिकॉर्ड किए गए, किताबों और पत्रों में छपे। उनको पढ़कर आश्चर्य होता है कि हरेक सत्संग में नए–नए रूप में हुज़ूर महाराज का ज़िक्र है और उनके व्यक्तित्व और शिक्षा के बारे में नई से नई बातें मिलती हैं, जिनके आधार पर हुज़ूर महाराज के जीवन और शिक्षा पर ग्रंथ के ग्रंथ रचे जा सकते हैं। उनके सत्संग–मंडल में जाकर हुज़ूर महाराज के वचनों की सत्यता प्रमाणित होती है कि "टूटे हुए की संगति तुम्हें तोड़ेगी और जुड़े हुए की संगति तुम्हें जोड़ेगी। जो गुरु से जुड़ा हुआ है, वह तुम्हें अपने साथ नहीं,

गुरु से जोड़ेगा।" पुराने सत्संगियों को हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की मीठी, सुख भरी याद और गुरु–प्रेम की अनमोल निधि इनके चरणों में जाकर मिली, तो वह भारी संख्या में इनके सत्संगों में आने लगे। पंजाब में, देहात में, यू.पी. में और दूर बम्बई तक, डेरे वालों के प्रचार और रुकावटों के बावजूद लोग इनके पास खिंचे चले आते थे। सत्संग के बाद पुराने भाई रोते हुए इनके पास आते और कहते, हुज़ूर महाराज के जाने के बाद आज पहली बार हमारे दिलों की सूखी खेतियों को पानी देने वाला कोई हमदर्द भाई हमें मिला, जिसने गुरु–प्रेम के दबे हुए संस्कारों को उभारकर हमें एक नया जीवन प्रदान किया है। पुराने भाइयों के लिए गुरु–प्रेम की बख़्शिश का यह सिलसिला जारी है। सत्संग की उपरोक्त वर्णित तस्वीर आपके सत. संग–मंडल में जाकर देखी जा सकती है। पुराने भाइयों का ज़िक्र ही क्या है, नए भाइयों के मन में हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के प्रति जो प्रेम और श्रद्धा भाव मौजूद था, उसने नए और पुराने का फ़र्क़ ख़त्म कर दिया। चुनाँचे महाराज कृपाल सिंह जी अपने सत्संग–प्रवचनों में फ़रमाया करते थे कि मुझे इस बात पर गर्व है कि पुराने सत्संगियों के मन में बाबा जयमल सिंह जी के लिए इतना प्यार नहीं था, जितना हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी का प्यार नए दीक्षितों के मन में है। इस प्यार का नतीजा था कि नए दीक्षितों को, जिन्होंने हुज़ूर महाराज को कभी देखा नहीं था, उनका स्वरूप अंतर में आ जाता था, जिसकी गवाही के लिए हुज़ूर महाराज का चित्र उन्हें दिखाना पड़ता था।

अनुभव का दान

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के जाने के बाद यह बात असंभव दिखाई देती थी कि कोई ऐसी हस्ती अब आयेगी, जो अध्यात्म की अनमोल निधि उसी प्रकार खुले दिल से लुटाएगी, जैसे जैसे हुज़ूर महाराज ने लुटाई थी। सत्संग में बैठकर कोई समर्थ पुरुष ही दावे के साथ यह बात कह सकता है, कि गुरु वह है, जो सामने बिठाकर अध्यात्म की पूँजी शिष्य को दे सके, अपनी तवज्जोह का उभार देकर आत्मा को स्थूल देह से ऊपर लाकर अंतर्मुख नाम से, ज्योति स्वरूप परमात्मा की ज्योति से,

श्रुति या नाद से— उसे कलमा कहो, Word कहो, बांगे—आसमानी कहो— जो घट—घट में हो रहा है— अथवा व्यक्त प्रभु—सत्ता से (ज्योति और श्रुति, जिसके प्रकट स्वरूप हैं), जो कण—कण में रम रही है, सबके बनाने वाली है और सबको लिए खड़ी है, उसके साथ हमें जोड़ दे। जो महापुरुष कबीर साहिब की इस कसौटी पर पूरा उतरता हो :

परदा दूरि करै आँखिन को, निज दरसन दिखलावे।
साधो सो सत्गुरु मोहि भावै।

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2 (शब्द 2, पृ.18)

हम आँख बंद करते हैं, तो अंतर में अंधेरा है। इस सियाही के पर्दे को हटाकर ज्योति का विकास करे, इंद्रियों के घाट से ऊपर लाकर हमें अपने आप की सूझत दे, निज—दर्शन या आत्म—दर्शन का अनुभव कराए कि हम देह नहीं आत्मा हैं, देहरूपी मकान नहीं, इस मकान के निवासी हैं, इसको चलाने वाले हैं। कहते हैं, ऐसा सत्गुरु मुझे प्रिय है। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी की दयामेहर के अनंत भंडार से आत्मानुभव की यह दिव्य देन आपने दोनों हाथों से और इस खुले दिल से लुटाई कि दूर—दूर से लोग उसे लेने को भागे चले आए। दिल्ली में, यू.पी. में, बंबई में, पंजाब में हरेक जगह बेहिसाब बख़्शिश का सिलसिला चला, तो जगह—जगह संगत इकट्ठी हो गई और नए—नए केंद्र खुलते चले गए। अनुभव की दात (देन) कितनी दरियादिली से लुटाई गई और अब भी लुटाई जा रही है, उसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि देहात में 80 से 90 प्रतिशत, वरन कई बार 99 प्रतिशत नामलेवाओं को अंतर में गुरु स्वरूप आया और शहरों में भी जहाँ लोग बुद्धि के ज़्यादा फैलाव में होते हैं, 30-40 प्रतिशत को गुरु स्वरूप के दर्शन मिलते हैं। ज्योति का अनुभव तो हरेक को होता है। पहली बार बिठाने पर न हो, तो उसी वक़्त दुबारा बिठा दिया जाता, कम से कम ज्योति का अनुभव हरेक दीक्षित को करा दिया जाता। उससे ऊपर चाँद, तारे, सूर्य की रोशनी के अनुभव की दात भी आम। नाद—श्रवण में घंटा, शंख, बादल की गरज और इससे ऊँची ध्वनियों का अनुभव दीक्षितों को मिलता। कइयों को अंतर में हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के अलावा बाबा जयमल सिंह जी, गुरु नानक साहिब, कबीर साहिब, स्वामी जी महाराज, ख़्वाजा हाफ़िज़ और दूसरे महापुरुषों के दर्शन भी होते।

शुरू–शुरू में 'नाम' का प्रचार किस तरह फैला और कैसे खुले हाथ से आत्मानुभव की निधि लुटाई गई और अब भी लुटाई जा रही है, उसके संबंध में हम बंबई और देवलाली की पहली यात्रा का वृत्तांत करते हैं, जिसमें सरदार गुरुबख़्शसिंह और अमोलक मस्ताना भी महाराज कृपाल सिंह जी के साथ थे। महाराज कृपाल सिंह जी पहले देवलाली गए और बाद में बंबई। हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के परमधाम सिधारने के बाद सत्संगीजनों में बड़ी दुविधा फैली हुई थी। बंबई वालों ने अपने आदमी देवलाली भेजे कि वहाँ जाकर रंग–ढंग देखो कि क्या सचमुच महाराज कृपाल सिंह जी श्री हुजूर महाराज का काम कर रहे हैं? देवलाली में जो कुछ हुआ वह सब उन्होंने देखा और वापस बंबई आकर रिपोर्ट दी कि अध्यात्म की निधि दोनों हाथों से लुटाई जा रही है। महाराज कृपाल सिंह जी देवलाली से बंबई पहुँचे, तो वरली नाका में रेडीमनी मैंशन (नक़्द सौदा भवन) में ठहरे। यह सात मंज़िल की बिल्डिंग भूतों की कोठी के नाम से भी मशहूर है। उस नाम का भी कोई कारण होगा, परंतु जो नाम बिल्डिंग की आधारशिला पर अंकित है, महाराज कृपाल सिंह जी ने अनुभव का नक़्द सौदा लोगों को देकर उस नाम को सार्थक कर दिया। महाराज जी के बंबई में शुभागमन से पहले सारे शहर में विज्ञापन बँटवा दिए गए थे कि एक आध्यात्मिक बैठक होगी, जिसमें हरेक व्यक्ति जो परमार्थ का व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त करना चाहता है, आकर शामिल हो सकता है। प्रभात के समय मिल–मज़दूर, दफ़्तरों में काम करने वाले मराठा क्लर्क, गुजराती, पारसी, सिंधी व्यापारी और अन्य लोग वहाँ आए। महाराज जी ने सबको भजन पर बिठा दिया और कहा कि जो जिसको मानता है, उसका ध्यान करे, अंतर्मुख दो नेत्रों के बीच निरत को टिकाए। महाराज जी भजन पर बैठे लोगों की पंक्तियों के बीच चलते हुए ऊँची आवाज़ में उन्हें आदेश देते जाते थे, "शरीर को हिलाओ मत, शरीर को भूलकर आँखें बन जाओ और अंतर अंधेरे को अंतर की आँख से, बड़े प्यार से, एक–टक देखते जाओ।" थोड़ी देर के बाद जब एक–एक से पूछा गया, तो देखने वाले हैरान रह गए। सबको अंतर्मुख अच्छा अनुभव हुआ। अपनी–अपनी बोली में सबने अंतर्मुख अनुभव की गवाही दी। कोई कहे, "मळा प्रकाश दिसला," कोई कहे, "मळा सूर्य दिसला" (मराठी भाषा में 'मुझे प्रकाश दिखाई दिया, मुझे सूर्य दिखाई दिया')। बाबा सोमनाथ

अनुवाद करके बताते जाते थे और हैरान हो रहे थे।

एक सेठ साहब ने अपने ड्राइवर को चाय पीने की छुट्टी दे दी और जाकर आप भजन पर बैठ गए। वह ड्राइवर भजन के बारे में महाराज जी के सारे आदेश सुनता रहा और फिर बीड़ी पीने बाहर चला गया। वापस आया, तो लोग आँखें बंद किए भजन में बैठे हुए थे। उसने सोचा, बाहर खड़ा क्या करूँगा, चलो मैं भी भजन पर बैठ जाऊँ। मुश्किल से दस मिनट वह भजन पर बैठा होगा। बाद में पूछा गया, तो उसने बताया कि अंतर में मुझे लाल रंग का सूर्य दिखाई दिया। यह है पूर्ण पुरुष की तवज्जोह का चमत्कार। स्मरण रहे कि भजन बैठने वालों में दो–चार सत्संगियों को छोड़कर सब नए आदमी थे, जिनको 'नाम' नहीं मिला था। परंतु महाराज जी की दया से सबको व्यक्तिगत अनुभव हुआ, विलक्षण अनुभव। उस वक़्त बहुत से पुराने भाइयों के मन में शंका पैदा हो गई। बाबा सोमनाथ को, जो बंबई में सत्संग करते थे, इस बात पर आपत्ति थी कि जिन लोगों को 'नाम' नहीं मिला, उन्हें इंद्रियों के घाट से उपर आने का दुर्लभ अनुभव कैसे हो सकता है? ख़ुद बाबा सोमनाथ जी को महाराज कृपाल सिंह जी की दया से पहली बार अंतर में हुज़ूर महाराज का स्वरूप आया, जिसका इकरार उन्होंने किया और कहा कि हुज़ूर ने अंतर में मुझे आज्ञा दी है कि मैं पुकार–पुकार कर दुहाई दूँ कि हुज़ूर महाराज कि दयाधारा महाराज कृपाल सिंह जी में काम कर रही है। सरदार गुरबख़्शसिंह जी ने बंबई में दयामेहर की यह भरपूर बरखा देखकर कहा कि जब नई दुकान खुलती है, तो मशहूरी के लिए इसी तरह मुफ़्त माल बाँटा जाता है, परंतु बाद में यह बात नहीं रहती। आज वह जीवित होते, तो देखते कि महाराज जी की दया से जैसे पहले लोगों को अनुभव की दात मिल रही थी, वैसे ही आज भी मिल रही है। उत्तर प्रदेश में उसमानपुर, बुलंदशहर, खुरजा, पीलीभीत, कानपुर, लखनऊ, आगरा, मेरठ, मथुरा और अन्य प्रांतों में, जहाँ भी महाराज जी गए, यही कहानी दुहराई गई।

पूरे गुरु की सामर्थ्य और संभाल की चमत्कारी घटनाएँ उन दिनों घटीं, जिनकी सुगंधि दूर–दूर फैली। यहाँ केवल दो घटनाएँ दी जा रही हैं। पीलीभीत का एक वृत्तांत है। प्रातः समय कुछ परमार्थाभिलाषी महाराज जी से बातचीत कर रहे थे। बालमीक डाकू की चर्चा चली कि उसका कैसे उद्धार

हुआ। वहाँ एक व्यक्ति बैठा हुआ था। उसने कहा कि क्या डाकुओं के उद्धार की आशा हो सकती है। महाराज जी ने फ़रमाया, "उसकी बख़्शिश (दया) का दरवाज़ा सबके लिए खुला है।" दूसरे दिन वह नामदान के उम्मीदवारों में आकर बैठ गया। उसे 'नाम' दे दिया गया और अंतर में उसे गुरु स्वरूप के दर्शन हुए। वह डाकू से महात्मा बन गया। उसने महाराज जी को बताया कि वह अमीरों को लूटकर माल ग़रीबों मुहताजों के घरों में फेंक आता था। अपने लिए उसे रोटी भी मुश्किल से मिलती थी।

'मैं सावनशाही हूँ'

पीलीभीत के समीप घने जंगल में एक प्रेमी, ठाकरसिंह के बुलाने पर इन्हें वहाँ जाना पड़ा। कई पुराने सत्संगीजन, जो डेरा ब्यास से प्यार रखते थे, उन्होंने गड़बड़ डालने की योजना बना रखी थी। अतः लोगों ने महाराज जी को वहाँ जाने से मना किया। परंतु आपने कहा कि मैं ठाकरसिंह को वचन दे चुका हूँ और रामायण की यह चौपाई पढ़ी :

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहुँ बरु बचनु न जाई।।

— रामचरितमानस (सुन्दरकांड 27.3)

और कहा, "जिसे प्राणों का भय है, वह न जाए। मैं तो ज़रूर जाऊँगा।" यह कहकर आप वहाँ चल दिए। आगे विरोधी दल के लोग खड़े थे। आपने उनसे कहा, "आगे चलकर रास्ता दिखाओ।" आवाज़ में कुछ दबदबा था कि वह कार के आगे चलकर रास्ता दिखाने लगे। काफ़ी दूर उन्हें भागना पड़ा। आगे गए, तो ठाकरसिंह ने लकड़ी के झोंपड़े पर फुलकारियाँ टाँककर सजावट कर रखी थी और हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की तस्वीर के आगे फूट–फूटकर रो रहा था कि हुज़ूर अगर सचमुच उसमें (महाराज कृपाल सिंह में) काम कर रहे हैं, तो वह ज़रूर आएगा। महाराज कृपाल सिंह जी वहाँ पहुँचे, तो शाम हो चुकी थी। बड़े प्यार से ठाकरसिंह से मिले, उसे दिलासा दिया। ठाकरसिंह और उसके परिवार के लोग कहने लगे, "वाक़ई, तू सावनशाह है।"

रात को दूर जंगल में एक जगह सत्संग था। वहाँ गए, तो आगे विरोधी भी आए हुए थे। वह डाकू भी, जिसे पीलीभीत में महाराज

कृपाल सिंह जी ने 'नाम' दिया था, वहाँ आया हुआ था। उसने कहा कि मुझे ख़बर मिली थी कि दुश्मन घात लगाए बैठे हैं और महाराज जी ख़तरे वाली जगह पर गए हुए हैं। महाराज जी ने पूछा, "रात के अंधेरे में इस घने जंगल में तुम कैसे पहुँच गए? कहने लगा कि हमारा तो रोज़ का काम है। हम रातों को जंगल ही तो छानते फिरते हैं। जंगल में ट्रैक्टरों से बिजली लेकर उसकी रोशनी में सत्संग हुआ। महाराज जी ने कहा, "मैं न हिंदू, न मुसलमान, न सिक्ख, न ईसाई, न मैं राधास्वामी हूँ, मैं सावनशाही हूँ। मेरी बात जिसने सुननी हो सुने, न सुननी हो न सुने।" यह कहकर सत्संग जो किया, तो सबको प्रभु–प्रेम के रंग में रंग दिया और विरोधी भी इनके प्रेमी बन गए।

सत्गुरु राखा है

पूरे सत्गुरु की संभाल के सिलसिले में एक घटना बुलंदशहर के एक छोटे से गाँव सैदमपुर की है। वहाँ एक सत्संगी, ठाकुर नाहर सिंह रहता था। उसने खेत में तरबूज़ बो रखे थे। फ़सल पक चुकी थी, सिर्फ़ तोड़ना बाक़ी था। अगले दिन तरबूज़ तोड़ने थे। फ़सल पक जाए, तो किसान रात भर बैठकर उसकी रखवाली करता है, लेकिन उसने कहा कि खेत गुरु का है, वह आप देख लेगा। यह कहकर घर आ गया। रात को चोर आए और तरबूज़ उन्होंने तोड़ लिए। उठाकर चलने को थे कि पाँच सरदार, डंडे हाथ में लिए, जाने कहाँ से निकल आए और चोरों– वे भी पाँच थे– बेतहाशा पीटना शुरू कर दिया। एक–एक चोर के पीछे एक–एक सरदार था। चोरों को दहशत इस बात पर हुई कि पाँचों सरदार एक ही शक्ल के थे। चोर तोड़े हुए तरबूज़ छोड़कर भाग गए। लेकिन दहशत ने उनका पीछा न छोड़ा। दूसरे दिन मालिक खेत में आया और देखा कि तरबूज़ कटे पड़े हैं, लेकिन कोई उठाकर नहीं ले गया, वहीं पड़े हैं। उधर यह हुआ कि चोर घर जाकर बीमार पड़ गए। बहुत इलाज किया, बुख़ार नहीं टूटा। तब उनके मन में आया कि कोई दैवी शक्ति उन्हें दंड दे रही है और जब तक वह अपना अपराध स्वीकार करके क्षमा नहीं माँगेंगे, जान नहीं छूटेगी। अतः ठाकुर नाहर सिंह के पास आए और कहने लगे, "तरबूज़ तुम्हारे हमने तोड़े थे, हमें मुआफ़ कर दो।" उसने कहा, "जाओ, मैंने तुम्हें मुआफ़ किया।" चोरों ने पूछा कि वे सरदार कौन थे, जिन्होंने डंडों से हमें मारा और वह एक के पाँच कैसे

हो गए? उसने महाराज कृपाल सिंह जी की फ़ोटो उन्हें दिखाई, तो चोरों ने पहचान लिया कि यही शक्ल थी सरदारों की। ठाकुर नाहरसिंह ने उन्हें बताया कि यह हमारे गुरु संत कृपाल सिंह जी महाराज हैं। चोरों ने विनती की कि हमें भी इन समर्थ महापुरुष के चरणों में ले चलो। उन्होंने महाराज कृपाल सिंह जी का उस गाँव में सत्संग का प्रोग्राम बनवाया। महाराज जी वहाँ पहुँचे, तो देखा बाजे–गाजे और ढोल–ढमक्के से लैस एक–एक बहुत बड़ा जलूस स्वागत के लिए चला आ रहा है। कहने लगे, "यह क्या तमाशा है, भई?" मालूम हुआ कि आस–पास ग्रामों के लोग समर्थ सत्गुरु के स्वागत के लिए दल बाँधे चले आ रहे हैं। वहाँ बहुत लोगों ने 'नाम' लिया और वहाँ गाँव के गाँव सत्संगी हैं।

तो इस प्रकार सत्संग और 'नाम' का प्रचार फैला। भारत तो भारत, अमरीका में भी इस तेज़ी से प्रचार फैला कि कोई मिसाल नहीं मिलती। वहाँ 'नाम' के अभिलाषी को पहले अर्ज़ी देनी पड़ती है। महाराज कृपाल सिंह जी के प्रतिनिधि वह अर्ज़ी दिल्ली भेज देते। इससे पहले इस बात की पूरी जाँच कर ली जाती थी कि अर्ज़ी देने वाले ने सब नशों का और माँस, मछली, अंडों का सेवन त्याग दिया है। नामदान की विधि यह थी कि जिसमें दिल्ली से मंज़ूरी मिलने पर महाराज जी का प्रतिनिधि हरेक प्रार्थी को बुलाकर नाम दिए जाता और नामदान के संबंध में महाराज जी की ओर से आवश्यक आदेश देकर प्रार्थी को गुरु के समर्पण कर भजन पर बिठा देता। महाराज जी की तवज्जोह की आध्यात्मिक धारा के प्रताप से प्रार्थी की आत्मा स्थूल देह से ऊपर उठकर ज्योति और श्रुति का अनुभव करती। गुरु का ध्यान न बताने के बावजूद 30-40 प्रतिशत दीक्षितों को पहली बार बैठने पर ही गुरु स्वरूप तक आ जाता था और बाक़ी सबको नाद और प्रकाश का अनुभव होता था।

सावन आश्रम की स्थापना

पूरे दो साल की कोशिश के बाद सत्संग घर बनाने के लिए गुड़मंडी में रेलवे के पुल के पास, नाले के किनारे, दो एकड़ भूमि मिली। यह जगह उस समय बिल्कुल उजाड़ थी। आस–पास पुराने बाग़ थे और आगे जंगल था। नाले के पार शक्ति नगर का इलाक़ा अभी आबाद नहीं हुआ था। कहीं

कोई इक्का–दुक्का मकान नज़र आता था। नाले के उस पार तो दूर–दूर तक आबादी का नामोनिशान नहीं था। प्रताप बाग़, डेसू कॉलोनी आदि बस्तियाँ बाद में बनीं। जहाँ सावन आश्रम बना है, वहाँ मात्र दो कच्चे झोंपड़े थे, जिन पर छत नहीं पड़ी थी। कहते हैं, यहाँ चोर रात को चोरी के माल का बँटवारा करते थे। झोंपड़ों के पास एक कुआँ था, जो अब तक है और लोग दूर–दूर से आकर उसका मीठा और पाचक पानी पीते हैं।

9 जून, 1951 ई. को भूमि की रजिस्ट्री हुई और 21 जून को सत्संगघर बनाने का काम शुरू कर दिया गया। काम शुरू करने से पहले सत्संग हुआ। 3-4 बजे थे दोपहर के। आसमान बिल्कुल साफ़ था और तेज़ धूप पड़ रही थी। बादल का निशान तक न था। सहसा मोटी–मोटी बूँदें पड़नी शुरू हो गईं। महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा, "यह हुजूर (बाबा सावन सिंह जी) ने अपनी दयामेहर की निशानी दी है। अब सारे काम निर्विघ्न पूरे होंगे। आश्रम की भूमि बहुत ऊँची–नीची थी। उसे बराबर करने के लिए ठेकेदार डेढ़ हज़ार रुपए माँगता था। सत्संगीजनों ने कहा, "हम किसलिए हैं?" उसी वक़्त कुदालें, फावड़े और टोकरे मँगाए गए और संगत काम में जुट गई। दफ़्तरों के बाबू, वकील, थानेदार, सरकारी कर्मचारी और उनकी औरतें व बच्चे, सभी काम पर लग गए और एक सप्ताह में सारी भूमि बराबर कर दी तथा चारों ओर चार फुट गहरी दो फुट चौड़ी नाली खोदकर उसमें खाद भरवाकर पेड़ लगाने के लिए जगह तैयार कर दी गई। सत्संग के लिए खुला मैदान बीच में छोड़ दिया गया, जिसके दोनों ओर पेड़ लगा दिए गए। दाईं ओर लंबा शैड बनाया गया, जो खजूर के तनों पर खड़ा किया गया। पीछे, जहाँ आजकल प्रताप बाग़ की बस्ती है, वहाँ जंगल पड़ता था, जिसमें खजूर के पेड़ों के सूखे टुंड खड़े थे। संगत उन्हें उखाड़कर कंधों पर उठाकर लाती थी। बाईं ओर निवास के लिए कोठरियाँ बननी शुरू हो गईं। यह सारे काम एक साथ शुरू कर दिए गए। फ़सल काटने का मौसम था, इसलिए गाँवों से लोग नहीं आ सके। अतः सावन आश्रम के निर्माण का सारा काम दिल्ली के बाबू क्लास के लोगों और उनकी औरतों व बच्चों ने किया।

सेवा का अनुपम दृश्य

सावन–आश्रम के निर्माण में जिस उत्साह और लगन से सेवा कार्य हुआ, वह कहने–सुनने से परे की चीज़ है। जिसने वह अनुपम दृश्य आँखों से देखा है, वही जानते हैं। छोटे–छोटे बच्चे सुबह से शाम तक रोड़ी कूटते और ईंटे ढोते थे। सुबह छः–सात बजे से काम शुरू हो जाता और देर गए रात तक चलता रहता। दफ़्तर और दुकान वाले सुबह तीन–चार घंटे ड्यूटी देकर वहीं से साइकलों या बसों पर सवार होकर अपने–अपने काम पर चले जाते। वहाँ से शाम को वापस आकर आधी–आधी रात तक आश्रम का काम करते। कॉलेजों में पढ़ने वाली लड़कियाँ सिर पर मेंढी रखकर एक समय में बीस–बीस पच्चीस–पच्चीस ईंटें उठाकर ले जाती थीं। इसी प्रकार दफ़्तरों के बाबू भी जान तोड़कर काम करते थे। पेशेवर मज़दूर देखकर हैरान थे कि दफ़्तरों के बाबू लोगों और स्कूल–कॉलेजों की लड़कियों मे यह हिम्मत और ताक़त कहाँ से आई? स्त्रियाँ सुबह से शाम तक बैठी रोड़ी कूटा करतीं। समय थोड़ा था, काम बहुत था। 27 जुलाई का समारोह सिर पर था। उससे पहले–पहले अर्थात डेढ़ महीने में सारा काम पूरा करना था। जिस शौक़ और लगन से काम हो रहा था, वह कुछ ऐसी चीज़ थी, जो वर्णन नहीं हो सकती। महाराज कृपाल सिंह जी ने ख़ुद मिट्टी के टोकरे सिर पर उठाए। संगत के मना करने पर भी वे रुके नहीं। सारे मंडल में एक नशा–सा सुबह से शाम तक छाया रहता था, जिसमें काम करने वालों को थकान या उकताहट महसूस नहीं होती थी। महाराज जी सुबह और शाम सेवादारों को अपने हाथों से गुड़–चने बाँटा करते थे। दोपहर को पौन घंटे की छुट्टी की जाती और रेलवे लाइन के पास पेड़ों की छाया में संगत को एक जगह बिठाकर रोटी खिलाते थे। महाराज जी अपने हाथों से रोटियाँ बाँटते और ताई जी (बीबी हरदेवी) दाल देती जातीं। रोटी खाकर कूँए का ठंडा पानी पीकर मर्द, औरतें और बच्चे ताज़ादम होकर फिर काम पर लग जाते। इस स्थान पर साँप बहुत थे। दो सेवादारों को साँप ने काट खाया। आश्रम बनने के बाद भी साँप बहुत थे और कइयों को उन्होंने काटा। सेवादारों में से जिन्हें साँप ने काटा, उन्हें केवल मिट्टी मल दी गई, जिससे वह शीघ्र ठीक होकर दुबारा काम पर लग गए। हुज़ूर महाराज की ऐसी बरक़त थी कि सरकारी बारकों की नीलामी में डेढ़–दो हज़ार रुपये में असंख्य ईंटें, शैड के लिए सीमेंट की चादरें, लकड़ी और दूसरा बहुत–सा सामान मिल

गया, जिससे पूरा शैड पक्का हो गया और उस पर सीमेंट की चादरों की छत भी पड़ गई। शैड बनाने के बाद आश्रम के लिए भी हज़ारों ईंटें बची रहीं। आश्रम के निर्माण के चलचित्र भी लिए गए, परंतु सेवा की वह लगन, वह नशा जिसमें हरेक सेवादार सहस्त्रबाहू बनकर हज़ारों हाथों की शक्ति से काम करता था, उस अवस्था को न तो शब्दों में वर्णन किया जा सकता है, न उसका चित्र ही खींचा जा सकता है।

सावन आश्रम की साँझी भूमि

26 जुलाई, 1951 ई. को अर्थात हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महा. राज के जन्मदिवस के भंडारे से एक दिन पहले, सावन आश्रम का निर्माण कार्य पूरा हो चुका था। बीच में साफ़, समतल मैदान था, सत्संग के लिए, जिसके एक ओर ईंटों का पक्का मंच बनाया गया था। दाईं ओर 120 फुट लंबा और 40 फुट चौड़ा, सीमेंट की चादरों से छता हुआ विशाल शैड था कि तेज़ धूप या वर्षा हो, तो वहाँ सत्संग कर लिया जाए। आगे कुआँ था, जहाँ हथगेड़ी को घुमाकर पानी टंकी में भरा जाता था। बाईं ओर रहने के लिए 17-18 पक्की कोठरियों की एक लंबी लाईन चली गई थी। यह सारा निर्माण–कार्य डेढ़ महीने में पूरा हुआ। यह सावन आश्रम की सबसे पहली तस्वीर थी। रूहानी सत्संग सावन आश्रम के उद्देश्य और लक्ष्य पर प्रकाश डालते हुए महाराज कृपाल सिंह जी ने कहा कि यह जगह एक 'Common Ground' अर्थात साँझी भूमि है, जहाँ हरेक समाज के भाई आ सकते हैं। यह सुझाव हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का था और 'रूहानी सत्संग' नाम भी उन्हीं का तज़वीज़ किया हुआ है। उन्होंने फ़रमाया था, "कृपाल सिंह! कोई ऐसी Common Ground (साँझी भूमि) बनाओ जहाँ सब समाजों के भाई आपस में मिल बैठें और रूहानियत (आत्म–ज्ञान) की उस शिक्षा को ग्रहण करें, जो सब धर्मों और समाजों की मूलभूत शिक्षा है। वहाँ किसी एक या दूसरी शरीयत (बाहरी रीति–रिवाज़ और चिह्न–चक्र) की कोई रंगत न हो। सब अपनी–अपनी समाजों में रहें, अपने–अपने बोले अर्थात सम्मान–सूचक वाक्य (नमस्ते, राम–राम, वाहेगुरु आदि) रखें। उस लक्ष्य को पाएँ, जिसके लिए वे एक या दूसरी समाज में प्रवेश पाए हुए हैं। उस संस्था का नाम कुछ रख लो– उसे रूहानी कॉलेज कह लो, स्कूल

कह लो, रूहानी सत्संग कह लो।"

रूहानी सत्संग क्या है?

महाराज जी ने कहा, "हुज़ूर महाराज की आज्ञानुसार यह साँझी भूमि बनाई गई है, जिसमें सब समाजों के भाई आ सकते हैं। यहाँ किसी एक या दूसरी समाज का धर्मस्थान–मंदिर, मस्जिद या गुरुद्वारा नहीं है। नीचे धरती है, ऊपर आसमान है। यह सारी दुनिया ही उस प्रभु का घर है।

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰463)

कौन–सी जगह है, जहाँ वह नहीं है? जहाँ भी भाव–भक्ति से सीस निवाओ वह जगह धर्मस्थान है। 'All is holy where devotion kneels,' और सच्चा हरिमंदिर यह शरीर है, जो हम लिए फिरते हैं।

इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचै की विचि जोति।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म॰4, पृ॰309)

'Body is the Temple of God.' तो यह एक Common Ground अर्थात साँझी भूमि है। दुनिया में शायद अपने ढंग की यह एक ही जगह है, जहाँ सब समाजों के भाई आ सकते हैं और रूहानियत (आत्म–ज्ञान) की उस तालीम को हासिल कर सकते हैं, जो सब समाजों की मूलभूत शिक्षा है।"

महाराज कृपाल सिंह जी ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि रूहानी सत्संग, सावन आश्रम एक पब्लिक ट्रस्ट है, जिसमें उनका या उनकी संतान का या ट्रस्ट के डायरेक्टरों का किसी प्रकार का निजी स्वार्थ नहीं है और इसके विधान और नियमों में एक नई बात यह रखी गई है कि महाराज कृपाल सिंह जी के बाद अगर कोई ऐसा पुरुष प्रभु ने न भेजा, जो रूहानियत अर्थात आत्म–ज्ञान का व्यक्तिगत अनुभव लोगों को दे सके अर्थात उस काम को ज़ारी रख सके, जो आजकल हो रहा है, तो फिर इस ट्रस्ट का सारा साज–सामान, रुपया–पैसा और जायदाद उस सभा, समाज या संस्था को सौंप दी जाए, जहाँ यह काम (रूहानियत का काम) हो रहा हो।

आत्म-ज्ञान का नया केंद्र

सावन आश्रम की स्थापना के साथ आत्म–ज्ञान की शिक्षा–दीक्षा का एक नया केंद्र स्थापित हो गया, जहाँ दूर–दूर से लोग खिंचे चले आने लगे। उस वक़्त तक भारत के कई भागों में रूहानी सत्संग की शाखाएँ खुल चुकी थीं और भारत के बाहर अमरीका और ब्रिटेन में भी प्रचार का दायरा विस्तृत होता जा रहा था। सावन आश्रम दिल्ली की स्थापना से भारत में केंद्रीय कार्यालय स्थापित हो गया। प्रचार इस तेज़ी से फैला कि देखते ही देखते हुज़ूर बाबा सावानसिंह जी महाराज की शिक्षा और उनके दिव्य वरदान का सिलसिला पूर्व से पश्चिम तक सारी दुनिया में फैल गया। हुज़ूर महाराज की भविष्यवाणी[37] के अनुसार आत्म–ज्ञान का नया केंद्र ब्यास से ढाई–तीन सौ मील दूर क़ायम हुआ।

हुज़ूर महाराज अपनी बीमारी के दिनों में फ़रमाया करते थे, "मैं किसी जगह से बँधा नहीं, न यह रूहानियत की दौलत किसी जगह से बँधी हुई है। दीवा जहाँ जगेगा, परवाने आप खिंचे चले आयेंगे।" इस संदर्भ में हुज़ूर महाराज दशम गुरु (श्री गुरु गोबिंदसिंह साहिब) के वचनों का प्रमाण देकर फ़रमाते थे कि संतों के जाने के बाद रूहानियत की दौलत किसी दूसरी जगह चली जाती है, परंतु लकीर के फ़क़ीर वहीं पुरानी जगह पर मिट्टी खोदते रहते हैं कि सब कुछ यहीं हैं, जबकि रूहानियत का दीपक दूसरी जगह पर परमार्थाभिलाषियों को जीवन और ज्योति प्रदान करता रहता है। फिर जब वहाँ से भी रूहानियत किनारा कर जाती है, तो वहाँ भी जगह से बँधे हुए लोग मिट्टी खोदते रहते हैं। जहाँ दीवा जलता है, वहाँ नहीं जाते। हुज़ूर महाराज ने इस बारे में परमार्थाभिलाषियों के लिए एक कसौटी प्रस्. तुत की कि, "एक बल्ब फ़्यूज हो गया, दूसरा लग गया, दूसरा फ़्यूज हो गया तीसरा लग गया, रोशनी तो वही है। हम तो रोशनी के पुजारी हैं।" हुज़ूर के इस साफ़ और स्पष्ट आदेश के बावजूद कई भाई भूल में रहे। सच्चे परमार्थाभिलाषी तो शीघ्र ही इस भूल से निकल गए। रूहानी सत्संग के प्रचार का दायरा जैसे–जैसे बढ़ता और फैलता गया और दयादान का सिलसिला सर्व सुलभ होने लगा, तो घराने और ठिकाने से बँधे हुए लोग भी भारी संख्या में रूहानियत के नए केंद्र की ओर आकृष्ट होने लगे।

सावन आश्रम की स्थापना के कोई तीन महीने बाद महाराज कृपाल सिंह जी ने बाबू गोकलसिंह जी को सरदार बहादुर के नाम एक

चिट्ठी भेजी कि वह सरदार बहादुर जी को दस्ती दे दें। उस चिट्ठी में लिखा था कि आप ज़्यादा बीमार हैं। हम हुज़ूर के चरणों में इकट्ठे काम करते रहे हैं। मैं चाहता था कि आकर आपकी सेवा करूँ, मगर हालात कुछ ऐसे बन गए हैं कि मैं आ नहीं सकता। मेरी ताक़ीद है कि जाने से पहले, जो भूल संगत में हो रही है, उसको आप साफ़ करते जाएँ। चिट्ठी में साफ़ इशारा था कि सरदार बहादुर अब चंद रोज़ के मेहमान हैं। बाबू गोकलसिंह जी ने वह चिट्ठी सरदार बहादुर को दी। चिट्ठी पढ़कर कहने लगे, "कहाँ का नजूमी आ गया। मैंने कोई नहीं मरना।" बाबू गोकलसिंह जी वापस आ गए। इसके बाद आख़िरी दिन, जिस रोज़ उनकी मृत्यु हुई, डॉक्टर बलवंतसिंह ने सरदार बहादुर से कहा, "आपकी हालत बहुत नाजुक है।" परंतु सरदार बहादुर इसी घमंड में थे कि वह अभी ज़िंदा रहेंगे। कहने लगे, "मैं ठीक हूँ।" उसी रोज़ अर्थात 22 अक्तूबर को, डेरा ब्यास में उनका देहांत हो गया।

सावन आश्रम में शुरू के दिन

पहले वर्णन आ चुका है कि सावन आश्रम के आस–पास दूर तक कोई आबादी नहीं थी। अतः रात को पहरा देना पड़ता था। नाला उन दिनों बहुत छोटा था, जिस पर लकड़ी का एक कामचलाऊ पुल सेवादारों ने बना रखा था। सत्संग के लिए अलबत्ता पहली तमाम जगहों से ज़्यादा खुली जगह थी, क्योंकि शैड और उसके सामने 18 कोठरियों की समानांतर पंक्ति के अतिरिक्त कोई भवन तब नहीं बना था। विदेशी अतिथियों के लिए दो मंज़िला अतिथि–ग्रह और दूसरे मकान बाद में बने। महाराज कृपाल सिंह जी नाले के पास एक छोटी कोठरी में गुज़ारा करते थे। गंदे नाले की सड़ांद के अलावा मच्छरों की भरमार थी। महाराज जी ने कभी मसहरी नहीं लगाई और बरसों मच्छरों से भरी जगह में खुले मैदान में सोते रहे। साँप भी वहाँ बहुत थे।

सत्संग में साँप

साँप के संबंध में एक घटना, जिसका महाराज जी अपने सत्संगों में अक्सर ज़िक्र करते थे, उल्लेखनीय है। एक समय शैड में सत्संग हो रहा था, तो एक छोटा फनियल साँप, फन फैलाए कुंडली मारकर सत्संग में

सबसे आगे आकर बैठ गया। लोगों ने कहा, साँप है और शोर मचा दिया। महाराज जी ने कहा, "कोई डर नहीं। इसे भी सत्संग सुनने दो।" सवा घंटे सत्संग हुआ और साँप चुपचाप बैठा सुनता रहा। सत्संग समाप्त हुआ, तो साँप सिर नीचा किए तख़्त के नीचे से होकर निकल गया। लोगों ने साँप को मारना चाहा, परंतु महाराज जी ने मना कर दिया कि जब उसने तुम्हें कुछ नहीं कहा, तो तुम उसे क्यों मारते हो?

पीपल का पेड़ गिरने की दुर्घटना

आश्रम के शुरू के दिनों की बात है। पीछे जहाँ बड़ी गैरेज है, वहाँ एक बहुत बड़ा पीपल का पेड़ था। उसकी कटाई हो रही थी। पीपल के पेड़ की अपनी जड़ें नहीं होतीं, आस–पास की जड़ों के सहारे वह खड़ा रहता है। इसलिए उसकी कटाई में विशेष सावधानी और सतर्कता चाहिए अन्यथा वह एकाध की बलि ले लेता है, क्योंकि काटने वाले आस–पास की जड़ें काटने के बाद यह समझते हैं कि अब तने की जड़ें काटेंगे, जबकि तने की जड़ें होती ही नहीं। अतः महाराज जी ने सेवादारों को चेतावनी दे दी थी कि वह एक ओर की जड़ें काटें, सारी जड़ें न काटें। परंतु सेवादारों ने दोनों ओर की जड़ें काट दीं, जिससे पेड़ अचानक टूटकर गिर पड़ा। रोशन चिराग़ सुरमा वालों का 13-14 वर्षीय पुत्र रमेश, जो वहाँ खेल रहा था, पेड़ उसके सिर पर गिरा और वह बुरी तरह पिचक गया। महाराज जी अपने कमरे में चाय पीने को थे, आवाज़ सुनते ही बाहर भागे और सीधे पेड़ के पास पहुँचे। पेड़ का तना उठना संभव नहीं था, नीचे से ज़मीन खोदकर लड़के को निकाला। महाराज जी ने हाथों से दबाकर सिर ठीक किया, झोली में उठाकर कार में डाला और अस्पताल ले गए। उसके बचने की कोई आशा नहीं थी, पर समर्थ सत्गुरु के लिए कोई बात असंभव नहीं। अस्पताल वालों ने कहा कि टाँके लगेंगे, पूरी खोपड़ी सीनी पड़ेगी। महाराज जी ने कहा, "कोई चिंता नहीं।" संयोग से अस्पताल में क्लोरोफ़ॉर्म उस समय न मिली। महाराज जी ने कहा, कोई डर नहीं। क्लोरोफ़ार्म सुँघाए बिना खोपड़ी सी दो। रमेश से कहा, "तुम मेरी तरफ़ देखते रहो।" रमेश टकटकी बाँधे महाराज जी को देखता रहा। उनकी तवज्जोह के प्रभाव से रमेश को ज़रा भी पीड़ा नहीं हुई। अस्पताल वालों ने बिना क्लोरोफ़ार्म सुँघाए पूरी खोपड़ी

सीकर रख दी और रमेश ने उफ़ तक नहीं की। पट्टी करवाकर वापस आए, तो रमेश की माता को ख़बर भिजवाई। वह आई, तो महाराज जी ने उसे बताया और कहा, "तेरा बेटा सुरक्षित है, घबराना नहीं।" थोड़े दिनों बाद महाराज जी की दया से रमेश बिल्कुल ठीक हो गया।

परमार्थाभिलाषियों की रेल-पेल

सावन आश्रम बनने के बाद 27 जुलाई, 1951 ई. के भंडारे पर इतनी भीड़ थी कि नाले तक इंसानी सिरों का समुद्र लहराता दिखाई देता था। दूर–दूर से लोग इस शुभावसर पर आए हुए थे। तत्पश्चात हर साल अप्रैल और जुलाई के दो समारोहों और 6 फ़रवरी को महाराज कृपाल सिंह जी के जन्मोत्सव पर भीड़ बढ़ती चली गई और लंगर में भोजन पाने वालों की पंक्तियों का लगभग वही नक़्शा नज़र आने लगा, जो डेरा ब्यास में हुज़ूर महाराज के समय में दिखाई देता था। हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की ताक़त, जो देह स्वरूप में साक्षात प्रकट होकर परमार्थाभिलाषियों को रेडियो कॉलोनी में महाराज कृपाल सिंह जी के छोटे से मकान का पता बताती थी, साथ में यह भी ताक़ीद करती थी कि यह महात्मा डायरी भी रखवाता है, उस ताक़त के दिव्य वरदान का क्षेत्र विस्तृत होता गया और जीवन की सभी दिशाओं को उसने प्रभावित करना शुरू कर दिया। अतः सावन आश्रम में परमार्थाभिलाषियों के अतिरिक्त विभिन्न सेवा–समाजों के कार्यकर्ता, धर्मगुरु और राजनैतिक कार्यकर्ता व नेतागण भी आने लगे और संयुक्त मंच की जीती–जागती तस्वीर उभरने लगी, जो बाद में 'World Fellowship of Religions' ('विश्व सर्वधर्म सम्मेलन') के अंतर्राष्ट्रीय मंच पर विश्व के सारे धर्मों को एक करने का कारण बनी।

1951 से 1955 ई. तक चार वर्ष में उस सारे काम के बीज बोए, जो बाद में प्रकट हुआ। सावन–आश्रम में आने वाले राजनीतिज्ञों में पं. जवाहरलाल नेहरू के निजी सेक्रेटरी, श्री उपाध्याय, सरदार उद्धमसिंह

---

28. महाराज कृपाल सिंह जी की प्रथम विश्व यात्रा की घटना है। आप पहलक व्यक्ति थे, जो रूसी सेनाओं से घिरे बर्लिन नगर में गए। वहाँ सत्संग किया। दुभाषिया साथ में जर्मन भाषा में अनुवाद करता जाता था। थोड़ी देर बाद श्रोतागण, जो एकाग्रचित्त सुन रहे थे, कहने लगे, "दुभाषिए को हटा दो। वह ग़लत अनुवाद कर रहा है। हम इनकी आँखों से ज़्यादा सही समझ रहे हैं।"

नागोके, पटियाला के प्रधानमंत्री कर्नल रघुबीरसिंह, धर्मगुरुओं में वयोवृद्ध योगी श्री राघवाचार्य, मुनि सुशीलकुमार, स्वामी गंगेश्वरानंद, श्री सर्वज्ञ मुनि, स्वामी प्रेमानंद, स्वामी वेदव्यासानंद, स्वामी सारशब्दानंद, श्री हरि ओम, मौलाना अहमद सईद, पादरी अब्दुलहक़, ज़रतुश्त समाज के श्री दस्तूर, महात्मा आनंद स्वामी सरस्वती, पीर ज़ामीन निज़ामी, संत सुंदरसिंह आदि और समाज सेवकों में महात्मा गाँधी के पुराने साथी श्री धर्मदेव शास्त्री शामिल हैं। महाराज कृपाल सिंह जी को विभिन्न समाजों की ओर से निमंत्रण आने लगे और विभिन्न समाजों के जागृत पुरुषों का मेलजोल, जो 'अध्यात्म मित्र मंडल' की स्थापना के साथ शुरू हुआ था, विस्तृत होता चला गया। धर्मगुरुओं के अलावा सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वाले लोग भी विचार–विमर्श और परामर्श के लिए सावन आश्रम के संस्थापक के पास आने लगे। इस संदर्भ में दिल्ली में दूसरी 'Pacific Conference' अर्थात विश्व के शांतिप्रिय लोगों का द्वितीय सम्मेलन उल्लेखनीय है।

कोरियन सदस्य का अनुपम अनुभव

पहली पेसिफ़िक कॉन्फ्रेंस का वर्णन पहले आ चुका है, जिसके सदस्यों का स्वागत 35 राजपुर रोड, दिल्ली में किया गया था। दूसरी कॉन्फ्रे़ंस के अवसर पर 'Society for the Upliftment of Mankind' ('मानव कल्याण सभा') की ओर से सप्रू हाऊस में महाराज कृपाल सिंह जी के भाषण का प्रोग्राम आयोजित किया गया, जिसमें पेसिफ़िक कॉन्फ्रे़ंस के सदस्यों को विशेष निमंत्रण भेजा गया था। कान्फ्रे़ंस के सदस्यों में दक्षिण कोरिया का प्रतिनिधि, किम इर भी था। महाराज कृपाल सिंह जी के भाषण का उस पर गहरा प्रभाव पड़ा और उसने सावन आश्रम आकर महाराज जी से 'नाम' ले लिया। महाराज जी की दया से उसे अंतर में अनुभव खुला, तो आश्रम के पेड़ों से लिपटकर कहने लगा कि मुझे इस पवित्र स्थान के कण–कण से प्रेम है। सावन आश्रम की पवित्र मिट्टी को उसने माथे पर लगाया और थोड़ी मिट्टी रूमाल में बाँधकर अपने साथ कोरिया ले गया। आश्रम में भाषण करते हुए उसने कहा कि जब दक्षिण कोरिया सरकार की ओर से इस कान्फ्रे़ंस के लिए मेरा नाम चुना गया, तो मैंने अस्वस्थता के कारण इंकार कर दिया। परंतु कोई दूसरा आदमी उस वक़्त उपलब्ध नहीं था, इसलिए मुझे आना

पड़ा। उस समय मुझे मालूम नहीं था कि विधना किस अनमोल निधि को प्राप्त करने के लिए मुझे भेज रही है। पहला चमत्कार तो यह हुआ कि यहाँ पहुँचते ही मेरे सब रोग दूर हो गए। विज्ञापन पढ़कर मैं यहाँ चला आया और महाराज कृपाल सिंह जी के चरणों में आकर वह अनमोल निधि मुझे मिली, जिसकी मुझे सारी उम्र तलाश रही।

विरोधियों पर दयामेहर की बरखा

एक ओर परमार्थाभिलाषी आत्म–ज्ञान की अनमोल निधि प्राप्त करने के लिए दूर–दूर से सावन आश्रम चले आ रहे थे, तो दूसरी ओर विरोधियों के गुरगे उस ज्योति को बुझाना चाहते थे, जिससे दुनिया को रोशनी मिल रही थी। अमृतसर की बात है। महाराज कृपाल सिंह जी का एक हक़ीम साहब के मकान पर सत्संग था। चाटीविंड गाँव के पाँच आदमी, जो किरपानों से लैस थे, सत्संग में आ गए। महाराज कृपाल सिंह जी ने बड़े प्रेम से उन्हें बिठाया कि आओ भई, मुद्दतों के बाद मिले हो। वह महाराज जी को मारने की नियत से आए थे। सत्संग के बाद महाराज जी अपने निवास–स्थान पर पहुँचे, तो वे लोग भी वहाँ आ गए और कहने लगे कि हम आपकी हत्या के इरादे से आए थे, परंतु सत्संग सुनकर हमारा ख़्याल बदल गया है। अब दया करके हमें भजन पर बिठा दीजिए। महाराज कृपाल सिंह जी ने उन्हें वहीं भजन पर बिठा दिया और सबको अंतर्मुख ज्योति का अनुभव हुआ।

लेखन व प्रकाशन कार्य

हुज़ूर महाराज के परमधाम सिधारने के बाद सबसे पहली पुस्तक महाराज कृपाल सिंह जी द्वारा लिखित "हुज़ूर महाराज का संक्षिप्त जीवन चरित्र" था, जो 1949 ई. में उर्दू, गुरुमुखी और अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुआ। इसके बाद अमरीकन सत्संगियों को भेजी गई महाराज कृपाल सिंह जी की एक talk (भाषण) पर आधारित एक पुस्तिका, 'Man! Know Thyself' (ओ इंसान, अपने आपको जान) छापी गई। 32 पृष्ठ की यह पुस्तिका भारत और अमरीका दोनों जगह छपी। इसके साथ ही श्री भद्रसेन द्वारा लिखित 32 पृष्ठ की पुस्तिका, 'Message of the Great Master and

His Ashram' छापी गई। यह शुरू–शुरू का लेखन कार्य था, जो बाद में अंग्रेज़ी भाषा के अलावा संसार की अनेकों भाषाओं में दर्जनों पुस्तकों के प्रकाशन के रूप में प्रकट हुआ।

सत्संगवार्ता समाचार पत्रों में

शुरू में टेपरिकॉर्ड उपलब्ध नहीं थे, इसलिए सत्संग–वचन वहीं सत्संग में बैठकर लिखे जाते थे। दो–ढाई घंटे का सत्संग, जिसमें दुनिया भर के धर्मग्रंथों के उद्धरण– अंग्रेज़ी, हिंदी, फ़ारसी और पंजाबी आदि भाषाओं में होते थे, परंतु गुरु–सत्ता के वरदान से वह सत्संग शॉर्टहैंड के बग़ैर भी सही और साफ़ नोट किए गए, जो बाद में कई सप्ताह तक 'दैनिक मिलाप' के Sunday Edition में लगातार छपते रहे। तीन–चार महीनों तक महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–वचनों के प्रकाशन का सिलसिला इस अख़बार में चला और इतना लोकप्रिय हुआ कि संपादक को जगह–जगह से धन्यवाद और कृतज्ञता भरे पत्र आने लगे। उसके साथ ही कुछ कट्टरपंथियों की चिट्ठियाँ भी आईं, जिनकी संख्या आटे में नमक के बराबर थी। उर्दू के इस सबसे बड़े और प्रगतिशील समाचार पत्र ने सत्–संदेश के प्रचार–प्रसार में अविस्मरणीय सेवा की है, जिसका फल उसे लोकप्रियता और प्रकाशन संख्या में वृद्धि के रूप में मिला। बाद में दैनिक 'तेज' ने भी अपने साप्ताहिक संस्करण में महाराज कृपाल सिंह जी के सत्संग–वचन छापे। इस विषय में उल्लेखनीय बात यह है कि आज तक किसी बड़े दैनिक समाचार पत्र ने किसी एक विषय पर, धार्मिक या आध्यात्मिक विषय की बात जाने दीजिए, उपन्यास तक के लिए भी अख़बार के दो–ढाई पृष्ठ निमित्त नहीं किए। इससे भी आश्चर्यजनक बात यह थी कि जिसने एक बार यह मज़मून (सत्संग–प्रवचन) पढ़ना शुरू किया, वह उसे समाप्त किए बिना छोड़ नहीं सका। एक बार मिलाप के साप्ताहिक संस्करण के संपादक ने यह दृश्य देखा कि एक दुकानदार सुबह–सवेरे सौदा लगाकर अपने पड़ोसी को अख़बार में से सत्संग–प्रवचन पढ़कर सुनाने लगा, तो इतना मग्न हो गया कि सामने से कोई सौदा उठाकर चलता बने, तो उसे ख़बर नहीं हो सकती थी, क्योंकि सौदे को तो अख़बार ने आँख–ओझल कर रखा था।

'सत्-संदेश' का प्रकाशन

सत्संग–प्रवचन के प्रकाशन और उनकी आश्चर्यजनक लोकप्रियता को देखते हुए नियमित रूप से उनके प्रकाशन की ज़रूरत महसूस की गई। दैनिक पत्रों के लिए यह सिलसिला जारी रखना संभव नहीं था। अतः रूहानी सत्संग सावन आश्रम की ओर से एक पाक्षिक पत्र का डिक्लेरेशन दाख़िल किया गया। महर्षि शिवब्रतलाल वर्मन के एक पुराने मासिक पत्र के नाम पर 'संत–संदेश' नाम सोचा गया। जब यह नाम स्वीकृति के लिए महाराज जी की सेवा में पेश किया गया, तो उन्होंने केवल एक बिंदी उड़ाकर एक नई बात पैदा कर दी। उनके सुझाव पर 'सत्–संदेश' के नाम से पाक्षिक पत्र का डिक्लेरेशन दाख़िल किया। यह पत्र साप्ताहिक पत्रों के ढंग पर बड़े आकार पर प्रकाशित हुआ। इस आकार पर केवल दो अंक निकले। इसके बाद उसे मासिक पत्र का रूप दे दिया गया। 'सत्–संदेश' का पहला अंक दिसंबर 1954 ई. में प्रकाशित हुआ। शुरू में एक ही पत्र में एक ही सत्संग उर्दू और हिंदी, दोनों भाषाओं में छपता था, बाद में हिंदी और उर्दू के पृथक संस्करण छपने लगे। 1955 ई. से लेकर आज तक 'सत्–संदेश' नियमित रूप से चल रहा है और सत्संग–प्रवचनों और संदेशों के अतिरिक्त, जो जन्मोत्सव और भंडारा समारोहों पर महाराज कृपाल सिंह जी की ओर से दुनिया भर के सत्संगीजनों को भेजे जाते रहे हैं, इस अख़बार में उनकी दोनों विश्व यात्राओं और विश्व धर्म सम्मेलन के विराट अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का संपूर्ण सचित्र विवरण प्रकाशित किया जाता रहा है। पिछले चंद वर्षों से गुरुमुखी, मराठी, सिंधी और विदेशों के लिए अंग्रेज़ी, फ़्रेंच, जर्मन और स्पॅनिश भाषा में भी यह पत्र 'सत्–संदेश' के नाम से ही प्रकाशित हो रहा है।

सावन आश्रम की स्थापना के बाद तीन–चार वर्षों में हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की शिक्षा के प्रचार–प्रसार और उनके दिव्य वरदान का जो सिलसिला भारत और विदेशों में शुरू हुआ, वह उस महान कार्य की नींव थी, जो बाद में सार्वभौम विस्तार पर हुआ। उस काम की आधारशिला 1955 ई. में महाराज कृपाल सिंह जी की पहली विश्व यात्रा में रखी गई और जो कि बाद में 'विश्व सर्वधर्म संगम' के सार्वभौम मंच पर

विश्व के सब धर्मों और जातियों को एकता के सूत्र में पिरोने का माध्यम बना, जो संतों का असल काम है।

⌘⌘⌘

हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

1858 - 27 जूलाई, सावन सिंह जी का जन्म महिमासिंहवाला ग्राम, ज़िला लुधियाना मे हुआ। आपके पिता का नाम सरदार काबलसिंह ग्रेवाल था, जो फ़ौज में सूबेदार–मेजर थे। माता का नाम श्रीमती जीवनी था।

1878 - मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए।

1883 - किशन कौर जी से विवाह, जिनसे उनको तीन पुत्र प्राप्त हुए।

1884 - रुड़की के थॉमसन इंजीनियरिंग कॉलेज (अब आई.बाई.टी.) में दाख़िला लिया।

1886 - मिलिटरी इंजीनियरिंग सर्विस की नौकरी मिल गई और नौशहरा में सब–ओवरसियर लगे।

1891 - डेरा बाबा जैमल सिंह की आधारशिला रखी गई।

1894 - मरी में बाबा जैमल सिंह जी महाराज से भेंट।

15 अक्टूबर, संत–मत में दीक्षा।

1902 - डेरा बाबा जैमल सिंह के सत्संग घर की आधारशिला रखी गई।

1903 - 29 दिसम्बर, बाबा जैमल सिंह जी का देहांत।

1911 - नौकरी से सेवा–निचृत्त हुए।

1935 - सत्संग घर की निर्माण पूर्ति।

'गुरुमत सिद्धांत' के प्रथम खंड का प्रकाशन।

1947 - हुज़ूर बाबा सावन सिंह की बीमारी।

3 सितम्बर, प्रबंधन कमेटियों का गठन।

इलाज के लिए अमृतसर को प्रस्थान।

1948 - 1 अप्रैल, गुरुवाई का सेहरा संत कृपाल सिंह जी महाराज को सौप दिया।

2 अप्रैल, महा–समाधि।

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

1894 - 6 फ़रवरी, महाराज कृपाल सिंह जी का जन्म, ग्राम सैयद कसराँ, ज़िला रावलपिंडी, पंजाब (जो अब पाकिस्तान में है) में एक संभ्रांत सिक्ख परिवार में हुआ। इनके पिताजी का नाम, सरदार हुक्मसिंह दुग्गल और माताजी का नाम, गुलाब देवी था।

एडवर्ड्स चर्च मिशन हाई स्कूल, पेशावर से मॅट्रिकुलेशन।

1910 - 'पहले परमात्मा, बाद में दुनिया,' इसका निश्चय किया।

\- कृष्णावंती जी से विवाह।

\- पहली बार श्मशान गृह की यात्रा, जहाँ उनमें जन्म–मरण की गुत्थी के प्रश्न उभरे।

1912 - पहले मिलिट्री इंजीनियरिंग सर्विस और बाद में मिलिट्री अकाउंट्स डिपार्टमॅन्ट, लाहौर में नौकरी।

\- ध्यानावस्था में महाराज कृपाल सिंह जी को हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के दर्शन होने लगे, जिन्हें वे गुरु नानक जी समझते थे।

1917 - इन्फ्लुएन्ज़ा महामारी के रोगियों की सेवा और इलाज के लिए एक समाज–सेवी दल का गठन किया और साथ में, मरने वालों की अंत्येष्टि का कार्य भी चलता रहा।

1919 - 14 सितंबर, पुत्र दर्शनसिंह का जन्म, काउंट्रिला, ज़िला रावलपिंडी में हुआ।

1921 - फ़रवरी, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज से ब्यास में शारीरिक तौर से भेंट हुई और उनसे नामदान की दीक्षा मिली।

1924 - हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के महा–समाधि में प्रवेश का सम्पूर्ण दृष्य देखा, जो 21 साल बाद घटित हुआ।

1927 - पुत्र जसवंतसिंह का जन्म।

\- अपने सत्गुरु, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के नाम पर "गुरुमत सिद्धांत" का प्रकाशन, जो उन्होंने गुरुमुखी लिपि में लिखा था।

1935 - हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की आज्ञा से, और उनकी उपस्थिति में डेरा बाबा जयमल सिंह, ब्यास में ढ़ाई सौ से अधिक जीवों को नामदान की दीक्षा प्रदान की।

1939 - 22 अगस्त, पुत्र दर्शन सिंह का हरभजन कौर से विवाह।

1943 - 5 सितम्बर, ज्येष्ठतर भ्राता, जोध सिंह का देहांत।

1944 - 22 जुलाई, ज्येष्ठतम भ्राता, प्रेम सिंह का देहांत।

1946 - मार्च, 36 वर्ष की नौकरी के पश्चात मिलिट्री अकाउंट्स के डिप्टी ॲसिस्टंट कंट्रोलर के पद से सेवानिवृत्त हुए।

1947 -

12 अक्टूबर, हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने महाराज कृपाल सिंह जी से कहा, “मेरे बाद तुम्हें ही नामदान का बड़ा कार्य करना है।”

-

‘रूहानी सत्संग’ को हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने स्वीकृति दे दी। इसका नियोंजन महाराज कृपाल सिंह जी ने किया था।

-

28 मार्च, डेरा बाबा जयमल सिंह, ब्यास में हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के समक्ष एक सत्संग किया। यह उनके जीवन का आख़िरी सत्संग था।

1948 -

1 अप्रैल, अपने सत्गुरु से आख़िरी मुलाक़ात। सत्गुरु ने अपने दिव्य चक्षु द्वारा अपनी रूहानी ताक़त, आध्यात्मिक शक्ति महाराज कृपाल सिंह जी को प्रदान कर दी।

-

2 अप्रैल, हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने अपना चोला छोड़ दिया।

- 6 अप्रैल, महाराज कृपाल सिंह जी डेरा बाबा जयमल सिंह छोड़ कर दिल्ली चले आए। दिल्ली में कुछ दिन रह कर ऋषिकेष चले बए। वहाँ पर 5 माह तक साधना में लीन रहे। बाद में उनका अनेकों साधु–महात्माओं से मिलना हुआ।

-

2 दिसम्बर, दिल्ली में उन्होंने नामदान का अपना नियोजित कार्य प्रारंभ किया, जो नियमित रूप से चलने लगा।

-

हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज की आज्ञा और मार्गदर्शन के अनुसार, संत कृपाल सिंह जी महाराज ने ‘रूहानी सत्संग’ की स्थापना की।

1950 -

20 अक्तूबर, पुत्र जसवंत सिंह का पूरन कौर से विवाह।

- 11 जून, शक्ति नगर, दिल्ली में अपने सत्गुरु की याद में ‘सावन–आश्रम’ समर्पित किया।

1951 -

दिसम्बर, ‘सत्–सन्देश’ पत्रिका का हिन्दी तथा उर्दू भाषाओं में प्रकाशन शुरू।

1955 - 31 मई, पहली विश्व यात्रा के लिए दिल्ली से प्रस्थान।

5 नवम्बर, विश्व यात्रा पूरी करके दिल्ली लौटे।

- रामलीला मैदान, दिल्ली में आयोजित ‘विश्व धर्म परिषद’ के पहले सम्मेलन में आपकी सम्माननीय अध्यक्ष पद पर नियुक्ति निर्विरोध हुई।

1957 -

पाकिस्तान की पहली यात्रा।

1958 - पाकिस्तान की दूसरी यात्रा।

1959 - कलकत्ता में 'विश्व धर्म परिषद' के दूसरे सम्मेलन में संत कृपाल सिंह जी

1960 - महाराज को सर्वसम्मति से दोबारा अध्यक्ष मनोनीत किया गया।

संत कृपाल सिंह जी महाराज पहले ग़ैर–ईसाई संत बने, जिन्हें 'सेंट जॉन ऑफ़

1962 - जेरुसलम– नाइट्स ऑफ़ माल्टा' के सम्मान से नवाज़ा गया।

6 अक्टूबर, स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, पं. जवाहरलाल नेहरू की

- उपस्थिति में, रामलीला कमॅटी, दिल्ली की ओर से गांधी ग्राउंड के रामलीला मैदान में संत कृपाल सिंह जी महाराज को 'भारत का राष्ट्र–संत' घोषित किया गया।

पाकिस्तान की तीसरी यात्रा।

1963 - 8 जून, दूसरी विश्व–यात्रा के लिए दिल्ली से प्रस्थान।

- 31 जनवरी, दूसरी विश्व–यात्रा पूरी करके दिल्ली लौटे।

1964 - रामलीला मैदान, दिल्ली में 'विश्व धर्म परिषद' में संत कृपाल सिंह जी महाराज की

1965 - तीसरी बार निर्विरोध नियुक्ति।

जनवरी, मासिक पत्रिका, 'सत्–सन्देश' का अंग्रेज़ी और पंजाबी भाषा में प्रकाशन

1968 - शुरू।

अप्रैल, हरिद्वार के अर्धकुम्भ मेले में संत कृपाल सिंह जी महाराज ने अपना कॅम्प

- लगा कर लाखों लोगों को सत्संग का लाभ दिया।

6 फ़रवरी, हीरक जयन्ति महोत्सव में सम्मान। अनेक सामाजिक, आध्यात्मिक,

1969 - गणमान्य और भक्तों ने संत कृपाल सिंह जी महाराज का सम्मान किया।

6 फ़रवरी, देहरादून में 'मानव–केन्द्र' का उद्घाटन।

1970 - रामलीला मैदान, दिल्ली में 'विश्व धर्म परिषद' में चौथी बार सम्माननीय अध्यक्ष

- पद पर नियुक्ति।

3 अप्रैल, संत कृपाल सिंह जी महाराज की धर्मपत्नी, माता कृष्णवंती जी का निधन।

- 29 जून, दिल्ली के एक निजी अस्पताल में सफल ऑपरेशन हुआ।

1971 - 14 मार्च, भारत के राष्ट्रपति, श्री वी.वी. गिरि 'मानव–केन्द्र' देखने आए।

1972 - 26 अगस्त, तीसरी विश्व यात्रा के लिए प्रस्थान।

- 2 जनवरी, तीसरी विश्व यात्रा से दिल्ली लौट आए।

1973 - 7 फ़रवरी, भारत के आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक गणमान्य तथा प्रतिष्ठित

- लोगों द्वारा संत कृपाल सिंह जी महाराज को 'विज्ञान–भवन', दिल्ली में सम्पन्न हुए समारोह में 'अभिनन्दन–पत्र' प्रदान करके उन्हें सम्मानित किया गया।

2 अप्रैल, 'मानव–केन्द्र' में 'राष्ट्रीय एकता दिवस' मनाया गया।. अस्पताल, वृद्ध

- आश्रम, पाठशाला तथा फ़ार्म का निर्माण कार्य पूरा हो गया।

13 अप्रैल, भारत के उप–राष्ट्रपति, श्री जी.एस. पाठक 'मानव–केन्द्र' देखने आए।

- 14 अप्रैल, उत्तर प्रदेश के गवर्नर, अकबर अली ख़ान 'मानव–केन्द्र' देखने आए।

- जून, कश्मीर का दौरा।

- अक्तूबर, पंजाब का दौरा।

- दिसम्बर, बम्बई का दौरा।

- जनवरी, कंद्री, ज़िला बड़ौदा, गुजरात में दूसरे 'मानव–केन्द्र' का उद्घाटन।

1974 - 3-6 जनवरी, दिल्ली में संत कृपाल सिंह जी महाराज की अध्यक्षता में और उनके
- द्वारा प्रायोजित 'मानव एकता सम्मेलन' में अनकानेक देशों के विशेष प्रतिनिधियों ने भाग लिया। ऑस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रिया, कॅनाडा, कोलम्बिया, इक्वेडोर, इंगलॅन्ड, फ़्रांस, जर्मनी, घाना, ग्रीस, भारत, इंडोनेशिया, इटली, जापान, माल्टा, नाइजीरिया, थाइलॅन्ड तथा अमेरिका से विशेष प्रतिनिधियों ने समारोह में भाग लिया।

12 अप्रैल, हरिद्वार के कुंभ मेले में संत कृपाल सिंह जी महाराज ने 'राष्ट्रीय एकता
- परिषद' की स्थापना की। महाराज जी की अध्यक्षता में पहली बार क़रीब पाँच लाख साधु–महात्मा एक साथ एक मंच पर बैठे। राष्ट्रीय एकता का संदेश दूर–दूर तक साधु–महात्माओं द्वारा पहुँचाने का एक प्रस्ताव पारित किया गया।

26-27 जुलाई, संत कृपाल सिंह जी महाराज ने 'राष्ट्रीय संत समागम' का आयोजन
- किया।

29 जुलाई, अन्तिम बार 1087 जीवों को नामदान की दीक्षा प्रदान की।

- 1 अगस्त, भारतीय संसद को संबोधित किया। वे पहले आध्यात्मिक महापुरुष रहे
- हैं, जिन्हें भारतीय संसद में सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया गया था।

15 अगस्त, हिन्दी में आख़िरी बार सत्संग प्रवचन।

- 17 अगस्त, 'सावन–आश्रम' में आख़िरी बार अंग्रेज़ी में प्रवचन।

- 21 अगस्त, महासमाधि में प्रवेश।

-